किया जा सकता था तो इस समय ही क्यों नहीं किया जा सकता ?"

"उस समय मैं इनकी रानी थी। इनकी सेनाध्यक्षा बन कर इन्हें संग्राम-क्षेत्र में परिचालित करती। इन्हें हमारी आज्ञाओं के अधीन रहना पड़ता। किन्तु इस समय क्या ये हमारी आज्ञा मानेंगे ? उस समय मैं क्षतिग्रस्त थी, यदि मैं सेना लेकर अङ्गरेज़ों पर आक्रमण करती तो जय-पराजय दोनों गौरव के कारण होते। आज ये विद्रोही सिपाही लुटेरों की भाँति जहाँ-तहाँ इक्के-दुक्के अङ्गरेज़ों का बध करते-फिरते हैं। यहाँ भी ये वही काम करेंगे। क्या इसी का नाम युद्ध है ? ऐसा जघन्य व्यवहार, इस प्रकार की कापुरुषता अवश्य ही हमारे लिए नरक का द्वार खोल देगी।"

"यदि ये विद्रोही सिपाही तुम्हारे शासन को स्वीकार करें—तुम्हारी आज्ञाओ के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा करें—तो इनका साथ देने मे क्या दोष है ?"

"ये कभी हमारी आज्ञाओ के अनुसार चल नही सकते। अब ये हमारे वेतन-भोगी सैनिक नही रहे। मैं इन्हें वेतन दे भी नही सकती।"

"पहले इन्हे वेतन देकर इनके ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित करो। फिर इन्हें लेकर रणक्षेत्र मे उतर पड़ो।"

"तुम बिलकुल बच्चो की सी बातें करती हो। इन्हे

वेतन देने की क्या अब हममें सामर्थ्य रह गई है ? क्या हम लोगों में कुछ भी ऐश्वर्य है ? क्या हमारे पास निजी कोष अथवा मालख़ाना रक्खा है, जिससे रुपए निकाल कर जब चाहेंगी, उनका वेतन चुका देंगी ?"

रमणी की यह अन्तिम बात सुन कर युवती ईषत् हास्य-पूर्वक बोली—तुम्हारे पास तो ऐसा ख़ज़ाना है—ऐसी अक्षय निधि है कि उससे जितने भी रुपए क्यों न व्यय करो, तुम्हारा भण्डार कभी ख़ाली न होगा।

रमणी ने कुछ विरक्ति का भाव दिखाते हुए उत्तर दिया—काम की बात मे भी तुम्हे हँसी-ठट्ठा सूझता है! हर समय ये बातें अच्छी नही लगती। तुम्हारे साथ इस विषय पर व्यर्थ मैं और माथा-पच्ची नहीं करूँगी।

युवती मुश्किल से अपनी हँसी रोक कर बोली—मैं तुमसे कभी हँसी-मज़ाक़ नही करती। मै शपथ-पूर्वक कहती हूँ कि मज़ाक़ करने का मेरा अभिप्राय नहीं। मै अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम्हारे पास एक अक्षय कोष है, जो कभी अर्थ-शून्य नही होगा।

रमणी बोली—मै तो नही जानती कि मेरे पास कोई ऐसा भण्डार है। सम्भव है, महाराज ने कोई गुप्त ख़ज़ाना रख छोड़ा हो और उसे तुम्हारे ज़िम्मे कर गए हो। इस समय तुम उसकी कोषाध्यक्षा हो। अस्तु, जब सिपाही मुझसे वेतन माँगने आवेंगे तो उन्हें तुम्हारे ही पास भेज दूँगी।

"मुझे कोषाध्यक्ष बनाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारा भी तो एक कोषाध्यक्ष है?"

"वह कोषाध्यक्ष कहाँ है, कौन है?"

युवती अधिक गम्भीर भाव से कहने लगी—तुम अब तक यही समझती हो कि मैं ठट्ठा कर रही हूँ। मै तुमसे कभी मज़ाक नहीं करती। मैं भली-भाँति जानती हूँ कि यह हँसी-मज़ाक़ का समय नहीं है। परमेश्वर ने तुम्हे अतुल ऐश्वर्य प्रदान किया है। तुम्हारे मुखमण्डल की प्रतिभा ही तुम्हारा अक्षय धन है, और तुम्हारी वाणी ही उसकी कोषाध्यक्षा। तुम्हारे स्वर में वह शक्ति है जो कठिन से कठिन पाषाण-हृदय को भी सहज ही कोमल बना सकती है। मैंने अनेक बार देखा है कि जब तुम खड़ी होकर बोलना आरम्भ करती हो तो तुम्हारे प्रतिभापूर्ण मुख से निकले हुए शब्द सुनकर मनुष्य तुम्हारे चरणों पर लोटने लगता है, वेतन-भोगी नौकर से भी अधिक झुक जाता है। मुझे तो विश्वास होता है कि भगवान् ने तुम्हे विश्व का शासक बना कर भेजा है। किन्तु न जाने किस पाप से तुम्हें राजमुकुट से वञ्चित होना पड़ रहा है। मैंने बाल्यावस्था में पिता जी से बहुत सी मराठी तथा संस्कृत की पुस्तकें पढ़ी हैं। अहल्याबाई प्रभृति अनेकानेक स्त्रियों की प्रशंसा सुन चुकी हूँ, किन्तु तुम्हारी जैसी विलक्षण रमणी न तो कहीं देखी और न सुनी। यह हो सकता है कि जिस पाप के कारण तुम्हारे राजमुकुट

का अपहरण हुआ है, उसी के क्षय होने पर तुम पुनः अपने सिंहासन पर आसीन हो सको।

युवती इतना कह कर चुप हो रही। मानो आगे वह कुछ कहना नहीं चाहती। परन्तु वास्तव में हृदय के आवेग से उसका कण्ठ रुद्ध हो गया था। वह आगे कुछ न कह सकी। उसके विशाल नेत्रों से आँसुओ की धारा बहने लगी।

युवती की यह अवस्था देख, दूसरी रमणी की आँखो से भी टप-टप आँसू की बूँदें गिरने लगी।

कुछ काल दोनों अवाक् रही। फिर युवती बोली—देश के सभी लोग यदि अङ्गरेजों से युद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो जायँ, तो इस बार उनका पराजय निश्चित है। क्या देश के करोड़ो मनुष्य एकत्रित होकर इन मुट्ठी भर अङ्गरेजो को नहीं निकाल सकते?

"केवल मनुष्यो की संख्या अधिक होने से कुछ नहीं हो सकता।"

"तो क्या अङ्गरेजो का सैन्य-सञ्चालन और अस्त्र-बल इतना बढ़ा-चढ़ा है कि उनके दस आदमी हमारे लाखो आदमियों को हरा सकते हैं। क्या तुम्हें उनके अस्त्रो का इतना भय है?"

"मैं तो अभी कह चुकी हूँ कि भय और त्रास के लिए मेरे हृदय में कोई स्थान नहीं। और अङ्गरेज लोग अपने अस्त्र-बल के सहारे राज्य-शासन नहीं कर सकते।"

"यदि सैन्य की प्रचुरता से कुछ लाभ नही और न अङ्गरेज़ ही अपने रणकौशल से कुछ कर दिखा सकते हैं, तब तो उन्हें बात की बात में हराया जा सकता है। उनके साथ युद्ध में पराजित होने की कोई आशङ्का ही नहीं।"

"पराजय के बहुत से कारण हैं। जिन सिपाहियों को तुम देखती हो, उनमें से एक भी सच्चा सैनिक नही। सम्मुख संग्राम का अवसर देखते ही प्राणों के भय से भाग खड़े होते हैं। अङ्गरेज़ों के अधीन रह कर इन लोगों ने केवल असहाय नगरों को लूटना सीखा है। जब कभी किसी नगर पर आक्रमण करने जाते हैं तो केवल धन लूटने का अवसर ताकते रहते हैं। फिर लूटे हुए धन को कहाँ पर रक्खें, किस तरह उसकी रक्षा करें, इसकी चिन्ता इनके सिर पर सवार होती है। सच्चे योद्धा का स्वभाव ऐसा नहीं होता। वह न तो मृत्यु से डरता है, न अर्थ का लोभ उसे कर्त्तव्य-पथ से कभी भ्रष्ट कर सकता है।"

रमणी की बात समाप्त होते ही युवती ने पूछा—तब इस समय क्या करोगी?

"इसी विषय पर पिता जी से दिन-भर परामर्श करती रही हूँ, क्या करना चाहिए, अब तक निश्चित नहीं कर सकी। अहमदहुसेन को कहला भेजा है कि दस-बारह दिन में निश्चय करके बताऊँगी कि क्या करना होगा।"

"सिपाहियों की गति और जनता का भाव देखते हुए

त नहीं जान

तो इस काम में अधिक विलम्ब

पड़ता। इसलिए जो करना हो, शीघ्र ही करो।"

"पिता जी भी यही कहते हैं। किन्तु इस समय योगिराज होते तो उनके उपदेशानुसार काम करती। मेरा अनुमान है कि उनके समान ज्ञानी संसार में दूसरा नहीं है। उनकी बातों से जान पड़ता है कि वह भूत, भविष्य, वर्त्तमान सब की बातों को अपनी आँखों के सामने देखते हैं। वे सच्चे निष्काम योगी हैं। इस संसार में उनका कोई स्वार्थ नहीं है, किसी प्रकार के लाभालाभ की चिन्ता नहीं। जगत् मे न्यायानुमोदित आचरण की प्रतिष्ठा करना ही मानो उनके जीवन का एकमात्र महान् उद्देश्य है। अङ्गरेज लोग जिस समय हमारे राज्य का अपहरण करने के लिए उद्यत हुए थे, उस समय वे छिपे-छिपे देशी तथा विलायती समाचार-पत्रों मे हम लोगों के पक्ष में लिखा करते थे। उस समय मैं यह न जान सकी थी। अन्त में जब पिता जी को मालूम हुआ और वे उन्हें इस उपकार के बदले कुछ पुरस्कार देने को तैयार हुए तो योगिराज को बड़ा क्रोध आया। वे घृणापूर्वक इस देश को परित्याग करने लगे। फिर पिता जी ने बहुत अनुनय-विनय करके उन्हें कुछ काल तक रोक रक्खा। इस समय वह कहाँ हैं, पता नहीं। यद्यपि उनकी अवस्था बहुत अधिक नहीं है, तथापि उनका ज्ञान बहुत गम्भीर है। मैं तो उनमें पितृ-तुल्य भक्ति रखती हूँ।"

जिस समय वयस्का रमणी इस प्रकार योगिराज की प्रशंसा कर रही थीं, उस समय सामने खड़ी हुई युवती अनेक चेष्टा करने पर भी अपने आँसुओ को न रोक सकी। उसका मन करुणा के अथाह सागर में डूबा हुआ था। अपनी सखी की यह अवस्था देखकर उसके मन को सान्त्वना देने के लिए वयस्का रमणी ने मुस्करा कर कहा—क्या सचमुच योगिराज ने तुमसे विवाह करने की इच्छा प्रकट की थी ?

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपना सिर नीचा किए बैठी रही।

रमणी पुनः बोली—मालूम होता है, तुमसे निराश होकर ही योगिराज ने संसार का परित्याग किया है !

युवती अधिक चुप न रह सकी। उसने विरक्तिपूर्ण स्वर में कहा—कभी नहीं, कभी नहीं, वह तो बाल-ब्रह्मचारी हैं।

रमणी फिर हँसती हुई बोली—तब तुम्हीं उनके लिए पागल हुई थीं, वह तुम्हारे लिए पागल नहीं थे ?

युवती ने इस बात का भी कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु जब रमणी ने देखा कि हास-परिहास से वह अपनी सखी की मर्म-वेदना दूर न कर सकी, तो वह विषय बदल कर कहने लगी—तुम्हारी सौत होने पर भी मैं तुम पर सहोदरा की तरह स्नेह रखती हूँ। तुम्हें कभी किसी सुख-भोग से वञ्चित नहीं किया। तुम्हारे लिए मैंने अपने सुखों तक का परित्याग

किया है। स्वयं महाराज को तुम्हें सौप दिया था। क्या मुझसे भी अपने मन के भाव छिपा कर रक्खोगी ?

युवती कुछ समय तक निस्तब्ध रही। उसने रमणी को उत्तर देने का प्रयास किया, किन्तु उसमें बोलने की ही शक्ति नही थी।

रमणी ने फिर कहा—क्या मेरे निकट भी तुम अपने मन के भावों को प्रकट न करोगी ?

युवती क्षीण स्वर से बोली—मैं तो तुमसे अपने मनोभावों को कभी छिपाती नहीं।

"छिपातीं क्यों नहीं ?"

"क्या छिपाया है ?"

"योगिराज की ही बात छिपा रक्खी है ?"

"योगिराज की कौन सी बात मैंने छिपा रक्खी है ?"

"उनकी सभी बातें छिपा रक्खी हैं। आखिर उनके लिए तुम इतनी व्याकुल क्यों हो ?"

"मै बाल्यावस्था से ही उनसे प्रेम करती हूँ, उनमे भक्ति रखती हूँ। उनके ज्ञानगर्भित उपदेश सुन कर मन मे अत्यन्त आनन्द होता है। विशेषतः जब वे यहाँ आते हैं तो यह भाव उठता है कि पिता जी के सम्बन्ध में उनसे कुछ बाते ज्ञात होंगी।"

रमणी इस समय अपनी सङ्गिनी को पहले से अधिक

प्रसन्न देख पुनः हँसी करती हुई बोली—उनसे विवाह करने की भी तुम्हारी इच्छा हुई थी ?

"नहीं ; कभी नहीं। किन्तु × × ×"

'किन्तु' कह कर युवती और कुछ न बोली। रमणी विपत्ती के क़िले में प्रवेश करने का मार्ग पाकर हँसती हुई बोली—किन्तु क्या ? 'किन्तु' कह कर चुप क्यों रह गईं ? अब तो पकड़ी गईं न ? अब मन की सब बातें कह डालने में ही छुटकारा है।

"किन्तु कभी-कभी इच्छा होती है कि उनके साथ देश-विदेश में पर्यटन करूँ।"

"योगिनी के वेश में ?"

"चाहे जिस वेश में हो।"

"यदि आगे चल कर वह तुम्हारे साथ विवाह करना चाहें तो क्या विवाह कर लोगी ?"

"वह तो बाल-ब्रह्मचारी हैं। कभी विवाह नहीं करेंगे।"

"महर्षियों तक का मन डिग जाता है, वह तो युवा पुरुष हैं। मान लो कि उनके मन का भाव बदल गया और वह तुमसे विवाह करना चाहते हैं, तब तो उनसे परिणय कर लोगी न ?"

"इस प्रकार के प्रश्न मेरे मन में कभी उठते ही नहीं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे कदापि किसी स्त्री का पाणि-

ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिए मैं इस सम्बन्ध में कभी चिन्ता ही नहीं करती।"

"तुम्हारे हृदय में उनके प्रति इतने अनुराग का सञ्चार कैसे हुआ?"

"यह तो लम्बी कहानी है। फिर कभी कहूँगी।"

"फिर कभी क्यों? अभी न कह डालो!"

रमणी के इतना कहते ही एक परिचारिका ने ऊपर आकर कहा—महारानी से पिता जी अभी भेंट करना चाहते हैं। वह दोतल्ले वाले मकान में प्रतीक्षा कर रहे हैं।

रमणी यह सुनते ही युवती को साथ लेकर उस ओर चली।



तीसरा परिच्छेद

वीराङ्गना



नों स्त्रियो की वार्तालाप सुनकर पाठकगण इन्हें अवश्य पहचान गए होंगे। वयस्का रमणी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई है। दूसरी स्त्री का असली नाम इतिहास के पृष्ठों में नहीं मिलता। सिपाही-विद्रोह का इतिहास लिखने वाले अङ्गरेजों ने इन्हे राजा गङ्गाधरराव की उप-पत्नी लिखा है। अङ्गरेजों के देश में बहुविवाह की कुप्रथा नहीं है। इसलिए इस देश के राजाओं की प्रधान रानी को छोड़, उनकी अन्यान्य रानियो को अङ्गरेजों ने उप-पत्नी समझा है। इसके लिए हम उन्हे दोषी नहीं बना सकते। किन्तु यह युवती राजा गङ्गाधरराव की उप-पत्नी नहीं थीं। यह भी राजा की विवाहिता स्त्री, लक्ष्मीबाई की सौत थीं। झाँसी के अन्तिम राजा गङ्गाधरराव इन्हे गङ्गाबाई के नाम से सम्बोधित करते

थे। इसलिए हम पाठकों के सामने उन्हें गङ्गाबाई कह कर उपस्थित करेंगे।

रानी लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई दोनों दोतल्ले वाले घर में आकर लक्ष्मीबाई के पिता वृद्ध रावसाहब से मिली। वृद्ध रावसाहब लक्ष्मीबाई को सम्बोधित कर आकुलता से कहने लगे—बेटी, तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में ये दस-बारह दिन का विलम्ब नहीं कर सकते। अङ्गरेज़ी रेजिमेण्ट के रिसालदार कालेखाँ आज ही अङ्गरेजों पर आक्रमण का विचार कर रहे हैं। सभी मुसलमान-सिपाही उनके परामर्श से उत्तेजित हो उठे हैं। हिन्दू-सिपाही अब तक तुम्हारे निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु अब हवलदार गुरुबख्श ने कालेखाँ तथा अहमदहुसेन आदि का साथ देना निश्चय कर लिया। जान पड़ता है कि ये लोग आज ही रात को नगर के बाहर अङ्गरेज़ों के दुर्ग पर आक्रमण करेंगे। यदि सिपाहियों का साथ देने की तुम्हारी इच्छा नहीं है तो मुझे अभी क़िले में जाकर स्किन साहब को सब बातों की ख़बर देनी पड़ेगी, विशेषतः विद्रोहियों के आक्रमण से राजप्रासाद की रक्षा करने के लिए कुछ सैन्य-संग्रह करना पड़ेगा।

लक्ष्मीबाई पिता की बात सुन कर कुछ देर तक निस्तब्ध रहीं। गाल पर हाथ रक्खे प्रायः आध घण्टे तक मन ही मन कुछ सोचती रहीं। बग़ल में गङ्गाबाई भी चुपचाप बैठी थीं।

कुछ देर बाद लक्ष्मीबाई पिता को सम्बोधित कर बोलीं—किसी का पक्ष ग्रहण न कर क्या राजप्रासाद में निर्द्वन्द बैठे रहने का कोई उपाय नहीं है ?

"यह तो कभी सम्भव नहीं। यदि तुम विद्रोहियों का पक्ष न लोगी तो ये अङ्गरेज़ों के प्राण लेते ही राजप्रासाद पर आक्रमण करेंगे।"

"उनके ऐसा करने का तो मैं कोई कारण नहीं देखती। मैने भला उनका क्या अपराध किया है ?"

"वे तो एक नेता चाहते हैं। उनकी नीति यह है कि वे झाँसी के राज-परिवार के किसी दूसरे व्यक्ति को राज-सिंहासन दे, उसके नाम पर अङ्गरेज़ों से युद्ध करेंगे और उन्हें देश से बाहर निकाल देंगे। अब या तो अङ्गरेज़ो से मित्रता करो और झाँसी को छोड़ उनके राज्य में किसी निरापद स्थान पर चली जाओ, या विद्रोहियों के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए सेना का प्रबन्ध करो।"

पिता की बात समाप्त होते ही लक्ष्मीबाई कुछ उत्तेजित स्वर में कहने लगी—क्या हमारे भाग्य मे यही लिखा था कि अन्त मे इस राजप्रासाद तक को छोड़ अङ्गरेज़ी राज्य के किसी कोने मे जाकर विदेशियों की प्रजा बन कर रहें ? मेरा राज्य गया है, मेरी धन-सम्पत्ति छिन गई है, तो भी इस प्रासाद की दीवारों के भीतर मैं रानी ही हूँ। विद्रोहियों

की तलवार से मरना मुझे मञ्जूर है, किन्तु राजप्रासाद से पलायन करने का कलङ्क मैं सहन नहीं कर सकती।

"यदि तुम अङ्गरेज़ों के साथ भागना नहीं चाहतीं तो उनका पक्ष अवश्य लेना होगा।"

"अङ्गरेज़ों का पक्ष लेने की कोई आवश्यकता नहीं। मै किसी का भी साथ नहीं देती।"

"इस विपत्ति के समय यदि तुम अङ्गरेज़ों की सहायता नहीं करती तो वे तुम्हे अपना शत्रु समझेंगे।"

"वह मुझे भले ही अपना शत्रु समझें, किन्तु धर्माधर्म-ज्ञान-शून्य इन अङ्गरेज़ो के पक्ष का समर्थन मैं कदापि नहीं करूँगी।" यह कहते ही लक्ष्मीबाई अधिक उत्तेजित होगईं। उन्होने पुनः कहना आरम्भ किया—"किस अपराध से इन लोगो ने हमारे राज्य का अपहरण किया है। मैंने उनका क्या बिगाड़ा था? केवल इस बहाने से सन्धिपत्र के नियम तोड़े गए हैं कि मै स्त्री हूँ, राज्य-शासन करने में असमर्थ हूँ। मैंने माना कि मै स्त्री हूँ—और शायद राज्य-शासन करने में भी असमर्थ हूँ—किन्तु अङ्गरेज़ यह भी तो कर सकते थे कि झाँसी के राज्य-पद को अक्षुण्ण रख, महाराज के पोष्य पुत्र की वय-प्राप्ति तक राज्य का प्रबन्ध स्वयं करते। राज्य-पद तो दूर रहा, इन लोगों ने हमारे तथा अन्य रानियो के शरीर पर के गहने तक उतार लिए। मैं उन गहनों को भी तुच्छ समझती, उन स्वर्णाभरणों को मिट्टी और पत्थर समझती; यदि

इन नराधमों ने हमारे पति का थोड़ा-सा ऋण भी चुका दिया होता। महाराज की सारी धन-सम्पत्ति पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर, उनके ऋण के लिए इन लोगों ने हमें उत्तरदायी बनाया है। मैं कहाँ से उनके ऋण चुकाऊँगी? शास्त्रों में लिखा है कि मृत मनुष्य तब तक स्वर्ग में प्रवेश नहीं करने पाता, जब तक पृथ्वी पर उसका ऋण-शोध नहीं हो जाता। इस बात को सोच कर मेरी छाती फटने लगती है। महाराज की मृत्यु को तीन वर्ष हो चुके, पर आज तक भी उनका ऋण नहीं चुकाया जा सका। आज तक भी उनके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द है। इन्हीं ठगों, इन्हीं नर-पिशाचों का साथ देने के लिए आप कह रहे हैं? मै ऐसा कभी नहीं कर सकती। इन विद्रोहियों ने ही कौन सा अपराध किया है, जिसके लिए उनके विरुद्ध शस्त्र उठाया जाय?"

"बेटी, बुद्धिमती होकर भी तुम दुख के समय सब बातें भूल जाती हो। तुम जानती हो, अङ्गरेज़ों की नीति कैसी कपटपूर्ण होती है। इस समय विद्रोहियों का साथ दिए बिना प्रकट अथवा अप्रकट रूप से अङ्गरेज़ों का साथ अवश्य ही देना पड़ेगा। विद्रोही तुम्हे अपना नेता बनाना चाहते हैं, यह बात भी अभी अङ्गरेज़ो पर प्रकट कर देनी होगी, नही तो अङ्गरेज़ लोग तुम्हे भी विद्रोही समझने लगेंगे।"

"मैं ऐसा विश्वासघात कभी न करूँगी। अहमदहुसेन

ने मुझ पर विश्वास करके ही यह प्रस्ताव हमारे सामने रक्खा था। यदि इस समय इस रहस्य का उद्घाटन कर दूँ तो अङ्गरेज़ बिना क्षण भर का भी विलम्ब किए उसे फाँसी पर लटका देंगे। इस नर-हत्या का पाप मेरे अतिरिक्त और किसे लगेगा? उसने मेरे साथ विश्वासघात अवश्य किया है, किन्तु क्या इसीलिए मैं भी उसके साथ विश्वास-घात करूँ?"

"किन्तु अङ्गरेज़ों को यह भेद बताना ही होगा, नहीं तो वे तुम्हें विद्रोहिनी समझेंगे, तुम्हें विश्वासघातिनी कहेंगे। तुम उनसे पेन्शन पाती हो। इसलिए यदि कोई उनके विरुद्ध षड्यन्त्र करे तो मित्रता के अनुरोध से उन्हें इसकी सूचना देनी ही चाहिए।"

"अङ्गरेज़ों की जाति राक्षस है। वे लोग मुझ पर घोर अत्याचार करें, तो भी मैं उनके प्रति कृत्रिम मित्रता का भाव नहीं दिखा सकती। मै जानती हूँ, लोगो को बाध्य होकर उनके साथ कपट का व्यवहार करना होगा, किन्तु मैं क्या इस तुच्छ वृत्ति के लिए इस कपटाचरण में प्रवृत्त होऊँ? इन पामरों के लिए हमारे हृदय मे घोर घृणा के भाव भरे हुए है। मैं किस मुँह से इनके साथ अकृत्रिम मित्रता का भाव दिखाऊगी? भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा। मैं किसी पक्ष का समर्थन नही करती।"

लक्ष्मीबाई की बात सुनकर उनके पिता बड़े असमञ्जस

में पड़ गए। कुछ देर तक सोच-विचार कर बोले—बेटी, यदि राजप्रासाद में रहना ही अभीष्ट है तो पहले से ही पहरेदारों और रक्षकों की संख्या बढ़ानी पड़ेगी। थोड़ी सी सेना भी रखनी पड़ेगी।

"अच्छा, तब यही किया जाय।"

"किन्तु नई सेना के लिए कमिश्नर स्किन साहब की अनुमति भी तो लेनी होगी।"

"और चिट्ठी-पत्री लिखने की ज़रूरत नहीं। यहाँ के सैनिक विद्रोही हो रहे हैं, इस बात की सूचना देने की भी आवश्यकता नहीं। लक्ष्मणराव को कल सवेरे भेज दीजिए। वह कमिश्नर के पास जाकर कह आवेंगे कि देश में चारों तरफ विद्रोही सिपाहियों का उपद्रव हो रहा है। अतः राजप्रासाद के रक्षणार्थ कुछ सैनिक रखने की बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती है।"

"और अहमदहुसेन को क्या कहकर बिदा करूँ?"

"उससे कहिए कि दस-बारह दिन के पहले मैं कुछ नहीं कह सकती। यह कार्य बड़ा दुरूह है, इसलिए इस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार किए बिना जल्दी में जवाब नहीं दिया जा सकता।"

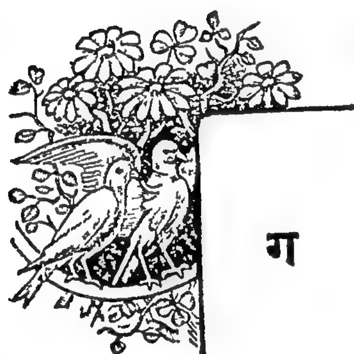
रावसाहब कन्या से बिदा लेकर अपने स्थान को गए और लक्ष्मीबाई सौत के साथ शयनागार को चली गईं। परन्तु उपरोक्त सम्भाषण ने दोनों के मन को उत्तेजित कर

दिया था। उन्हें जल्दी नींद न आई। मन की अशान्ति निद्रा को भगा देती है। भला भावों के उथल-पुथल में शान्तिमयी निद्रा को स्थान कहाँ! लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई घर पहुँचते ही फिर बातचीत करने लगीं।



चौथा परिच्छेद

रणक्षेत्र की सङ्गिनी



गङ्गाबाई बोलीं—विद्रोहियों को इस समय स्पष्ट उत्तर देने की आवश्यकता नहीं। अवस्थानुसार तुमने अच्छे ही मार्ग का अवलम्बन किया है।

"मैं इस समय किसी पक्षापक्ष का अवलम्बन नहीं करूँगी। देखें, आगे क्या होता है? भगवान् के हाथों सब कुछ सौंप, निश्चिन्त होकर बैठूँगी।"

गङ्गाबाई फिर बोलीं—यदि सचमुच अङ्गरेज़ इस देश से निकाल दिए जायँ तो क्या तुम अपने राज्य के उद्धार के लिए चेष्टा न करोगी?

"अङ्गरेज़ों के देश से वहिष्कृत होने पर मेरा राज्य मेरा ही होगा। उस समय मेरा राज्य कौन ले सकेगा? प्रजा तो मेरे वियोग में आँसू वहा रही है।"

"मैं यह अच्छी तरह समझती हूँ कि अङ्गरेज़ों के बाहर निकाल दिए जाने पर प्रजा तुम्हारी ही पूजा करेगी। यह तो मैंने पहले ही कह दिया था, किन्तु तुमने समझा कि मैं ठट्ठा कर रही हूँ। तुम्हारा तो ऐसा कोष है—और ऐसा उसका कोषाध्यक्ष है कि उसका द्वार बन्द रहने पर भी लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हैं।"

"तुमने तो फिर हँसी-मज़ाक़ करना शुरू कर दिया।"

"मेरे बातचीत करते ही तुम्हें हँसी-मज़ाक़ की बू आने लगती है। मैं तो साफ देखती हूँ कि दास-दासी, सेवक-कर्मचारी तुम्हारे आस-पास जितने भी लोग हैं, सभी तुम्हारे पैरों पर सिर नवाते हैं। यदि कोई अङ्गरेज़ तुमसे बातचीत करने आता है तो वह तुम्हारे साथ अधिक देर तक तर्क-वितर्क नहीं कर सकता, लजाकर थोड़ी देर तक तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाता और चला जाता है। महाराज की मृत्यु के बाद, मेजर मालकम ने जिस समय तुमसे साक्षात् किया था, उस समय तुम्हारे सामने उनकी वैसी ही अवस्था थी जैसी सिंह के सामने खरगोश की होती है। अहमदहुसेन जो इतना बड़ा विश्वासघाती है, वह भी तुम्हारे सामने आँखों से आँसू बहाने लगता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि लोग तुम्हारा मुँह देखकर डर जाते हैं। तुम्हारे मुख पर वह प्रतिभा है जो लोगों की हार्दिक श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति को आकर्षित कर लेती है। इसी से मेरे मन में कभी-

कभी यह विश्वास होता है कि तुम फिर से झाँसी का राजसिंहासन सुशोभित करोगी। अङ्गरेज़ी राज्य तो इस बार लोप होगा ही ! सींधिया के दरबार का पद-त्याग करने के बाद से पिता जी बराबर कहा करते हैं कि—"राजा लोग अपने ही पापों से राज्य खो रहे हैं। कोई किसी को न तो राज्य दे सकता है और न कोई किसी के राज्य का अपहरण कर सकता है।" मालूम होता है कि अब अङ्गरेज़ों के पाप का घड़ा भर गया है।"

लक्ष्मीबाई बोलीं—यह मान भी लिया जाय कि अङ्गरेज़ों के पाप का घड़ा भर गया है, तो भी मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं फिर कभी इस राज्य का उद्धार कर सकूँगी। राज्य-सुख और भोग-विलास को तो मैं त्याज्य समझती हूँ। क्या पतिहीना विधवा कभी सुख-भोग की अधिकारिणी हो सकती है ? पति के साथ वृक्ष के नीचे रहकर भी सुखी हो सकती थी, किन्तु उनके अभाव में यह राज्य पाकर भी मैं सुखी न हो सकूँगी।

"तब समय-समय पर राज्योद्धार के लिए चिन्तित क्यों होती हो ?"

"मैं चिन्तित इसलिए नहीं होती कि राज्य का उद्धार कर स्वयं भोग और विलास में लीन हो जाऊँगी। मैं तो यह सोचती हूँ कि मेरे ही दोष से यह राज्य नष्ट हुआ है और मेरे ही अपराध ने मेरे श्वसुर का नाम डुबाया है।"

"तुम्हारे ही दोष से किस प्रकार राज्य नष्ट हुआ है ?"

"मेरा निजी दोष न सही, मेरे भाग्य का दोष तो है।"

"इन बातों का मतलब क्या है ? तुम्हारे ही भग्य के दोष से किस प्रकार राज्य नष्ट हुआ है ?"

सौत के प्रत्युत्तर में लक्ष्मीबाई आँखों में आँसू भर कर कहने लगीं—क्या यह मेरे भाग्य का दोष नहीं है ? यदि मेरे गर्भ से एक भी पुत्र पैदा हुआ होता तो ये अङ्गरेज़ राज्य का अपहरण करने में किस प्रकार समर्थ होते ? इस अन्याय के लिए इन्हें कौन सा बहाना मिलता ? मैं वन्ध्या हूँ, वन्ध्या स्त्रियाँ वास्तव में हतभागिनी होती हैं। वे स्वामी के कुल का संहार करती हैं। अपने श्वसुर के वंश-लोप का मैं ही एकमात्र कारण हूँ।

"तुम वन्ध्या हो अथवा महाराज वन्ध्या थे, तुमने क्या कभी इसकी परीक्षा की थी ?"

"फिर तुम्हारा हँसी-मज़ाक़ शुरू हुआ। अब तुम अपने शयनागार में चली जाओ। मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनना चाहती।"

"क्या यह भी हँसी-मज़ाक़ की बात है ? तुम व्यर्थ अपने भाग्य को दोष देती हो। मुझे तो ऐसी शङ्का होती है कि महाराज में ही कोई रोग था, इसी से उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई।"

लक्ष्मीबाई हँसते-हँसते बोलीं—उन्हें कौन सा रोग था ?

"यदि उनका शरीर रोगी नहीं था तो क्या पाँच-छः स्त्रियों में सभी वन्ध्या थीं? सींधिया के पोष्य पुत्र लेते समय जब विवाद उपस्थित हुआ था, तब पिता जी कहा करते थे, कि बहुविवाह के कारण ही इन राजाओं के सन्तान उत्पन्न नहीं होती। विषयासक्त पुरुषों में सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति तनिक भी नहीं रह जाती।"

"तब तुम्हारे पिता ने महाराज के साथ तुम्हारा विवाह क्यों किया?"

"क्या मेरे पिता ने मुझे महाराज के साथ ब्याहा था?"

गङ्गाबाई इतना कह कर चुप हो रहीं। उनके मुख की दीप्ति विषाद की छाया से ढक गई। ऐसा जान पड़ता था कि किसी कष्टदायी घटना की स्मृति ने उनकी सारी चेतना को अभिभूत कर दिया है।

लक्ष्मीबाई को उसी समय उस योगिराज की बात याद आ गई। उन्हें पहले से ही सन्देह था कि महाराज के साथ गङ्गाबाई का ब्याह होने के पूर्व योगिराज के साथ ही उनका ब्याह स्थिर हुआ था। किन्तु सीधे-सीधे पूछने से गङ्गाबाई लज्जा के मारे सब बातें न कहतीं। इसलिए कौशल-पूर्वक उनके मन की सब बातें जान लेने के उद्देश्य से वे जिज्ञासा करने लगीं—"महाराज की मृत्यु के बाद जिस समय अङ्गरेज राज्य हरण करने पर उद्यत हुए उस समय योगिराज एक दिन मुझे सान्त्वना देने के अभिप्राय से

बोले—बहिन, दुख करने से क्या होगा ? राजा के पाप से ही राज्य नष्ट होता है। कोई किसी का राज्य हरण नहीं करता। परन्तु मुझे तो मालूम नहीं होता कि महाराज ने ऐसा कौन सा पाप किया था जिससे उनका राज्य नष्ट हुआ ?"

गङ्गाबाई अवस्था में लक्ष्मीबाई से छोटी होने पर भी उनसे अधिक चालाक थीं। वह योगिराज का प्रसङ्ग भुला देने के अभिप्राय से कहने लगी—पिता जी भी सर्वदा यही कहा करते थे। मुझे तो जान पड़ता है कि अङ्गरेज़ों के दिन पूरे हो गए हैं। विद्रोही सेना की विजय अवश्य होगी। तुम विद्रोहियों का ही साथ दो।

"विद्रोहियों के आचरण देखे बिना मैं उनका साथ कदापि न दूँगी। यदि वे सम्मुख संग्राम मे डटेंगे तो मैं उनकी साथी होऊँगी। डाकुओं की भाँति थोड़े से असहाय अङ्गरेज़ों की जान लेकर सम्मुख संग्राम में पीठ दिखा देने से क्या लाभ ? केवल लुटेरों की तरह एक जगह से दूसरी जगह भागते फिरना होगा। कहीं डाकुओं की सहायता से आज तक किसी राज्य का उद्धार हुआ है ?"

"इनका कोई नेता नहीं है। सम्मुख संग्राम में इन्हें कौन परिचालित करेगा ?"

वीर लक्ष्मीबाई दर्प के साथ बोल उठीं—सम्मुख

संग्राम में प्रस्तुत होने पर मैं स्वयं सेनाध्यक्षा बन कर उनका परिचालन करूँगी। किन्तु ये अर्थलोलुप कायर प्राण-विसर्जन के लिए क्यों प्रस्तुत होने लगे ?

गङ्गाबाई हँसते-हँसते बोलीं—तुम स्वयं सेनाध्यक्षा बनोगी ? क्या स्त्रियाँ भी सैन्य-सञ्चालन कर सकती हैं ?

लक्ष्मीबाई ने गङ्गाबाई का मुँह दोनों हाथों से पकड़ कर कहा—तुम्हारी जैसी प्रेमिका के लिए यह कार्य असम्भव हो सकता है, तुम योगिनी के लिए यह साहस कल्पना की वस्तु भले ही हो, किन्तु महाराष्ट्र वंशोद्भवा लक्ष्मीबाई अस्त्र धारण करने में कदापि असमर्थ नही।

गङ्गाबाई पुनः मुस्कराती हुई बोलीं—शाबाश सेनाध्यक्षे ! तुम्हारे संग्राम-क्षेत्र में प्रवेश करने पर मैं भी तुम्हारी सङ्गिनी बनूँगी।

"यह तुम्हारा काम नहीं। (कुछ गम्भीर होकर) तुम्हीं जैसे कुछ लोगों के कारण मैं ऐसे कार्यों में अग्रसर नहीं होती हूँ। यदि यह बात न होती तो क्या मैं कभी महाराष्ट्रों का नाम कलङ्कित होने देती ? क्या शिवाजी के यश पर कलङ्क की कालिमा लगने देती ? जिस समय अङ्गरेज़ों ने मेरा राज्य हरण किया, उसी समय बदला लेने के लिए अग्रसर होती। मैं क्या इन यवनों से डरती हूँ ? मुझे जय-पराजय की भी चिन्ता नहीं है। यदि संग्राम-क्षेत्र में प्राण विसर्जन किए होती तो स्वर्ग में महाराज को प्राप्त करती

और यदि अङ्गरेज़ों को हरा दिया होता तो महाराष्ट्र के गौरव की रक्षा करती।"

"युद्ध में जयलाभ की सम्भावना देखे बिना मैं तुम्हें रणक्षेत्र में जाने के लिए उत्साहित नहीं कर सकती।"

"जो प्रकृत योद्धा हैं, वे जय-पराजय की कभी चिन्ता नहीं करते। जय-पराजय तो एक ही घटना के दो रूप हैं। प्रकृत योद्धा मृत्यु का भी भय नहीं करते। मनुष्य का सारा जीवन ही मृत्यु की गोद में व्यतीत होता है। जय-पराजय और मृत्यु इनकी चिन्ता करना कायरों का काम है। तुम्हारी जैसी प्रेमिकाएँ अपने प्रेमी का वियोग सहन नहीं कर सकती। यही कारण है कि तुम मृत्यु और विपत्ति से इतना भयभीत होती हो।"

लक्ष्मीबाई की अन्तिम बात सुन कर गङ्गाबाई के प्रफुल्ल नेत्रद्वय रोष से लाल हो उठे—"तुम मुझसे इतनी घृणा करती हो। तुम मुझे इतना पतित, विलासप्रिय समझती हो! आज से मैं तुमसे कभी नहीं बोलूँगी।" इस प्रकार कहती हुई वह उठ खड़ी हुईं। लक्ष्मीबाई ने जोर से उनके हाथ पकड़ लिए और उन्हें बैठाने की चेष्टा करने लगीं। किन्तु गङ्गाबाई क्रोध से अधीर हो उठी थीं, वे भी अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करने लगीं।

लक्ष्मीबाई बोलीं—बस, बस, इतनी कोपाविष्ट क्यों हो गईं? मैंने केवल दिल्लगी में तुम्हें प्रेमिका कहा था।

"तुमने मुझे प्रेमिका कहा है, इसलिए मैं दुखित नहीं हूँ। किन्तु क्या तुम यह समझती हो कि तुम्हारे संग्राम-क्षेत्र में जाने पर मैं तुम्हारा साथ न दूँगी ? क्या मैं मृत्यु से डरती हूँ ? विपत्ति से डरती हूँ ? अङ्गरेज़ों के गोला-बारूद से डरती हूँ ?"

"क्या संग्राम में भी तुम मेरा साथ दोगी ?"

"मैं संग्राम में भी तुम्हारे साथ जाऊँगी, यह बात आज पहली बार नहीं कह रही हूँ। महाराज की मृत्यु के बाद जिस समय तुमने युद्ध करने की इच्छा प्रकट की थी, उसी समय मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब कभी तुम्हें सशस्त्र युद्ध में प्रवेश करना पड़ेगा, मैं तुम्हारी सहगामिनी बनूँगी। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना कि यदि रणक्षेत्र मे प्राण विसर्जित करने का समय उपस्थित होगा तो गङ्गाबाई तुमसे पीछे नहीं रहेगी। संग्राम में तुम्हारी सङ्गिनी बनने से पराङ्मुख होऊँ तो मै नारायण त्र्यम्बक शास्त्री की कन्या नहीं।"

जिस समय गङ्गाबाई आँखों से स्फुलिङ्ग निकालती हुई रोषपूर्ण वाणी में ये बातें कह रही थीं, उस समय लक्ष्मीबाई टकटकी बाँधे उनके मुँह की ओर देख रही थीं। उनकी बात समाप्त होते ही अश्रुपूर्ण नेत्रो से बोलीं—इस क्षीण देह मे इतना ओज, इतना वीरत्व, इतना पौरुष छिपा हुआ है, यह तो मैंने कभी अनुमान तक नहीं किया था। क्या तुमने

रणक्षेत्र में मेरा साथ देने की पहले से ही प्रतिज्ञा कर ली है ?

गङ्गाबाई ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चली जाने के लिए एकाएक उठ खड़ी ही हुई थीं कि फिर बैठ गईं। लक्ष्मीबाई भी बैठीं, किन्तु उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। नारी-हृदय में चाहे कितना ही वीरत्व क्यों न हो, वह नारी-प्रकृति नहीं छोड़ सकता। वीराङ्गना होने पर भी नारी-सुलभ दया, ममता तथा स्नेह से लक्ष्मीबाई का हृदय परिपूर्ण था। वह कहने लगीं—यदि कभी इस जीवन में मुझे संग्राम-क्षेत्र में प्रवेश करना पड़े और तुम मेरी सङ्गिनी बनो तो ईश्वर से मेरी प्रार्थना है, मैं पहले ही धराशायी होऊँ। इस अलौकिक रूप-लावण्य, इस सुकुमार शरीर, इस मुस्कराते हुए कमल को धराशायी होते देख, मै अवश्य ही हिम्मत हार जाऊँगी—मेरे हाथ से अस्त्र गिर पड़ेगा। शायद तुम समझती भी न होगी, मेरी सौत होने पर भी मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ।

अब गङ्गाबाई का क्रोध शान्त हो गया था। वह हँसते-हँसते बोलीं—तुम तो सदा अभिमान से कहा करती थीं कि मैंने दया, ममता, स्नेह तथा प्रेम—सभी मानवी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर ली है, कर्त्तव्य की उपासना ही मेरे जीवन का मन्त्र है। तब मेरे पहले मरने से तुम्हारे हाथ से अस्त्र क्यों छूट पड़ेगा ?

"मैं इस समय भी कहती हूँ, दया तथा ममता को मैंने बहुत अंशों में दूर कर दिया है।"

"बहुत अंशों में, बिलकुल तो नहीं ?"

"हाँ, जहाँ तक मैं जानती हूँ, इन भावों को संसार का कोई मनुष्य एकबारगी नहीं छोड़ सकता।"

"अब तुम रास्ते पर आ गईं। नित्य मुझे प्रेमिका कह कर मेरा मखौल क्यों उड़ाती हो ? प्रेम के बन्धन को कोई तोड़ नहीं सकता। यदि कोई तुमसे अत्यन्त प्रेम करे तो तुम्हारी इच्छा न होने पर भी तुम्हारे हृदय का स्रोत, तुम्हारे प्रेम की सरिता किसी अज्ञात आकर्षण से उसकी ओर प्रधावित हो चलेगी।"

लक्ष्मीबाई पहले से ही गङ्गाबाई के मुँह से योगिराज की सब बातें कहलवा लेने का निश्चय कर चुकी थीं; परन्तु गङ्गाबाई ने अब तक इस प्रसङ्ग को उपस्थित ही न होने दिया था। वार्तालाप में विषयान्तर आ गया था। लक्ष्मीबाई ने सोचा, सौत के सब रहस्य जान लेने का यह अच्छा समय है। रात अधिक बीत गई थी। गङ्गाबाई शयनागार में जाने की इच्छा प्रकट कर रही थी, परन्तु लक्ष्मीबाई ने उन्हें पकड़ कर बिठा लिया और स्पष्ट शब्दों में पूछा—तुम्हारे विवाह के पहले योगिराज की तुमसे कभी मुलाक़ात हुई थी ?

"हाँ, एक वर्ष पहले, जब वे मेरे पिता जी से शास्त्राध्ययन करने के लिए आए हुए थे।"

"क्या तुम्हारे विवाह के समय तुम्हारे पिता नहीं थे ?"

"यदि वे घर पर होते तो मेरा विवाह महाराज के साथ क्यों होता ! इन राजा-महाराजाओं के प्रति उनके हृदय में बड़ी घृणा थी।"

"तो क्या तुम्हारे पिता के बिना जाने ही तुम्हारा विवाह हुआ था ?"

"हाँ !"

"इस समय तुम्हारे पिता कहाँ हैं ?"

"मेरे विवाह के पहले ही वह गृहस्थी छोड़ कर कहीं चले गए थे। इस समय वह जीवित हैं या नहीं, मैं कुछ नहीं जानती।"

"क्या महाराज के आदमियों ने तुम्हे बलपूर्वक ले जाकर महाराज से तुम्हारा ब्याह कर दिया था ?"

"बलपूर्वक नहीं तो कौशल-पूर्वक अवश्य ही लाए थे।"

"मै तो जानती थी कि तुम्हारे आत्मीय स्वजनों ने इस विवाह मे सम्मति दी थी।"

"मेरे बड़े भाई को महाराज के आदमियों ने घूस देकर अपनी ओर मिला लिया था। वह इतना दुश्चरित्र था कि पिता ने पहले ही उसे घर से बाहर कर दिया था। वही अभागा इस विवाह का मूल कारण था।"

"महाराज के साथ विवाह करने की तुम्हारी स्वयं इच्छा थी या नहीं ?"

"मेरी अवस्था उस समय केवल १४ वर्ष की थी। मैं यह जानती ही नही थी कि विवाह होता क्या है, मैं दिन-रात पुस्तकें लिए अपना समय बिताती थी। विवाह की चिन्ता एक बार भी मेरे मन में नहीं उठी थी।"

"कैसे आश्चर्य की बात है ! चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था में स्त्रियों को बच्चे पैदा हो जाते हैं, किन्तु उस समय तक भी तुम्हें विवाह की चिन्ता नहीं हुई थी ?"

"मै तुमसे ठीक-ठीक कहती हूँ, उस समय तक भी, विवाह क्या वस्तु है तथा किस लिए लोग विवाह करते हैं, मैं यह कुछ भी नहीं समझती थी।"

"तब तो तुम एक अद्भुत कन्या थी। विवाह क्या चीज़ है, इसे तो एक आठ वर्ष की बालिका भी जानती है।"

"यह ठीक है, किन्तु उनकी शिक्षा भी दूसरे ढङ्ग की होती है। मेरे पिता ने बाल्यावस्था से ही मुझे संस्कृत पढ़ाया था। यों तो अधिकांश संस्कृत पुस्तकें अश्लीलता से भरी पड़ी हैं। किन्तु किसी प्रकार के अश्लील शब्द या दूषित भावों ने मेरे मन को स्पर्श भी नहीं किया था। मैं किसी पुस्तक को आद्योपान्त नहीं पढ़ती थी। उसके विशेष-विशेष अंश निर्वाचित कर दिए जाते थे और मैं उन्हीं का अध्ययन करती थी। ग्यारह वर्ष

के पहले ही मैंने संस्कृत-व्याकरण और धातुमाला कण्ठ कर ली थी। प्राचीन साहित्य और धर्म-ग्रन्थों के अवलोकन मे मेरा मन ऐसा तन्मय हो रहा था कि मैं अन्य विषयो की ओर अपना ध्यान ही नही देती थो। इसलिए मुझे विवाह का कोई ज्ञान न था और न थी उसके लिए कोई चिन्ता।"

"जान पड़ता है, तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह अवश्य ही किसी राजा-महाराजा से करना चाहते थे। इसीलिए तुम्हें उन्होंने इतनी विद्या पढ़ाई थी। शायद झाँसी के राजा से भी बड़े किसी राजा पर उनकी दृष्टि थी। किन्तु तुम्हारे भाई ने यहीं तुम्हारा सम्बन्ध ठीक किया। इसीसे तुम्हारे भाई पर उन्हें इतना क्रोध आया था। वे तो सींधिया के दरबार में थे न? मुझे जान पड़ता है, वे सींधिया के साथ तुम्हें व्याहना चाहते थे।"

"तुम मेरे पिता की प्रकृति नहीं जानतीं। इसो से ऐसा कहती हो। राजाओं को वह कुत्तों से भी बदतर समझते थे। सींधिया की गणना तो वह मनुष्यों में करते ही न थे। जिस प्रकार तुम अङ्गरेजों की चर्चा उठते ही उन्हें 'सुअर' कह कर उनके प्रति घृणा प्रकट करती हो उसी प्रकार वह सींधिया, होलकर, गायकवाड़ आदि को पशुओं से भी गया-गुजरा समझते थे।"

"सींधिया को घृणित समझते हुए भी तो वह उन्हीं के वेतन-भोगी नौकर थे!"

"मेजर मालकम के अनुरोध से उन्होंने सींधिया सरकार के यहाँ कार्य करना स्वीकार किया था। किन्तु सींधिया और उनके दरबारियों का चरित्र देख कर उनके हृदय में प्रबल विरक्ति का भाव पैदा हुआ। एक महीना बीतते न बीतते उन्होंने अपना पद त्याग कर दिया। सींधिया ने उन्हें रखने की बड़ी चेष्टाएँ कीं, उनसे बड़ा अनुनय-विनय किया; किन्तु उन्होंने एक न सुनी। वहाँ से चलते समय सींधिया के मुँह पर उन्होंने कहा था—महाराज, आपके दरबार में चोर, लबार, ठग, धूर्त और चालबाज़ों का बोल-बाला है, मेरी यहाँ गुज़र नहीं ?"

"सींधिया के दरबार का काम छोड़ने पर फिर तुम्हारे पिता किस दरबार में नियुक्त हुए थे ?"

"उसके बाद किसी दरबार में नियुक्त नहीं हुए। नौकरी करने का विचार सदा के लिए उन्होंने त्याग दिया। घर पर ही रहा करते और मुझे नाना प्रकार की पुस्तकें पढ़ाया करते थे। उस समय मेरी अधिकांश पाठ्य-पुस्तकें धर्मशास्त्र की ही थीं। पिता मुझे सदा एक न एक शास्त्र की बातें बताते थे। कुमारसम्भव, शकुन्तला आदि पुस्तकों के नाम तो मैंने उस समय सुने भी नहीं थे।"

"जब तुम्हारे पिता किसी के यहाँ नौकरी नहीं करते थे, तो उनकी संसार-यात्रा कैसे चलती थी ?"

"पहले पूना में कम्पनी की नौकरी कर चुके थे। वहाँ से उन्हें प्रति मास दो सौ रुपए की पेन्शन मिलती थी।"

"कम्पनी के यहाँ वह कौन सा काम करते थे?"

"बहुत से काम किए थे। उन कामों में सबका मैं नाम भी नहीं जानती। आरम्भ में अदालत के पण्डित थे। उसके बाद कमिश्नर के नेटिव असिस्टेण्ट नियुक्त हुए, अन्त में राजस्व-विभाग में कई साल काम कर चुकने पर पेन्शन ले ली थी। बम्बई के गवर्नर सर जॉन मालकम साहब उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। इसीसे मालकम परिवार के जितने अङ्गरेज़ इस देश में आते, पिता जी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। मेजर मालकम वहाँ के पोलिटिकल एजेण्ट थे। उन्हीं के अनुरोध से पिता जी सींधिया के राज्य मे गए थे। यह निश्चित हुआ था कि पिता जी सींधिया के दीवान बनाए जायँगे, किन्तु उन्होंने उस पद को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया।"

"जान पड़ता है तुम्हारे पिता ने कम्पनी की नौकरी से अच्छा धन कमाया था, इसीसे और नौकरी करने की चिन्ता नहीं करते थे।"

"वे तो एक पैसा भी नहीं बटोर सकते थे। उनकी सारी कमाई दीन-दुखियों की सहायता में चली जाती थी। दूसरे वह कम्पनी के अन्यान्य कर्मचारियों की भाँति रिश-वत तथा अनुचित रूप से रुपए नहीं लेते थे। उनके जैसा

धार्मिक पुरुष संसार में है या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है।"

"किन्तु मैंने सुना है कि तुम्हारे पिता का मत बहुत अंशों में ईसाइयों से मिलता था। इस देश के पण्डित लोग उनसे बड़ी घृणा रखते थे!"

"इस देश के पण्डित उनसे हरदम जला करते थे। वह इन पण्डितों के कुकर्म, प्रवञ्चना-मूलक व्यवहार एवं अर्थ-लोभ को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसीसे से इनसे शत्रुता रखते थे।"

"मैंने महाराज के मुँह से भी सुना था कि तुम्हारे पिता ईसाई-मतावलम्बी थे। वह हिन्दू-शास्त्रों को मान्य नहीं समझते थे। विधवा-विवाह की सम्मति दिया करते थे। फिरङ्गियो के साथ खाने-पीने से भी परहेज़ नहीं रखते थे। इसी से तुम्हारे भाई से उनकी नहीं पटती थी और इस देश के लोग तो उन्हें पागल ही समझते थे।"

"मेरे पिता के प्रति महाराज के मन मे बड़ी दुर्भावनाएँ थीं। यदि तुम उनके स्वभाव और चरित्र को जानती होती तो तुम सचमुच उन्हे देवता कहतीं और उनकी पूजा करतीं।"

गङ्गाबाई इतना कह कर और कुछ नहीं कह सकीं। अकस्मात् उनके हृदय में असह्य शोक की चिता जल उठी। आँखों से आँसुओ की धारा बहने लगी। कुछ देर बाद

"हा !! पिता !" कह कर वह बालिका की भाँति फूट-फूट कर रोने लगीं।

लक्ष्मीबाई ने अपनी सौत को इस दुरवस्था मे आपन्न देख उन्हे अपनी गोदी में बिठा लिया। हाथों से उनके आँसू पोंछने और सान्त्वना देने लगीं। कुछ देर बाद गङ्गाबाई ने रोना बन्द किया और तबीयत बहलने पर जहाँ पहले बैठी थीं, वहीं जा बैठीं।

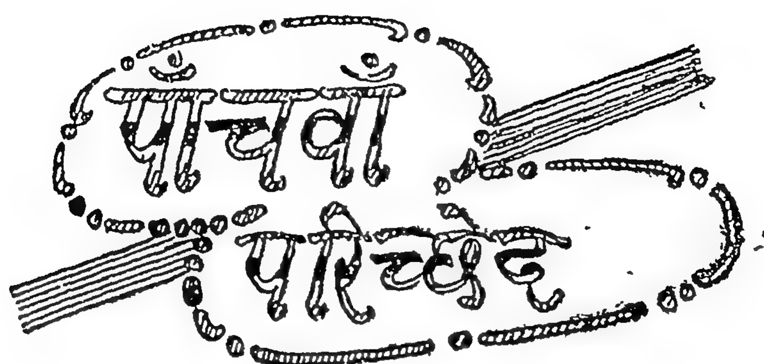
लक्ष्मीबाई ने यह विचारा कि इनके पिता के सम्बन्ध में इस समय और कोई बात पूछना उचित नहीं। इसलिए गङ्गाबाई से जाकर सो जाने का अनुरोध किया। किन्तु गङ्गाबाई वैसे ही अवाक् कुछ समय तक बैठी रहीं। थोड़ी देर बाद बोलीं—आज, अब नींद थोड़े ही आएगी। यदि तुम मेरे पिता की सब बातें सुनना चाहती हो तो मैं इसी समय बतला सकती हूँ। मेरे मन में इस बात का बहुत बड़ा दुख है कि मेरे पिता के सम्बन्ध में तुम्हारी भी ऐसी भ्रमात्मक धारणा है।

लक्ष्मीबाई बोलीं—नहीं-नहीं, इन बातो के कहने की आवश्यकता नहीं। तुम इस समय सो जाओ। मैंने जो कुछ महाराज से सुन रक्खा था, वही कहा है।

"आज की रात मुझे नींद न पड़ेगी। जिस रात को पिता का स्मरण हो आता है, उस रात को प्रायः जगकर ही सवेरा करना पड़ता है। पिता के सम्बन्ध की सब बातें

तुमसे कहने की बड़ी इच्छा हो रही है। तुम सुनो !" यह कह कर गङ्गाबाई ने अपने पिता का वृत्तान्त कहना आरम्भ किया।





पिता का चरित्र



“मेरे पिता बड़े सरल तथा सदाशय थे। लोगों के कष्ट देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था। यदि कोई किसी पर अन्याय अथवा अत्याचार करता तो वह अन्याय-पीड़ित की सहायता के लिए अपने प्राणों को भी विसर्जित करने में कुण्ठित न होते थे। कपटी तथा ढोंगी मनुष्यों से उन्हें बड़ी घृणा थी। इस देश के अर्थ-लोभी, पाखण्डी ब्राह्मण पण्डितों के ढोंग देख, वह आपे से बाहर हो जाते थे। नवशिक्षित लोगों को भी वह अच्छा नहीं कहते थे। उनका विचार था—इस देश के नवशिक्षित लोग अङ्गरेज़ी शिक्षा के फेर में पड़ कर जाति-पाँति की मर्यादा भूल जाते हैं, मूर्ति पर विश्वास नहीं

करते, अङ्गरेजों और मुसलमानों के साथ छिपे-छिपे आहार-विहार करते हैं। किन्तु अपनी मानसिक दुर्बलता और नैतिक भीरुता के कारण समाज के सामने अपने वास्तविक रूप में प्रगट होने का साहस नहीं करते। नवीन समाज इस अप्रिय सत्य को सहन करने में असमर्थ था। प्राचीन पण्डित ईसाई कह कर उनके प्रति घृणा प्रगट करते थे और आजकल का शिक्षित समुदाय पागल कह कर उनकी भर्त्सना करता था। वस्तुतः यह पापपूर्ण संसार मेरे पिता के समान साधु-महात्माओं के रहने योग्य स्थान नहीं।

"देश के प्रचलित आहार-व्यवहार को वह शास्त्र-सङ्गत नहीं समझते थे। बहुविवाह एवं बालविवाह को बहुत ही निकृष्ट समझते थे। मेरी दादी ने बहुत लड़कपन में ही मेरे बड़े भाई का व्याह करना चाहा था। पिता जी अपनी माता की आज्ञाओं का कभी उल्लङ्घन नहीं करते थे। किन्तु इस विषय में वह माता का भी आदेश पालन करने के लिए तैयार नहीं हुए। वृद्धा ने जब किसी प्रकार भी अपनी इच्छा पूर्ण होती न देखी, तब एक दिन पिता जी के बिना जाने ही, उनकी अनुपस्थिति में बड़े भाई का व्याह कर दिया। उस समय पिता जी पूना में थे। व्याह के विषय में उन्हें कुछ भी मालूम न था। पीछे जब सब बातों का पता लगा तो सिर पर हाथ पटक कर अपनी माता से बोले—तुमने मेरी माँ होकर भी इस बच्चे का सर्वनाश कर दिया। नौ वर्ष की

अवस्था में ही इसकी शादी कर दी। यह परले सिरे का कामी और लम्पट हो जायगा। कुछ भी पढ़-लिख नहीं सकेगा।

"पिता की भविष्यवाणी सोलह आने सत्य हुई। मेरा बड़ा भाई जवान होने के पहले ही पूरा लम्पट हो गया। उसे पढ़ाने का पिता जी ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ! वह स्कूल जाने के बहाने बदमाशो के साथ घृणित स्थानों में जाकर पाप और कुकर्म में अपना दिन बिताने लगा। अवस्था के साथ उसका दुराचार भी बढ़ता गया। उसकी पत्नी लावण्य की साक्षात् प्रतिमा थी। उसका यौवन विकाश की अन्तिम सीमा पर पहुँच चुका था। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से रूप की वर्षा होती थी। परन्तु मेरा अभागा भाई उसकी ओर आँख उठाकर देखता भी नहीं था। उस समय मेरी अवस्था दो-तीन साल की रही होगी। पुत्र की पापलीला देखकर माता का हृदय टूट गया। वे इस दुर्घटना का क्रूर आघात सहन न कर सकीं। शोक और अपमान के मारे अकाल मे ही उनकी मृत्यु हो गई। अब मेरे लिए भावज ने मेरी माता का स्थान ग्रहण किया। वही मेरा पालन-पोषण करने लगीं। मैंने एक दिन भी उनके होठों पर मुस्कराहट की रेखा और चेहरे पर आनन्द की झलक न देखी। स्वामी की चरित्रहीनता से सदा उनका हृदय सन्तप्त रहता था। शोक और चिन्ता ही इस विपत्ति में उनके साथी थे।

करते, अङ्गरेज़ों और मुसल
विहार करते हैं। किन्तु
नैतिक भीरुता के कारण स
रूप में प्रगट होने का सा
इस अप्रिय सत्य को सहन
पण्डित ईसाई कह कर उन
आजकल का शिक्षित समुद
करता था। वस्तुतः यह पा
साधु-महात्माओं के रहने यो

"देश के प्रचलित आहार-
नहीं समझते थे। बहुविवाह
निकृष्ट समझते थे। मेरी दादी
बड़े भाई का व्याह करना चाहा
की आज्ञाओं का कभी उल्लङ्घन
विषय में वह माता का भी आदे
तैयार नहीं हुए। वृद्धा ने जब किसी
पूर्ण होती न देखी, तब एक दिन
ही, उनकी अनुपस्थिति में बड़े भाई का
समय पिता जी पूना में थे। व्याह के वि
मालूम न था। पीछे जब सब बातों का प
पर हाथ पटक कर अपनी माता से बोले-
होकर भी इस बच्चे का सर्वनाश कर दि

करते थे। वे मुझे जो कुछ पढ़ाते, मैं सब शीघ्र ही कण्ठाग्र कर लेती थी। इससे वे मुझ पर बहुत प्रसन्न होते और अधिकाधिक उत्साह से पढ़ाने लगे। मुझे क्या पुरुष, क्या स्त्री, किसी से भी मिलने-जुलने न देते थे। उस समय इसका कारण मेरी समझ में नहीं आता था, परन्तु अब देखती हूँ कि हमारे देश में विवाहिता स्त्रियाँ छोटी-छोटी बालिकाओं के सामने भी पुरुष-स्त्री के सम्बन्ध में हँसी-ठट्ठा किया करती हैं। पिता जी इसी कारण हमें किसी से मिलने नहीं देते थे। तुम कहती हो, आठ वर्ष की लड़कियाँ भी जानती हैं कि विवाह किस व्यापार को कहते हैं। यह असम्भव नहीं है। अशिक्षित तथा मूर्ख, वृद्ध और विवाहित स्त्रियों के साथ रहने का यही परिणाम है।

"मेरी अवस्था क्रमशः चौदह-पन्द्रह वर्ष की हुई। स्वजनों को मेरे विवाह की चिन्ता दिन-रात सताने लगी। कुटुम्ब के लोग आकर पिता से पूछते—क्या अभी तक लड़की का सम्बन्ध कहीं स्थिर नहीं किया? क्या उसका विवाह न करोगे?

"पिता उन प्रश्नों के उत्तर में अधिकतर मौन धारण करते। यदि कोई विशेष आग्रह करता तो हँसते-हँसते कह देते—मेरे घर में स्वयं सीता ने अवतार लिया है। जब तक भगवान् रामचन्द्र का पदार्पण न हो, तब तक उसका विवाह कैसे होगा?

"प्रश्न करने वाले झुँझलाकर पूछते—क्या रामचन्द्र स्वयं तुम्हारे घर आएँगे, या उनका अनुसन्धान भी करोगे?

"पिता कहते—भेड़-बकरियाँ व बिल्ली की आवश्यकता होती तो देश-देशान्तरों में घूम कर तलाश करता। क्या सूर्य को भी तलाश करने के लिए कहीं जाना होता है? रामचन्द्र का जन्म होते ही दिशाएँ उनकी ख्याति से गूँजने लगेंगी। उन्हें नगर-नगर ढूढ़ना नहीं होगा।

"यह उत्तर सुन स्वजन लोग तो विरक्ति का भाव दिखा कर चले जाते, किन्तु दादी इतनी सरलता से मानने वाली न थीं। मेरा विवाह करने के लिए उनका अनुरोध दिनोंदिन बढ़ने लगा। परन्तु पिता जी उनकी बातें सुनते तक न थे। उनसे बराबर यही कहते थे कि—माँ, तुम मेरी कन्या के सामने विवाह की बात मुँह से निकालना तक नहीं। अभी तक वह जानती भी नहीं, विवाह क्या चीज़ है।

"मेरे विवाह के सम्बन्ध में पिता जी की क्या इच्छा थी, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान न था। वास्तव में मैं यह भी न समझती थी कि विवाह किसे कहते हैं और लोग क्यों विवाह करते हैं। अलबत्ता मन में कभी-कभी ऐसा विचार उठता कि कदाचित् विवाह कोई अत्यन्त कष्टमय अवस्था है। मेरी इस धारणा का एक कारण भी था। मेरी माता कभी दुख से व्याकुल होकर कहा करती थीं—'पापी पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए मेरे माता-पिता ने मुझे दुःख के समुद्र में फेंक

दिया है। सम्पन्न परिवार में मेरा विवाह कर मुझ पर असह्य अत्याचार किया है।' इसे सुन कर मैं सोचने लगती, अन्न-कष्ट होने पर ही लोग अपनी कन्या का विवाह कर देते हैं, अन्यथा अपनी प्यारी पुत्री को दूसरो की सेवा करने के लिए लोग अपने घर से क्यों निर्वासित कर देते ?

"मैं सोचा करती—लोग अपने घर का काम-काज कराने के लिए ही दूसरों की लड़कियाँ ब्याह लाते हैं। यदि मेरी दादी मेरे सामने कभी विवाह की बात चलाती, तो मैं अपने कण्ठ की समस्त शक्ति के साथ इसका विरोध करती। 'मैं पिता को छोड़ कर किसी के पास न रहूँगी—मैं कभी विवाह न करूँगी। मैं सदा पिता के साथ रहूँगी।' यह सुन कर मेरी दादी तथा अन्य स्त्रियाँ हँस देतीं। वे कहती—यह लड़की बिलकुल पगली है, कुछ समझती-बूझती नही।

"जिस समय मेरी अवस्था चौदह वर्ष की थी, उस समय एक दिन पूना से मेरे पिता के एक मित्र उनसे मिलने के लिए आए। उनका नाम था पण्डित स्वरूपनारायण। मेरे पिता की ही सहायता से वह कम्पनी की सरकार में उच्च पद पर पहुँचे थे। मेरे पिता के प्रति उनके हृदय में प्रगाढ़ स्नेह था। जब हम लोग पूने में रहते थे, तब वह सदा मेरे घर आते और मुझे गोदी मे लेकर खेलाया करते। इस बार भी मुझे देख कर उनके आनन्द की सीमा न रही। जब उन्होने सुना कि मैंने रामायण, महाभारत प्रभृति अनेक ग्रन्थ पढ़ डाले

हैं, तब तो वे आनन्द में विभोर होगए। खाने के बाद तीसरे पहर पण्डित जी और पिता जी एक कमरे में बैठ कर बातें करने लगे। पण्डित जी ने अङ्गरेज़ी में कुछ कहा। उस समय उनकी बात तो मैं न समझ सकी, किन्तु उनके शब्द याद कर लिए। मेरी स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि कोई वाक्य सुनते ही मैं उसे कण्ठस्थ कर लेती। मेरी वह शक्ति आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। मुझे स्मरण है, पण्डित जी ने अङ्गरेज़ी में कहा था—It is difficult to get a suitable match for her (इस लड़की के योग्य वर पाना बहुत कठिन है।) पिता जी अङ्गरेज़ी अधिक न जानते थे। उन्हें पण्डित जी के साथ बातचीत करने में कठिनाई होने लगी। उन्होंने मुझे इशारा किया। मैं कमरे के बाहर चली गई। पिता जी बहुत देर तक पण्डित जी के साथ मराठी में बातें करते रहे। मैं उस कमरे के बग़ल में ही बैठी हुई थी। किन्तु उन लोगों की सारी बातें स्पष्ट नहीं सुन पाती थी। हाँ, वार्तालाप के अन्त में पिता जी एक बार बड़े ज़ोर से बोले। उनके वे शब्द आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। उन्होंने आवेश के साथ कहा था—'अत्यन्त सच्चरित्र, ज्ञानी एवं धार्मिक युवक पाए बिना मैं इसका विवाह कदापि न करूँगा। इस अमूल्य रत्न को किसी नराधम के हाथों में न सौंपूँगा, चाहे विवाह हो या न हो।'

"पिता को उत्तर देते हुए पण्डित जी बोले—देश में

शिक्षित एवं सदाचारी युवकों का तो अभाव नहीं, पर आप तो देश-हितैषी भी चाहते हैं।

"पिता जी और भी अधीर होकर बोले—तुम तो उन लोगों को बुद्धिमान् समझते हो, जिन्होंने थोड़ी सी अङ्गरेज़ी पढ़ी और कम्पनी के राज्य में किसी तरह एक ऊँची नौकरी पा गए। और मैं उन्हें मनुष्य भी नहीं समझता। हमारे देश की कैसी दुर्दशा है, हिन्दू-समाज का कैसा घोर पतन है, इसे देख कर जिसका रक्त उबलने नहीं लगता, करोड़ों देशवासियों का सर्वनाश जिसके हृदय को दारुण दुख की अग्नि से भस्म नही कर देता, कुत्सित आचार और जघन्य व्यवहारों के प्रति जिसकी आत्मा में विद्रोह के भाव नहीं उठते, मैं उसे शिक्षित समझने में असमर्थ हूँ। मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि स्वदेश के लिए जिसका अन्तस्तल रोता है, अज्ञान और अन्धकार का मूलोच्छेद ही जिसके जीवन का पवित्र ध्येय है, ऐसे ही युवक को यह अमूल्य रत्न समर्पित करूँगा।

"मैं पिता की बातों का आशय कुछ भी न समझ सकी। मैंने सोचा कि पिता के पास जो कुछ भी धन-सम्पत्ति, मोती-रत्न आदि हैं, वह मेरे भाई को कुछ भी नहीं देना चाहते। वह इन सब पदार्थों को उसे देंगे, जो इन्हे देश-सेवा के कार्य में लगा सके। इसके वाद पण्डित जी के साथ पिता की और भी बहुत सी बातें होती रही। दूसरे दिन पण्डित जी हम लोगों से विदा ले पूना चले गए। पूना से

उन्होंने एक युवक को पत्र दे पिता जी के पास भेजा। पिता जी के पूछने पर युवक ने बताया, मेरा नाम योगिराज है। पत्र पढ़ कर पिता जी ने योगिराज से अङ्गरेज़ी में पूछा—Are you a Brahmo-Samaj—A Brahmo-Samaj from Bengal is always welcome to the house of your this humble servant. अर्थात् 'क्या आप ब्रह्मसमाजी हैं, बङ्गाल का कोई भी ब्राह्म इस दास के घर में सदा आदर पाएगा।' पिता की बात सुन कर योगिराज कुछ मुस्कराए। वे अङ्गरेज़ी अच्छी जानते थे। इसी कारण शायद पिता जी की टूटी-फूटी अङ्गरेज़ी पर हँस रहे थे। उन्होने पिता जी से कहा—महाशय, मैं आपकी मातृ-भाषा मराठी मे बातचीत कर सकता हूँ।

"उसके बाद से हम लोग बराबर उनसे मराठी में बातें किया करते थे। वे हमारे घर पर रहकर पिता जी से शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। पिता जी और मैं उनसे थोड़ी-बहुत अङ्गरेज़ी पढ़ा करती। पिता जी वृद्ध होने पर भी दूसरे देशों की भाषाएँ सीखने के सदा इच्छुक रहते थे।

"योगिराज किस प्रदेश के रहने वाले थे, यह पता लगाना कठिन था। वह इन बातों को किसी से न बताते। उनकी भाषा और भाव-भङ्गी से लोग उन्हें मद्रासी समझते थे। किन्तु वास्तव में वह मद्रासी न थे। मेरा अनुमान है, वह बङ्गाल-निवासी ब्राह्म थे।

उत्तर में योगिराज निवेदन करते—'गुरुदेव! आप मुझसे ऐसा अनुरोध न करें। संसार में जाकर मैं शान्ति प्राप्त कर सकूँगा, इसकी मुझे कोई आशा नहीं। मैं इस मोह-जाल से नाता तोड़ चुका हूँ। इसका दासत्व पुनः स्वीकार न करूँगा।'

लक्ष्मीबाई बीच में ही बात काट कर बोलीं—अब मैं तुम्हारे पिता के मन की बात अच्छी तरह समझ गई। जान पड़ता है, योगिराज के साथ तुम्हें विवाह देने का उन्होंने मन ही मन सङ्कल्प कर लिया था।

"मैं भी कभी-कभी यही सोचती हूँ। किन्तु पिता जी अथवा योगिराज ने मुझसे इस विषय में एक शब्द भी नहीं कहा था। योगिराज भगिनी के सदृश मुझ पर स्नेह रखते थे।"

लक्ष्मीबाई ने फिर पूछा—इसके बाद योगिराज कहाँ चले गए?

"वह मेरे घर छै-सात महीने रहे। एक बार पिता और वह दोनों एक साथ ही पूना चले गए। मैं दादी के साथ घर पर रही। इस बीच मेरे भाई ने घर पर आना-जाना आरम्भ किया। दादी के साथ चुपके-चुपके उसकी कुछ बातें हुआ करतीं। क्या बातें होतीं, यह मुझे मालूम न था और न मैं उन्हें जानने की चेष्टा ही करती। एक दिन दादी ने मुझे पुकार कर बड़े प्यार से कहा—'बेटी, आज राज-

महल में बड़ा समारोह होगा। बहुत से जादू के खेल दिखाए जायँगे। तुम चाहो तो भाई के साथ तमाशा देख आओ।' मैं भाई के साथ कहीं जाने के लिए तैयार न थी। दादी बार-बार कहने लगीं—'भाई के साथ चली जाओ न ?' इसमें हर्ज ही क्या है ! वह मुझे गहने और कपड़े लत्ते पहनाने लगी। एक दूसरी स्त्री ने आकर मेरे बाल सँवार दिए। मैं दादी के अनुरोध से भाई के साथ तुम्हारे इसी महल में आई। उसी दिन महाराज के साथ मेरा प्रथम दर्शन और चिरकालीन संयोग हुआ। असुर ने देवों को पराजित कर दिया। विलासिता ने सद्भावना पर विजय पाई। मेरा अस्फुट जीवन और उसकी सारी पवित्रता वृद्ध महाराज के पैरों तले कुचल दी गई। विवाह क्या वस्तु है, तथा लोग विवाह क्यों करते हैं, यह मैंने पहले-पहल इस नरक-सदृश अन्तःपुर में ही जाना। उसी समय से इस पतित जीवन के अभागे दिन गिन-गिन कर बिता रही हूँ। इस नरक की ज्वाला में भी यदि कोई शान्ति देने वाली वस्तु है तो वह है तुम्हारा संसर्ग।"

"क्या हमारे अन्तःपुर को तुम नरक समझती हो ? क्या तुम महाराज से प्रेम नहीं रखती थीं ? महाराज तो तुम्हारे ऊपर अपने प्राणों को भी निछावर करते थे।"

"ये बातें कह कर अधिक कष्ट न दो। इस अन्तःपुर में तुम्हें छोड़ मेरे चाहने योग्य अन्य कोई पदार्थ नहीं। तुम्हारे

साहचर्य में इस व्यर्थ जीवन की कुछ घड़ियाँ बिता देने में हृदय को शान्ति मिलती है। इसीलिए मन ही मन प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि इस जीवन में तुमसे क्षण भर के लिए भी विलग न होऊँगी। तुम रणभूमि में जाओगी तो वहाँ भी तुम्हारी सहगामिनी बनूँगी।"

"तुम्हारी बातों ने मुझे आश्चर्य में डुबा दिया है। तुमसे विवाह करने के बाद महाराज अपना सारा समय तुम्हारे साथ ही बिताया करते थे। क्षणमात्र के लिए भी तुम्हें आँखों से ओझल न होने देते थे। पति की प्राणेश्वरी, पति के हृदय की सम्पूर्ण स्वामिनी होते हुए भी तुम सुखी न हुई!"

"प्रेम क्या है, सच्चा प्रेम किसे कहते हैं, इसे तो महाराज ने स्वप्न में भी अनुभव न किया होगा। महाराज बड़े कामी पुरुष थे। वैसे कामियों के हृदय में प्रेम का उद्भव हो ही नहीं सकता। काम की ज्वाला और प्रेम की मन्दाकिनी एक ही वस्तुएँ नहीं हैं।"

"मैं तुम्हारी बातों का अर्थ कुछ भी नहीं समझ रही हूँ। कामासक्त पुरुष ही तो स्त्रियों पर अधिक प्रेम रखते हैं।"

"मैं जानती हूँ कि तुम मेरी बातों का मर्म नहीं समझ सकतीं। तुमने इन बातों पर कभी विचार ही नहीं किया। तुम्हारी विलक्षण बुद्धि केवल कर्त्तव्य की मीमांसा कर



छठा परिच्छेद

कामी का हृदय



न्ताहीन मनुष्य कभी किसी कार्य में पारङ्गत नहीं हो सकता। जितने महात्माओं ने संसार को अपनी कीर्ति से शीतल और यश से प्रकाशित किया है, वे सब चिन्ताशील थे। असंख्य पुस्तकें चाट जाने पर भी चिन्ताहीन व्यक्ति को सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। भारत की वर्त्तमान दुरवस्था इसका जीवित उदाहरण है। देश-व्यापी दारिद्र्य से सारा युवक-समाज त्रस्त हो उठा है। युवकों को अन्न-चिन्ता के अतिरिक्त और कोई चिन्ता ही नहीं। किस तरह पेट भरे, इसी चिन्ता में मरे जाते हैं। उनकी सारी शिक्षा, उनका सारा उत्साह इसी चिन्ता के मारे नष्ट हो जाता है।

वीराङ्गना लक्ष्मीबाई अत्यन्त चिन्ताशील थीं। शासन-प्रणाली एवं रण-कौशल ही उनकी चिन्ता के प्रधान विषय

थे। सहृदया गङ्गाबाई भी दिन-रात चिन्ता में मग्न रहती थीं। विपत्ति ने योंही उनके हृदय में आठों पहर चिन्तानल प्रज्वलित कर रक्खी थी, तो भी वे अन्य विषयों पर चिन्ता किया करतीं थीं। मनुष्य के मानसिक मैदान में स्वतन्त्र होकर खेलने वाले प्रेम और द्वेष, आकर्षण और विकर्षण, सुख और दुख, भक्ति और वैराग्य आदि उनकी चिन्ता के विषय थे। स्वतन्त्र चिन्ता के द्वारा मनुष्य अल्प-काल में ही दुर्ज्ञेय विषयों का भी पण्डित हो सकता है। किन्तु इसके विपरीत चिन्ताहीन प्राणियों का पुस्तक-अध्ययन उनके हृदय में केवल अभिमान उत्पन्न करता है।

चिन्ताशीला लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई दोनों ने अपने-अपने कमरे में सोने का आयोजन किया। किन्तु चिरपरिचिता चिन्ता ने दोनो में से किसी का भी साथ न छोड़ा।

बिछावन पर लेटते ही लक्ष्मीबाई सोचने लगीं—"यदि सिपाहियों से मिलकर अङ्गरेजों से युद्ध करना ही निश्चित हो तो कानपुर और झाँसी के बीच एक स्वतन्त्र शिविर की स्थापना करनी होगी। इसके अतिरिक्त उत्तर-पूर्व से अङ्गरेजी सेना की गति रोकने का और कोई उपाय नहीं। दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों से अङ्गरेज़ लोग भगा दिए गए हैं। केवल बङ्गाल में ही इनका प्रभुत्व शेष रह गया है। इसलिए सबसे पहले पूरब का रास्ता बन्द करना होगा। किन्तु क्या ये विद्रोही सिपाही मेरी इच्छा के अनुकूल कार्य

करेंगे ? क्या इन्हें मेरा परामर्श पसन्द आएगा ? नहीं, कभी नहीं। फिर इनका साथ देने से क्या लाभ ? ये तो डाकू हैं। इनका साथ देने से हमें भी डाकू होकर रहना पड़ेगा।"

लक्ष्मीबाई बड़ी देर तक इसी प्रकार की चिन्ता में पड़ी रहीं। उधर रात्रि का अन्त हुआ और प्रभात-कालीन समीर ने एक बार पुनः चिन्ता की जड़ खोद डालने का नवीन प्रयत्न आरम्भ किया।

गङ्गाबाई अपने कमरे में दूसरे प्रकार ही चिन्ता कर रही थीं। वह सोच रही थीं—"महाराज कितने इन्द्रियलोलुप थे! उनका हृदय कैसा पाषाण था! उनके कलुषित हृदय में सच्चे प्रेम का कभी सञ्चार ही न हुआ! वास्तव में संसार के लोग बड़े मूर्ख हैं। पिता का कहना अक्षरशः सत्य था। वह कहा करते थे, संसार के अधिकांश लोग अभी पशुत्व की श्रेणी से ऊपर नहीं उठ सके हैं। यदि ये मूर्ख और गँवार न होते तो काम-पिपासा को प्रकृति-प्रेम कैसे कहते? लक्ष्मी-बाई कैसी बुद्धिमती है, कितनी प्रतिभाशालिनी है; पर उसे भी इस बात का ज्ञान नहीं। वह समझती है, महाराज मुझसे स्नेह करते थे। यदि स्नेह न करते तो क्यों मुझे सदा अपने कमरे में बैठाए रखते? क्या यही प्रेम का लक्षण है? शास्त्र की बात मिथ्या नहीं—"न जातु कामः कामानामुप-भोगेन शाम्यति।" महाराज कितने कामुक थे! उपभोग से उनकी कुप्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ती जा रही थी, इसी कारण

कभी वह मेरा सङ्ग न छोड़ते थे। यह तो प्रेम नहीं—मोह था। पिता के दर्शन के लिए मैं कितना व्याकुल थी, पर उन्होंने मेरा कष्ट दूर करने के लिए क्या किया ? कुछ भी तो नहीं। हा परमेश्वर ! क्या मेरे पिता ने अन्त में कष्ट भोगने के लिए ही इतने यत्न से मेरा पालन-पोषण किया था !"

पिता का स्मरण आते ही गङ्गाबाई की आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बहने लगी। सिरहाने का वस्त्र भीग गया। अन्त में जब न रहा गया तो फूट-फूट कर रोने लगी ! उधर सवेरा हो चुका था। अंशुमाली की नवीन किरणें संसार में आशा और उत्साह वितरण कर रही थीं। उधर गङ्गाबाई सोए ही सोए दोनों हाथों से आँखें मूँदे रो रही थीं। वह जानती थी, अभी रात बाक़ी है। अकस्मात् लक्ष्मी-बाई के कमरे में प्रवेश करने से वह सिहर उठी। 'तुम रो रही हो' यह कर लक्ष्मीबाई ने दोनों हाथ पकड़ लिए।

लक्ष्मीबाई ने फिर पूछा—रोती क्यों हो ?

गङ्गाबाई बड़े कष्ट के साथ आत्म-संवरण कर, क्षीण स्वर मे बोलीं—तुम्हारे साथ बातचीत करने के बाद रात्रि में मुझे नींद नहीं आई।

"न नींद आने से क्या रोना होता है ? मुझसे अपनी बातें क्यो छिपाया करती हो ? मन की सब बातें मुझसे कहो। मैं शक्ति भर तुम्हारे कष्ट दूर करने की चेष्टा करूँगी।"

"क्या तुम मेरे कष्ट दूर कर सकती हो ? एक व्यक्ति को छोड़ मेरे मन का कष्ट दूर करने की और किसी में शक्ति नहीं।"

"वह कौन ? योगिराज ?"

"योगिराज नहीं, मृत्युराज—यमराज।"

"मैं नहीं समझती कि तुम्हारे मन की ऐसी अवस्था क्यों हुई। तुम्हारा शरीर क्रमशः क्षीण होता जा रहा है—तुम्हारा यह सुन्दर मुख दिनोंदिन मलिन पड़ रहा है। मुझसे सब बातें साफ-साफ कहती क्यों नहीं ?"

"मैं सच कह रही हूँ, तुमसे कोई बात छिपाती नहीं।"

"तब उस समय तुम क्यों रो रही थीं, उसे क्यों नहीं बताती हो ?"

"रात को मुझे नींद नहीं आई। मैं बहुत चिन्तित थी, एकाएक पिता जी की याद आ गई। उनके विषय में सोचते-सोचते मुझे रुलाई आ गइ। इसी से रो रही थी।"

"बताओ, तुम्हारे पिता कहाँ हैं ? मैं इसी क्षण उन्हें बुला कर तुमसे भेंट कराऊँगी। मैं उनके पैरों में पड़ कर उनसे यहीं रहने के लिए प्रार्थना करूँगी। हम दोनों उनकी सेवा करेंगी। वह यहीं आनन्द से रहेंगे।"

"मैं यह भी नहीं जानती, पिता जीवित हैं या नहीं और यदि वह जीवित भी होंगे तो झाँसी में, विशेषत. इस राज-

प्रासाद में पैर न रक्खेंगे। उनके सम्बन्ध में एक और भी चिन्ता बनी रहती है, मेरे शोक में वह कहीं पागल न हो गए हों।"

"तुम कहती क्या हो? तुम्हारे विवाह के बाद उनसे तुम्हारी मुलाक़ात कभी हुई थी?"

"नहीं।"

"तब तुम कैसे समझती हो कि वह पागल हो गए होंगे?"

"योगिराज से सुना था।"

"क्या सुना था?"

"आह! इसके लिए तो तुम्हें एक लम्बी कहानी सुनानी होगी। सब बातें कहे बिना तुम वास्तविक स्थिति समझ नहीं सकतीं।"

"तो आदि से अन्त तक कहानी ही सुना दो न! या मुझसे कोई बात छिपाना चाहती हो?"

गङ्गाबाई ने अपनी सौत से अब तक मन की बहुत सी बातें छिपा रक्खी थी। इस प्रेम-विह्वल अनुरोध ने उनके हृदय की ग्रन्थि खोल दी। वे शान्त-भाव से कहने लगीं—"मेरे विवाह के बाद जो गड़बड़ी उपस्थित हुई थी, वह तुम कुछ भी नहीं जानतीं, मैं भी इसके सम्बन्ध में सर्वथा अनभिज्ञ थी। किन्तु महाराज की मृत्यु के बाद मैंने सब बातें सुनी।

"मेरा विवाह हुए अभी एक महीना भी न हुआ था कि महाराज चिन्ताकुल रहने लगे। रात में प्रायः उन्हें नींद ही नहीं आती। कभी-कभी स्वप्न देख कर वह रो उठते। तन्द्रा की अवस्था में "मुझे मार डाला, मुझे मार डाला" कह कर चिल्लाने लगते। विवाह के बाद मुझे सदा उनसे डर लगने लगा। यदि वह स्वयं मुझसे कुछ न पूछते तो मैं उनसे कभी बात तक न करती। जेलखाने के क़ैदी की भाँति उनके शयनागार मे किसी तरह समय बिताने लगी। मेरा हृदय पिता जी को देखने के लिए व्याकुल हो रहा था।

"विवाह के एक महीने बाद एक दिन तीसरे पहर महाराज शयनागार के झरोखे पर चिन्ताकुल बैठे हुए थे। मैं भी उनके पास ही बैठी थी। अकस्मात् बाहर के उद्यान की ओर उनकी दृष्टि पड़ी और वह काँपते-काँपते आकर शय्या पर बैठ गए। जिस प्रकार एक अजान बालक भूत की बात सुन कर डर जाता है, महाराज की भी ठीक वही अवस्था थी। उद्यान में किसी को देख कर महाराज इतना डर गए, इसे जानने के लिए मेरे मन में कुछ कौतूहल-सा हुआ। मैं खिड़की के पास आकर ज्योंही खड़ी हुई, उद्यान में योगिराज दिखाई पड़े। वहाँ और कोई न था। योगिराज को देखते ही मेरे मन में कुछ साहस का सञ्चार हुआ। मुझे आशा हुई, इनसे पिता जी का समाचार मिलेगा। आज तक मैं महाराज के प्रश्नों का उत्तर दे दिया करती थी, उनसे

और कोई बातचीत नहीं करती। उनसे अपनी ओर से कोई प्रश्न करने में भय होता था। आज ही प्रथम बार मैंने हृदय दृढ़ करके महाराज से पूछा—उद्यान में योगिराज को देख कर आप इतने भयभीत क्यों हो गए?

"महाराज ने मेरे प्रश्न का कुछ भी उत्तर नही दिया। तब मैं पास जाकर उनके सिरहाने बैठ गई। उनसे फिर पूछा—योगिराज को देखकर आप इतना डर क्यों गए हैं?

"इस बार भी महाराज ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मेरा साहस क्रमशः बढ़ता गया। मै उनके कन्धे पर हाथ रख कर बोली—आप योगिराज को देख कर इतना त्रस्त क्यों हो गए हैं?

"महाराज़ ने फिर भी कुछ उत्तर नहीं दिया। उलटे मुझसे ही पूछने लगे—क्या तुम इस आदमी को पहले से पहचानती हो?

"मैंने कहा—इनका नाम आनन्दाश्रम स्वामी है। यह मेरे पिता से शास्त्राध्ययन करते थे। जान पड़ता है, मुझे पिता का सम्वाद देने आए हैं। मैं इनसे साक्षात् करना चाहती हूँ।

"महाराज बोले—नही, तुम उससे साक्षात् नहीं कर सकतीं। यह आदमी बड़ा धूर्त है। यह अङ्गरेजों का गुप्तचर है। दिन में संन्यासी के वेश में भ्रमण करता है और रात्रि

में अङ्गरेज़ी पोशाक पहन कर पोलिटिकल-एजेण्ट और रेज़ि-डेण्ट के पास जाता है।

"योगिराज पर मैं बड़े भाई की तरह श्रद्धा रखती थी। उनमें मेरा असीम अनुराग था। महाराज के मुहँ से उनकी निन्दा सुन कर मुझे मर्मान्तक पीड़ा हुई। मैंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से महाराज से कहा—'ये बड़े ज्ञानी महात्मा हैं, मैं इनसे अवश्य भेंट करूँगी।' इतना कह कर मैं रोने लगी।

"तब महाराज मेरा हाथ पकड़ कर कृत्रिम प्रेम दिखाते हुए बोले—तुम झाँसी की रानी हो। ऐसे तुच्छ व्यक्तियों से मिलना तुम्हारी मर्यादा के प्रतिकूल है। यदि तुम्हें अपना गौरव थोड़ा भी प्रिय है तो मिलन का विचार छोड़ दो।

"किन्तु मैं उनकी बात पर किसी प्रकार भी राज़ी नहीं हुई। अन्त में वह क्रोध से काँपते हुए बोले -यदि मेरी आज्ञा नहीं मानतीं तो इसी समय तलवार से तुम्हारा सिर उड़ा दूँगा।

"उनकी वह विकराल मूर्ति देख कर मैं बहुत डरी। वह कुछ देर तक खामोश बैठे रहे। मैं भी निस्तब्ध बैठी थी। सन्ध्या हो रही थी, सूर्य डूबने ही को था। महाराज के नृत्य-भवन जाने की तैयारियाँ हो रही थीं। वह शयनागार में चले गए। मैं फिर खिड़की से मुँह बाहर कर उद्यान की ओर देखने लगी। इस बार देखा कि योगिराज एक वृक्ष की आड़ में खड़े एक दासी से बातचीत कर रहे हैं। उनकी दृष्टि आक-

षित करने के लिए मैं टकटकी बाँधे उनकी ओर देखने लगी। किन्तु वह मुझे देख न सके। कुछ देर बाद दासी उनसे विदा हो महल की ओर चली गई। लगभग आधी घड़ी बाद उसने मेरे पास आकर योगिराज की लिखी हुई एक चिट्ठी मेरे हाथ में दी। उसमें विशेष कुछ न लिखा था। केवल यही दो-एक बातें थीं—'तुम किस अवस्था में हो, यही तुम्हारे पिता जानना चाहते हैं। यदि राजभवन में रानी बन अपने को सुखी समझती हो, तो तुम्हारे पिता भी सुखी होंगे और तुमसे निश्चिन्त होकर गृहस्थाश्रम छोड़ तीर्थाटन आरम्भ करेंगे। पर यदि राजमहल तुम्हें कारागार प्रतीत होता हो, यदि यहाँ एक-एक पल तुम्हें एक-एक युग बीत रहा हो तो प्राण-पण से चेष्टा कर तुम्हें इस महल से ले ही जाना होगा। पत्र का उत्तर इसी समय लिख कर मेरे पास भेज दो।'

"मैं पत्र पढ़ कर सोचने लगी कि क्या उत्तर लिखूँ। कुछ स्थिर न कर सकी। दासी उत्तर के लिए बहुत जल्दी करने लगी, तब कुछ अधिक न लिख कर केवल इतना ही लिख दिया—'मैं अच्छी तरह हूँ। कोई विशेष कष्ट नहीं। पिता के दर्शन के लिए मन बहुत व्याकुल हो रहा है। उनसे शीघ्र दर्शन देने के लिए कह दीजिएगा।'

"योगिराज ने मेरा उत्तर पाकर पुनः उसी दासी के हाथ लिख भेजा 'तुम सुखी हो, यह सुन कर ही तुम्हारे पिता सुखी होंगे। उनसे साक्षात् होने का कोई उपाय नहीं।

वह कभी झाँसी के राजप्रासाद में पैर न रक्खेंगे। शीघ्र ही झाँसी छोड़ कर पर्यटन में प्रवृत्त होंगे। मैं भी तुमसे अब जन्म भर के लिए बिदा लेता हूँ।'

"इस जन्म में पिता से मुलाक़ात न हो सकेगी" यह पढ़ते ही मेरे सिर पर मानो वज्रपात हो गया। शोक से विह्वल हो मैं शय्या पर गिर पड़ी। योगिराज का पत्र हाथ से छूट कर भूमि पर जा गिरा। कितनी देर तक मैं अचेत पड़ी रही, मैं नहीं कह सकती। महाराज ने शयनागार में आकर मुझे इस अवस्था में देखा और होश में लाने की चेष्टा करने लगे। चैतन्य होने पर मैंने योगिराज के दोनों पत्र महाराज के हाथ में देखे।

"उन्हे पढ़ते ही महाराज की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वे गरज कर बोले—किसने तुम्हे ये पत्र लाकर दिए, तुम्हे यह बतलाना पड़ेगा। यदि ठीक-ठीक नहीं बताती तो अभी तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूँगा।

"मैं शसङ्क तो थी ही, उसी समय समझ गई कि यदि दासी का नाम बता दूँ तो आज उसकी रक्षा नहीं। मैंने अपना स्वर कठोर बना कर कहा—मैं पत्र लाने वाले का नाम कभी नहीं बताऊँगी, चाहे इसके लिए तुम मेरी गर्दन भले ही उड़ा दो।

"इसके पहले मैंने महाराज को 'तुम' कभी नहीं कहा था। आज पहली बार तुम कह कर उनका तिरस्कार किया।

"महाराज भौंचक रह गए। कुछ देर तक मौन रह कर बोले—सचमुच मैंने घर में काला साँप ला रक्खा है। उस बुड्ढे बन्दर की छोकड़ी मेरी सोने की लङ्का ज़रूर ही मिट्टी में मिला देगी।

"महाराज का आशय समझने में मुझे विलम्ब न हुआ। महाराज ने बूढ़ा बन्दर कह कर मेरे पिता का अपमान किया है, यह सोचते ही मेरा सारा शरीर क्रोध से जल उठा। मैंने म्यान से तलवार खींच कर उनसे कहा—'नराधम पिशाच! मेरे पिता के लिए ऐसे अपशब्द मुँह से निकालता है? मैं इसी तलवार से अभी तुम्हें दो टुकड़े किए देती हूँ।

"महाराज इतना सुनते ही—क्या कहूँ उनकी कायरता और स्त्रैणता को!! तुम जब महाराष्ट्र जाति के नाम पर व्यर्थ शेखी मारती हो, तो मेरी हँसी रोके नहीं रुकती। क्या महाराष्ट्र जाति में अब भी वीरता का नामोनिशान बाकी है?—महाराज मेरा क्रोध देखते ही मेरे पैरों पर गिर पड़े और लगे पैर पकड़ कर कहने—देखो, मै तुम्हारा स्वामी हूँ। क्या मेरे प्राण और राज्य नष्ट कर तुम सुखी होओगी?

"मेरे मन में-एक साथ ही घृणा और दया के भाव पैदा हुए। मैंने उनसे पूछा—कौन तुम्हारे प्राण और राज्य लेने की चेष्टा कर रहा है?

"वह बोले—इतनी थोड़ी अवस्था में इतना कपट सीख

लिया है ? क्या तुमसे कुछ भी छिपा हुआ है ? तुम्हारे बाप ने पोलिटिकल एजेण्ट के पास मेरे विरुद्ध न जाने क्या-क्या अभियोग उपस्थित किया है। यह संन्यासी भी पक्का धूर्त है, अङ्गरेज़ी जानता है।

"मैंने कहा—यह तो मैं भी जानती हूँ कि योगिराज अङ्गरेज़ी पढ़े-लिखे हैं, तुम्हारे जैसे मूर्ख नहीं। किन्तु पिता ने एजेण्ट के पास क्या शिकायत की है, यह तो मैं कुछ भी नही जानती।

"महाराज ने व्यङ्ग करके कहा—छिपे-छिपे पत्र-व्यवहार कर रही हो और जानतीं कुछ भी नहीं ! अब मैंने समझा, स्त्रियाँ पढ़-लिख कर कितना दुश्चरित्रा हो सकती हैं ! न जाने किस बुरी घड़ी में मैं तुम्हे अपने घर लाया था। तुम्हारे कारण मेरे प्राण भी गए और राज्य भी।

"मैं उनकी इन बातो का अर्थ तो कुछ भी न समझ सकी, किन्तु उनके आक्षेप ने मुझे पुनः उत्तेजित कर दिया। उनकी गिड़गिड़ाहट सुन कर मै शान्त हो गई थी। इस बार मेरी कोपाग्नि फिर भड़की और मैं लगी उनकी ओर क्रूर दृष्टि से देखने। मेरी इस दृष्टि ने उन्हे पुनः डरा दिया। उनका हृदय काँपने लगा। वह फिर मेरे पैरों पर गिर कर कहने लगे—मैं तुम्हें प्रधान रानी बना दूँगा। तुम्हें लक्ष्मीबाई से भी अधिक गहने दूँगा। तुम तो लिखना जानती ही हो। अपने पिता को एक पत्र लिख दो कि मैं यहाँ बड़े सुख

में हूँ। किसी ने छल-बल से मेरा हरण नहीं किया था। मैने स्वेच्छा से ही महाराज से विवाह किया था।

"यह सुन कर मै और भी असमञ्जस में पड़ गई। मेरे मन में नाना प्रकार की शङ्काओं का आघात-प्रतिघात होने लगा। मैं समझ गई कि मेरे विवाह के कारण अवश्य ही कोई बड़ा गोल-माल हो रहा है। मै बहुत सोच-विचार कर बोली—मैं तब तक पत्र नहीं लिख सकती जब तक तुम मुझे साफ-साफ यह न बता दो कि मेरे पिता कहाँ है और उन्होने कौन-कौन से अभियोग तुम्हारे विरुद्ध उपस्थित किए है।

"महाराज आश्चर्य के साथ मेरे मुँह की ओर देखने लगे। उन्हें मेरी बातो पर विश्वास न हुआ। थोड़ी देर शान्त रह कर बोले—फिर वही कपट की बातें ? हमें ही चकमा देती हो ? तुम्हें अपने पिता का सब समाचार विदित है। अच्छी बात है ! तुम्हें जो करना हो, करो। मैं तुम्हारे पिता को जेल में रक्खूँगा।

"मेरे पिता जेल में रहेगे—यह सुन कर मैं हतबुद्धि-सी रह गई। शोक ने मुझे पागल कर दिया। 'हा पिता ! क्या तुम्हारे भाग्य में यही बदा था !' कह कर मैं अचेत होकर गिर पड़ी। होश आने पर देखा, मै महाराज की गोदी मे हूँ। उस समय मुझे महाराज का स्पर्श कैसा कलुषित मालूम हुआ, मै शब्दों द्वारा प्रकट नही कर सकती। आमिषभक्षी, अपवित्र नीच जाति के शरीर से छू जाने पर जैसी घृणा

होती है, मुझे ठीक वैसी ही घृणा हुई। मैं उछल कर उनकी गोद से दूर जा बैठी। महाराज पुनः अपने पास बैठने के लिए मुझसे आग्रह करने लगे। मैंने उन्हें रोषपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—मैं तुझे कभी स्पर्श भी न करूँगी। पिता के जेल जाने के पहले मैं अपने सारे दुखों का अन्त कर लूँगी।

"मैं आत्महत्या कर लूँगी—यह सुन कर महाराज बहुत घबराए। वह मेरा हाथ पकड़ कर मुझे समझाने लगे और सान्त्वना देने के अभिप्राय से बोले—नहीं, नहीं, तुम शान्त होओ, मैं तुम्हारे पिता को जेल में नहीं रक्खूँगा। किन्तु इन लुभावने शब्दों से मेरा सन्तोष न हुआ। मैं पूर्व-वत् कठोर स्वर में बोली—पिता इस समय कहाँ हैं, किस अवस्था में हैं, मेरे विवाह से क्या गोल-माल हुआ है। सब बातें मुझे साफ-साफ अभी बताओ, नहीं तो इसी समय मैं आत्महत्या करती हूँ।

"महाराज मुस्कराते हुए बोले—बाप के ही अनुरूप कन्या भी है। मानो कुछ जानती ही नहीं! तुम तो अन्तःपुर में रहते हुए भी बराबर पत्र-व्यवहार किया करती हो।

"मैं बड़े आग्रह-पूर्वक महाराज से पूछने लगी—मैं धर्म की शपथ खाकर कहती हूँ, इन बातों के विषय में मैं कुछ भी नहीं जानती। केवल आज ही तीसरे पहर एक स्त्री ने योगिराज के ये दो पत्र लाकर दिए हैं।

"महाराज ने पूछा—उस स्त्री का नाम क्या है ?

"मैने कहा—मै नाम न बताऊँगी। नाम बताने पर क्या वह जीती बचेगी ?

"मेरा उत्तर सुन कर महाराज चकित रह गए। उन्हे अधिक कुछ पूछने का साहस न हुआ। मैं उसी दिन से उनसे इतनी घृणा करने लगी कि उन्हें छूने में भी मुझे सङ्कोच होता था। मैं फिर कभी उनकी शय्या पर न सोई। मेरा जीवन शोक और चिन्ता का निवास-स्थल बन गया। उधर महाराज भी रोगाक्रान्त हुए। उनका रोग दिन-दिन बढ़ने लगा। उस समय तुम्हीं उनकी शय्या के पास बैठ कर निरन्तर उनकी सेवा-शुश्रूषा किया करती थीं। मैं तो उन्हे देखने भी न जाती थी। मरने के समय तक मेरी उनकी देखा-देखी न हुई।"

लक्ष्मीबाई बड़ी उत्सुकता से सब बातें सुन [illegible] इतना सुन चुकने पर उनसे रहा न गया। वह [illegible] काट कर बोल उठीं—अब मेरी समझ में [illegible] रुग्णावस्था में क्यों बहुत सी असम्बद्ध [illegible] उनकी बीमारी का प्रकृत कारण [illegible] सकी हूँ।

गङ्गाबाई ने फिर कहना [illegible] तक महाराज रोग-शय्या [illegible] पिता अथवा योगिराज [illegible]

कुशल जानने के लिए मेरा चित्त सदा व्याकुल रहता था। मैं ईश्वर से प्रार्थना किया करती थी कि वह मेरे पिता तथा योगिराज को चिरायु करें और उन्हें मङ्गल-पूर्वक रक्खें।

"महाराज की मृत्यु होते ही योगिराज झाँसी आगए और यहीं रहने लगे। तुम्हारे पिता से उनकी बड़ी घनिष्ठता हो गई। तुम्हें याद होगा, वह तुमसे भी कभी-कभी मिला करते थे। यहाँ रह कर वह इस बात का प्रयत्न करने लगे कि झाँसी किसी प्रकार अङ्गरेजों के क़ब्ज़े में न जाय। उसी समय मैं एक दिन गुप्त रूप से उनसे मिली थी। महाराज से मेरी जितनी बातें हुई थीं, मैंने सब उन्हें कह सुनाईं। बहुत देर तक बातचीत करने के बाद उन्होंने मुझे बताया कि मेरे विवाह के बाद क्या-क्या गोल-माल हुआ था।"

लक्ष्मीबाई फिर बीच ही में बोल उठीं—तुम्हारे विवाह के बाद गोल-माल क्या हुआ था?

"मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूँ कि पिता जी की अनुपस्थिति में ही भाई ने मुझे अर्थ-लोभ से महाराज के हाथों सौंप दिया था। जब पिता जी और योगिराज पूना से लौटे तो उन्हें सब बातों का पता लगा। उन्होंने उसी समय रेजिडेण्ट को इसकी सूचना दी और उसके पास महाराज के विरुद्ध अनेक अभियोग उपस्थित किए। रेजिडेण्ट छिपे-छिपे इस घटना की जाँच करने लगा। पर पिता को इतने से ही सन्तोष न हुआ। उन्होंने पोलिटिकल एजेण्ट

तक इसकी ख़बर पहुँचाई। बहुत सोच-विचार और जाँच-पड़ताल करने के बाद रेज़िडेण्ट और पोलिटिकल एजेण्ट दोनों ने पिता जी को यह उत्तर दिया कि कन्या के भाई ने स्वयं राजमहल में जाकर महाराज से कन्या का विवाह कर दिया है। ऐसी अवस्था में गवर्नमेण्ट इस विषय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझती। इधर जाँच-पड़ताल बराबर जारी रही। महाराज अनेक दुश्चिन्ताओं से पीड़ित रहने लगे। बीच-बीच में योगिराज दरबार में आकर महाराज को नाना प्रकार के भय दिखाया करते थे। इन्हीं सब कारणों से महाराज बीमार पड़े। इसमें लेशमात्र भी शङ्का नहीं कि मेरा विवाह ही महाराज की अकाल मृत्यु का मूल कारण है।"

लक्ष्मीबाई ने फिर पूछा—जब पोलिटिकल एजेण्ट ने इस मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया, तो तुम्हारे पिता ने क्या किया ?

"पिता बहुत बिगड़े। उन्होंने एजेण्ट को चेतावनी देते हुए कहा कि यदि आप लोग बिना विलम्ब मेरी कन्या को अन्तःपुर से बाहर निकाल कर मेरे हवाले नहीं करते तो मैं सैन्य संग्रह कर झाँसी पर आक्रमण करूँगा और इस अन्याय का भरपूर बदला लूँगा।

"एजेण्ट ने चेतावनी का जवाब धमकी से दिया। उसने पिता से कहा—झाँसी के अधीश्वर की रक्षा का भार अङ्ग-

रेज़ी सरकार पर है। झाँसी-राज्य के विरुद्ध विद्रोह करना अङ्गरेज़ी राज्य से लोहा लेना है। याद रखना, षड्यन्त्र का फल तुम्हारे लिए प्राणदण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

"परन्तु पिता जी अङ्गरेज़ों से डरने वाले कब थे? वह प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा कर घर लौटे। इस बार जिन कठोर शब्दों में उन्होंने अपनी माता की भर्त्सना की, वैसे कटु शब्दों का व्यवहार उन्होने माता के प्रति जीवन में पहले कभी न किया था। वह क्रोध रोकने में असमर्थ होकर बोले, सर्वनाशिनी, पापिनी, तुमने माँ होकर भी मुझे इतना कष्ट दिया, इसका फल तुम्हे अवश्य मिलेगा।

"इतना कह कर उन्होंने अपनी माता के सामने रुपयों का एक बॉक्स फेंक दिया। इसमें दो-एक हज़ार रुपए रहे होंगे। यही उनके समस्त जीवन के कमाई की आर्थिक पूँजी थी। उन्होंने कहा—तुमने मुझे अपने गर्भ में दस मास तक धारण किया है। अक्षम्य अपराधिनी होने पर भी तुम्हारा पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। इसी भावना से प्रेरित होकर मेरे पास जो कुछ भी सञ्चित सम्पत्ति थी, वह सब तुम्हें दिए जाता हूँ। मैं फिर इस भूमि में कभी पैर न रक्खूँगा और न इस जीवन में कभी तुम्हारा मुँह देखूँगा।

"इस प्रकार उन्हें घर-बार छोड़ते हुए देखकर दादी

उन्हें समझाने लगीं—'बेटा, मैंने लड़की राजा के घर दी है। वह वहाँ रानी बनकर सुख से रहेगी। तुझे न जाने क्या दुर्बुद्धि पैदा हुई है, जिससे तू इतना अनर्थ कर रहा है।' दादी के इस प्रलाप का पिता के ऊपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह घर छोड़ देश-विदेश घूमने लगे। उनकी सेवा तथा सान्त्वना के लिए योगिराज उनके साथ गए, पर अधिक दिनों तक दोनों आदमियों का साथ न निभ सका। धीरे-धीरे उनमें घोर मतभेद हो गया। पिता अङ्गरेज़ों पर क्रुद्ध तो थे ही, वह सर्वत्र घूम-घूमकर इस बात का प्रयत्न करने लगे कि देश में घोर विप्लव मच जाय। अङ्गरेज़ी शासन की जड़ खोद फेंकने के लिए वह दिन-रात व्याकुल रहने लगे। योगिराज इस आदर्श के पुजारी न थे। वह पिता जी से अपना सङ्कल्प त्याग देने के लिए बार-बार आग्रह करने लगे, पर पिता जी ने उनकी एक न सुनी। अन्त में विवश हो, उन्हे पिता जी का साथ छोड़ना पड़ा। वह झाँसी आकर रहने लगे। उनके आने के दो ही एक दिन पहले महाराज की मृत्यु हो चुकी थी। उस समय अङ्गरेज़ों ने झाँसी को अपने राज्य में मिला लेने की ठान ली थी। योगिराज तुम्हारे पिता से मिल कर अङ्गरेज़ों से झाँसी की रक्षा करने का उपाय करने लगे।"

"तुम्हारे विवाह के कारण इतना तूफान उठ खड़ा हुआ था, यह तो मैं ज़रा भी नहीं जानती।"

"तुम जानतीं कैसे ? इन बातों का पता तुम्हें महाराज से लग सकता था। किन्तु वह क्या अपने मन की एक भी बात तुमसे कहा करते थे ? तुम कितनी कर्त्तव्यपरायणा हो, तुम्हारे भीतर कितनी प्रतिभा छिपी हुई है, तुम्हारी बुद्धि कितनी तीक्ष्ण है, इसे जानने की महाराज में शक्ति कहाँ थी ? हमारे देशी राजे मनुष्य नहीं, पशु—कामासक्त पशु—और व्यभिचार के कीड़े हैं। स्त्रियों के गुणों की परख वे क्या करेंगे ?"

"तुम कहती हो राजा लोग स्त्रियों को चाहते ही नहीं ? महाराज हमें कितना चाहते थे ! मैं भी उनके लिए सदा अपना सर्वस्व-त्याग करने को प्रस्तुत रहती थी। महाराज के सुख मे वाधा न पहुँचे, यही सोचकर मैंने उन्हें विवाह करने की सम्मति प्रदान की थी। मैं जानती थी, मैं वन्ध्या हूँ। मेरे गर्भ से कोई सन्तान उत्पन्न न होगी। सम्भव है, दूसरी स्त्री से सन्तान उत्पन्न हो जाय और महाराज का वंश लोप होने से वच जाय। किन्तु महाराज ने ये सब वातें मुझे क्यों न वताईं, इसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता।"

"क्या तुम सचमुच समझती हो कि महाराज तुमसे प्रेम रखते थे ?"

"अवश्य रखते थे—रखते क्यों नहीं थे ?"

"क्या तुम भी उन्हें चाहती थीं ?"

"क्या मैं उन्हें नहीं चाहती थी? स्वामी ही तो स्त्री का सर्वस्व है। भला उसके लिए प्राण विसर्जन करना क्या कोई बड़ी बात है!"

"प्रेम किसे कहते हैं, यह तुम नहीं जानतीं और महाराज के लिए तो इसका जानना जन्म-जन्मान्तर में भी सम्भव नहीं। महाराज यदि तुम्हें चाहते होते, तो उन्हें दूसरी पत्नी लाने की क्या आवश्यकता होती?"

"पुरुष तो एकाधिक विवाह करते ही है। पर इसका क्या यह अर्थ है कि वे स्त्रियों को चाहते ही नहीं?"

यह उत्तर सुनकर गङ्गाबाई आगे कुछ कह न सकीं। वह मन ही मन सोचने लगी—क्या स्त्रियों का आत्मगौरव यहाँ तक नष्ट हो चुका है? क्या उन्हें इस प्रताड़ित अवस्था में रहना ही अच्छा लगता है? योगिराज ठीक ही कहा करते थे कि अज्ञान मनुष्य को दुख का अनुभव करने में असमर्थ बना देता है। अज्ञान ही सुख का मूल है। ज्ञान-चक्षु खुलने पर तो सारे भूमण्डल में दुख ही दुख दिखाई देता है। समस्त विश्व अगाध करुणा की मूर्त्ति बन जाता है।

गङ्गाबाई को इस प्रकार मौन होकर चिन्तन करते देख लक्ष्मीबाई उनके कन्धे पर हाथ रखकर बोलीं—"तुम क्या सोच रही हो? महाराज तुम्हें खूब चाहते थे। तुम्हारे

पिता उन्हें सिंहासन से च्युत करने का षड्यन्त्र रच रहे थे, इसीलिए वह तुमसे कुछ नाराज़ हो गए थे।"

गङ्गाबाई ने इस बार भी कुछ उत्तर न दिया। वह पूर्ववत् चुपचाप बैठी रहीं। लक्ष्मीबाई फिर बोलीं—क्या यह विचार तुम्हारे मर्मस्थल को विदीर्ण कर रहा है कि महाराज तुमसे सच्चा स्नेह न रखते थे ?

इस बार गङ्गाबाई हँसते-हँसते बोलीं—लोगों का घर के कुत्ते-बिल्लियों पर जो स्नेह होता है, महाराज भी मुझसे ठीक वैसा ही स्नेह रखते थे।

"मै इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकती। यदि महाराज तुमसे प्रेम न करते होते, तो तुम्हे क्यो सदा अपने पास बैठाए रखते ?"

"इस बात को बार-बार क्यों दुहराती हो ? मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूँ कि प्रेम क्या वस्तु है, वास्तविक चाहना किसे कहते हैं, यह तुम नहीं जानती और महाराज के मस्तिष्क में तो यह ज्ञान कभी प्रवेश न करेगा।"

"तो एक बार हमें सिखा क्यों नहीं देतीं कि प्रेम क्या वस्तु है ? तुम तो रात-दिन पोथी पढ़ा करती हो। तुम्हीं हमारे अन्तःपुर की अध्यापिका बनो और प्रेम की एक पाठशाला स्थापित कर दो। हम सब लोग तुम्हारी पाठशाला में प्रेम करना सीखेंगी ?"

वीराङ्गना लक्ष्मीबाई अशिक्षिता रमणी होते हुए भी

जब कोई बात एक बार सुन लेती थीं तो उसका रहस्य जाने बिना कभी चैन न लेतीं। अपने इसी स्वभाव-सिद्ध गुण के कारण वह शासन-नीति और रण-कौशल मे अपूर्व पण्डिता हो गई थीं। पति अथवा कर्मचारियों के मुँह से शासन-सम्बन्धी कोई बात एक बार सुन लेने पर वह उसके सम्बन्ध मे सतत-चिन्ता आरम्भ कर देतीं और समय पड़ने पर उसी विषय में पति और कर्मचारियों को सदुपदेश देकर अनेक कठिन समस्याओं को सहज ही हल कर देती थीं। बाल्यावस्था मे वह अपने पिता के मुँह से सींधिया के साथ लॉर्ड लेक के युद्ध और पिण्डारी-युद्ध की कहानियाँ सुन चुकी थीं। वह इन युद्धों के पक्ष-विपक्ष के रण-कौशल की आलोचना भी करती थीं और अन्य युद्धों के साथ इनकी तारतम्य परीक्षा करती थीं। इसी अध्ययन और चिन्तन का फल था कि महारानी लक्ष्मीबाई युद्ध-कला में अपना सानी न रखती थीं। आज अपनी सौत के मुँह से प्रेम की चर्चा सुन कर पहले तो उन्होंने कुछ हास-परिहास किया। किन्तु विषय की नवीनता ने उनकी समस्त चिन्ता-शक्ति, सारी ज्ञान-पिपासा और सम्पूर्ण अध्ययन-शीलता को एक बार ही आकर्षित कर लिया था।

संसार मे ज्ञानाभिमानियों की कमी नहीं, यदि अभाव है तो सच्चे ज्ञान-पिपासुओं का। आजकल के शिक्षित कहलाने वाले युवक विश्वविद्यालय की चहारदीवारी के बाहर निकलते

ही अपने को सम्पूर्ण शास्त्रों का अधिकारी एवं सब विद्याओं का स्वामी समझ बैठते हैं। किसी विषय में उनकी धारणा भ्रमात्मक हो सकती है, यह तो वे स्वप्न मे भी नहीं सोचते। उनका यह दम्भ ही उनकी सारी ज्ञान-पिपासा नष्ट कर, उनकी बुद्धि को जड़ और मन को अरुचिपूर्ण बना देता है। धर्म की मर्यादा और शास्त्र का महत्व न स्वीकार करना ही वे अपना गौरव समझते हैं। बिना विचार किए, अपने हृदय को बिना टटोले ही, अपने विरोधियो का मज़ाक़ बना देना उनके लिए साधारण-सी बातें हैं। इसके विपरीत जिसमें जिज्ञासा की लगन है, जिसका हृदय झूठे अहङ्कार के तिमिर से आच्छन्न नहीं हो गया है, जो अपने हृदय को सदा सत्य की पुनीत धारा से सींचना चाहता है, वह कोई नया विषय सामने आते ही तत्क्षण उसके तत्वानुसन्धान में प्रवृत्त हो जाता है।

परिहास लक्ष्मीबाई के मुख का स्थायी भाव न था। चिन्ता को ही उनके मुख-कमल की शोभा बढ़ाने का चिर-सौभाग्य प्राप्त हुआ था। "प्रेम क्या है, यह तुम नहीं जानती" यह सुनकर जिस समय वह गङ्गाबाई से परिहास कर रही थीं, उस समय भी उनके अन्तरतर में यह भावना जाग्रत थी कि गङ्गाबाई एक अद्वितीय विदुषी हैं। इन्होंने अनेक शास्त्रों का प्रगाढ़ अध्ययन किया है। इनके कथन में अवश्य ही कोई गम्भीर तत्व छिपा हुआ है।

उन्होंने परिहास का भाव छोड़ कर उसी समय प्रश्न किया—मैं जिसे प्रेम कहती हूँ, वह यदि सच्चा प्रेम नहीं है तो फिर सच्चे प्रेम की परिभाषा क्या है ? उसे पहचानने का क्या उपाय है ?

गङ्गाबाई इस विषय में अधिक तर्क-वितर्क करना नही चाहती थीं। उनकी उदासीनता मे यह भावना गुप्त रूप से काम कर रही थी कि लक्ष्मीबाई ये बातें समझ नहीं सकतीं। उन्होंने इस वार्तालाप का यही अन्त कर देना चाहा। किन्तु लक्ष्मीबाई प्रेम का अद्भुत रहस्य जाने बिना विश्राम लेने वाली न थीं। उन्होंने गङ्गाबाई की ठुड्ढी पकड़ कर कहा—प्रेम क्या है, यह तुम्हे आज बताना ही होगा। अपनी विद्या की सारी शक्ति लगा कर तुम मेरे सामने प्रेम की व्याख्या करो।

गङ्गाबाई ने जब देखा कि किसी तरह उनका पिण्ड नहीं छूटता, तब विवश होकर कहने लगीं—प्रेम एक अद्भुत वस्तु है। यह स्वर्ग का वैभव और संसार की शान्ति है। मैं इसकी महिमा पहले नहीं जानती थी। पिता जी से सैकड़ो पुस्तकें पढ़ी थी, स्वयं भी अनेक विषयों का विवेचन किया था, पर प्रेम का मर्म न समझ सकी थी। महाराज की मृत्यु के बाद एक दिन जब योगिराज से बातें हुईं तब मानो मेरी निद्रा भङ्ग हो गई, मै सोते से जाग पड़ी, मेरे ज्ञान-नेत्र खुल गए। सच बात तो यह

है कि आत्म-दर्शन ही ज्ञान-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। अपने ही हृदय-रूपी स्लेट पर अङ्कित श्वेत और श्याम रेखाओं का परिदर्शन सब रहस्यों को खोल कर बुद्धि-रूपी आँख के सामने बिखेर देता है। तुम अपने हृदय को टटोल कर अपने मन की परीक्षा लेकर देखो। तुम्हे पता चलेगा, तुम महाराज से प्रेम नहीं करती थीं। तुम्हे तो कर्त्तव्यपालन की धुन है। तुम्हारे सारे प्रयत्नों का केन्द्र है कर्त्तव्य की उपासना। तुम उसी की वेदी पर अपने प्राणों तक को न्योछावर करने में अपने को धन्य मानती हो। हमारे देश की शिक्षा के अनुसार पति ही स्त्री का स्वर्ग है, उसका परमेश्वर है, उसका सब कुछ है। उसको सुखी और सन्तुष्ट रखना ही पत्नी-जीवन की एकान्त साधना है। बाल्यावस्था से ही इस शिक्षा ने तुम्हारे हृदय मे घर कर लिया था। तुम्हारे रग-रग और रोम-रोम में इसका असर मौजूद है। इसीलिए विवाह के पहले जिस महाराज को न तुमने जाना था, न सुना था, न जिसका स्वरूप भी परिचय प्राप्त किया था, उसी महाराज को विवाह होते ही तुमने अपने सर्वस्व का स्वामी और अपनी आराधना का आधार बना लिया। यह तुमसे किसने कराया? तुम्हारे कर्त्तव्य की भावना ने। तुम्हारे पूर्व संस्कार कहने लगे कि इसी व्यक्ति की सेवा, इसी का सुख-साधन तुम्हारे जीवन की चरम चरितार्थता है। प्राणों की बाज़ी लगा कर भी इस अनुष्ठान को सम्पूर्ण

करना तुम्हारा कर्तव्य है। किन्तु इसका नाम तो प्रेम नहीं है। यदि तुम्हें उनसे नाम मात्र का भी प्रेम होता तो तुम उन्हें किसी अन्य स्त्री का पाणिग्रहण करने की अनुमति कदापि न देतीं। उन्हें अपने हृदय के कोने में छिपा रखने की लालसा से तुम पगली हो जातीं। उनकी दृष्टि से दूर होते ही तुम्हारे हृदय की तन्त्री किसी असम्बद्ध भाव से झंकृत हो जाती। प्रेम की पहचान है पागलपन। जिसके लिए तुम पगली नहीं हो सकतीं उसके लिए तुम्हारे हृदय में प्रेम की बूँद भी नही। मैंने तो तुम्हें महाराज के लिए कभी पागल होते नहीं देखा। तुम तो उन्हें अनायास ही दो-चार पत्नियों का पति बनने की आज्ञा दे सकती थीं। यदि इसी को प्रेम कहा जाय तो फिर प्रेम का अभाव किसे कहेंगे? अनेक धर्मात्मा और सन्त लोग नाना कष्ट झेल कर तीर्थों की यात्रा करते हैं। नदियों और सरोवरों के जल से क्षण-भङ्गुर शरीर को धोकर चिरसञ्चित पापों का क्षय और नवीन पुण्य का सञ्चय करते फिरते हैं; क्या उन्हे तीर्थों से प्रेम है? नदियों और सरोवरों से स्नेह है? कदापि नहीं, उनका भीतरी संस्कार कहता है कि ऐसा करने से मृत्यु के बाद उनके लिए स्वर्ग का द्वार खुल जायगा और वहाँ के उन सब भोगों को भोग सकेंगे, उन सब विलासों का स्वाद चख सकेंगे, जिनके लिए उनका सारा जीवन पृथ्वी पर व्यर्थ ही तरसता रह गया। भारतवर्ष की स्त्रियों का जीवन

भी ऐसा ही है। शिक्षा का संस्कार कहता है कि धर्म ही तुम्हारे जीवन का प्राण है और पति की भक्ति ही उस धर्म की पूर्ति है। यदि स्त्रियाँ इस धर्म-भावना से प्रेरित न होतीं तो विवाह के पहले—केवल एक मुहूर्त पहले, जिसका दर्शन तक नहीं किया था उसी के लिए विवाह के बाद प्रेम की कलकलस्विनी सरिता कहाँ से उमड़ पड़ती? सांसारिक स्वार्थ की दृष्टि से भी पति-पत्नी ऐक्य के सूत्र में आबद्ध रहते हैं। यह स्वार्थ भी उनके पारस्परिक मोह के बन्धन को दृढ़ करने में कम सहायक नहीं होता। जिस प्रकार एक गगनविहारी शुक को पिञ्जरबद्ध कर, उसे दो-चार दिन दूध-भात खिलाने से उससे एक ममता हो जाती है, उसके लिए हृदय में एक कृत्रिम प्रेम का अनुभव होने लगता है, उसी प्रकार पति-पत्नी में भी सांसारिक प्रणय का भाव उदित होता है। परन्तु इस प्रणय में सांसारिक स्वार्थ की दुर्गन्धि रहती है, वास्तविक निस्स्वार्थता का सौरभ नहीं। लाखों दम्पतियों मे कहीं एकाध मे ही सच्चा प्रेम होगा, अधिक मे नही।"

लक्ष्मीबाई बीच ही में बोल उठीं—क्यो, विवाह के बाद एक दूसरे के साथ रहते हैं, एक दूसरे से परिचित होते है, इतने पर भी उनमे प्रेम का सञ्चार न हो, इसका तो मै कोई कारण नही समझती।

गङ्गाबाई फिर कहने लगी—विवाह के बाद पारस्परिक

प्रेम का उत्पन्न होना सम्भव नहीं। इसका एक और भी ज़बरदस्त कारण है। कामोपभोग प्रेम को नष्ट करता है, प्रेम को उत्पन्न नहीं कर सकता। कामुकता और प्रेम में स्वर्ग और नरक का अन्तर है। अधिकांश लोग काम को प्रेम कहते हैं और यहीं पर उन्हें धोखा होता है।

"मैं तो आज ही यह नया सिद्धान्त प्रथम बार तुम्हारे मुँह से सुन रही हूँ।"

"इस विषय में मेरी प्रत्येक बात तुम्हें नई और विचित्र जँचेगी। तुमने इन बातों पर कभी विचार नहीं किया, इसीलिए इन बातों को सुन कर तुम्हारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता।"

लक्ष्मीबाई कुछ देर तक सोच कर बोलीं—यदि तुम्हारा कथन सत्य है, यदि कामोपभोग से प्रेम की वृद्धि नहीं, उसका ह्रास होता है, तो संसार के किसी भी दम्पति में प्रेम हो ही नहीं सकता।

"मुझे भी तो इसमें शङ्का है कि लाख आदमियों में से किसी एक के हृदय मे भी प्रेम का वास होता है या नहीं। लोग तो काम को ही प्रेम कहते हैं।"

"तो क्या काम एक प्रकार का प्रेम नही है?"

"काम कभी प्रेम हो ही नही सकता। वह तो शरीर का एक विकार है। रुग्णावस्था में चटपटी मसालेदार चीजें खाने की इच्छा होती है। रोग शान्त होते ही वह

इच्छा नष्ट हो जाती है। प्यास लगने पर शीतल जल के लिए प्राण व्याकुल हो जाते हैं। प्यास बुझते ही गिलास का बचा हुआ पानी धूल में फेंक दिया जाता है। इसी प्रकार कामासक्त पुरुष अनङ्ग के परिपीड़न से उत्तेजित होकर स्त्रियों के प्रति क्षणिक प्रेम का प्रदर्शन करता है। किन्तु काम की अग्नि के शान्त होते ही उसके मन से प्रेम का ज्वर भी उतर जाता है। महाराज के चरित्र का विश्लेषण करने से यह बात बहुत अच्छी तरह समझ मे आ जाती है।"

"तो तुम क्या यह कहना चाहती हो कि महाराज तुम्हे चाहते ही न थे?"

"विवाह के दो-चार दिन बाद आत्म-प्रवञ्चना के वशीभूत होकर मैं यह समझने लगी थी कि महाराज मुझे चाहते हैं और मैं भी उन्हें अपने हृदय में स्थान देती हूँ। किन्तु इसके बाद शीघ्र ही मैं उनकी ओर से विरक्त होने लगी। एक महीना बीतते न बीतते वह बीमार पड़े और उसके बाद मेरी उनकी देखादेखी भी न हुई।"

"तब तुम राजगृह में आकर केवल एक ही महीना सधवा रहीं?"

"मैं तो एक महीना भी सधवा रह सकी थी, किन्तु तुम्हारे इसी नरक-सदृश राजगृह में कितनी अभागिनी स्त्रियाँ तो केवल एक रात से अधिक सधवा न रह सकी थीं।"

"राजाओं के बहुविवाह को तो मै भी बुरा समझती हूँ। किन्तु मैंने महाराज को तुम्हारे साथ विवाह करने की अनुमति केवल इसलिए दी थी कि उनका वंश चले और उनके पूर्वजों की कीर्ति नष्ट न होने पावे।"

"इसे विवाह नहीं कहते। विवाह तो दो हृदयों का पवित्र सम्मिलन है। देश में प्रचलित बाल-विवाह का उल्लेख कर पिता जी कहा करते थे कि अब तो हमारे देश से विवाह की सच्ची पद्धति ही उठ गई। लोग आठ-आठ, दस-दस वर्ष की लड़कियों का विवाह कर, उन्हें आजीवन दाम्पत्य सुख से वञ्चित कर देते हैं। दाम्पत्य सुख किसे कहते हैं, यह उस समय मैं नही जानती थी। किन्तु अब देखती हूँ कि उनका कहना तिल-मात्र भी असत्य नहीं था।

लक्ष्मीबाई ने आश्चर्य के साथ पूछा—भला आठवें वर्ष मे विवाह हो जाने से लोग दाम्पत्य सुख से वञ्चित क्यों हो जाते हैं? मेरा भी तो लड़कपन में ही विवाह होगया था। स्वामी के घर रह कर कुमार्ग से बचना क्या अपने जीवन को नष्ट करना है?

गङ्गाबाई—मैं तो केवल इतना ही कहना चाहती हूँ कि विवाह का वास्तविक उद्देश्य है दो हृदयों का मिलन—दो शरीरों की व्यभिचार-लीला नहीं। हृदयों के संग्रन्थित होने के पहले शरीर का संयोग केवल विराग उपस्थित कर सकता है, प्रेम का उद्भव नहीं। मेरे बड़े भाई का अथवा मेरा ही

विवाह—इसे विवाह नहीं, श्राद्ध कहना ही अधिक उपयुक्त है—मुझे इस विषय में काफी शिक्षा दे चुका।

"मैं तुम्हारी बात मान लेने में असमर्थ हूँ। मेरी समझ में नहीं आता, शरीर का मिलन घृणा कैसे उत्पन्न कर सकता है! महाराज के प्रति मेरे हृदय में कभी घृणा उत्पन्न नहीं हुई।"

"इसका कारण तो मैं पहले ही बता चुकी हूँ। बाल्यावस्था से ही यह संस्कार तुम्हारे भीतर काम कर रहा था कि पति-सेवा ही स्त्री का एकान्त धर्म है। इसी संस्कार से प्रभावित होकर तुम सदा महाराज की सेवा और मङ्गल कामना करने में तत्पर रहती थीं। तुम लोगों के हृदयों का मिलन तो हुआ ही नहीं और न तुम्हारे दाम्पत्य जीवन को प्रेम ने ही सरस बनाया था। यदि तुममे सचमुच दाम्पत्य प्रेम होता तो महाराज को दूसरा विवाह करने की इच्छा ही क्यो होती? और यदि तुम सचमुच उनसे प्रेम करती तो इस तरह उन्हें हृदय से अलग क्यो कर देतीं? इस तरह अपने सर्वस्व को ठुकरा क्यों देती? किसी अन्य विलासिनी बाला का उनके ऊपर अधिकार स्थापित होते हुए देखकर तुम सुख की नींद न सो सकतीं। पति-सेवा ही नारी-जीवन की एकान्त साधना है—यह शिक्षा हमारे देश की स्त्रियों में इस गहराई तक पैठ गई है कि पति-प्रेम से सर्वथा वञ्चित होते हुए भी कुमार्ग-गामिनी होने का विचार

उनके मन में स्थान नहीं पाता। कर्तव्य के अनुरोध से वे अपनी पवित्रता की रक्षा कर लेती हैं। किन्तु इससे विवाह का वास्तविक उद्देश्य सिद्ध नहीं होता।"

"विवाह का वास्तविक उद्देश्य और है क्या? स्त्रियाँ सदा पति-सेवा में तत्पर रहें, अपवित्र विचारों से उनके मन की पवित्रता नष्ट न हो—इससे बड़ा आदर्श और हो ही क्या सकता है?"

गङ्गाबाई हँसते हुए कहने लगीं—तुम्हारे हृदय में विवाह की यही कल्पना वर्तमान है, यह मैं भली-भाँति जानती हूँ। अज्ञान मनुष्य को अनेक यन्त्रणाओं से मुक्त रखता है। संसार में अज्ञान के आवरण का न फटना ही—ज्ञान-चक्षुओं का न खुलना ही अच्छा है। इससे अपनी त्रुटियों का ज्ञान नहीं होता—जीवन की अपूर्णता पद-पद पर हृदय को व्यथित नहीं करती। अबोध शिशु अपने खिलौनों में ही मस्त रहता है—उसे और किसी वस्तु की चिन्ता नहीं होती। रत्नों का रूप और मोतियों का मूल्य उसके खिलौनों की बराबरी नहीं कर सकते। इसी अन्तःपुर में हमारी जैसी कितनी अभागिनी बहिनें थीं, जो प्रेम से वञ्चित और पति से परित्यक्त होते हुए भी अपने सौभाग्य पर फूली न समाती थीं। राजा ने हम से विवाह किया है, हम रानी हैं, राज-महल में रहती है—यह विचार ही उनके हृदय को एक अनिर्वचनीय आनन्द से परिप्लावित कर देता था। मैं तुम्हारे

मोह और संस्कारों को दूर कर तुम्हारे हृदय की शान्ति नष्ट करना नहीं चाहती। चिर-सञ्चित अन्धकार के तिरोहित होते ही जीवन क्लेशों और यन्त्रणाओं से आच्छन्न हो जाता है। तुमने बाल्यावस्था से ही युद्ध-कला और राजनीति की चिन्ता की है। भविष्य में भी इन्हीं का विचार करने से तुम्हारा अवशिष्ट जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होगा। इस वृद्धावस्था में प्रेम की गाथाएँ सुन कर क्या करोगी?

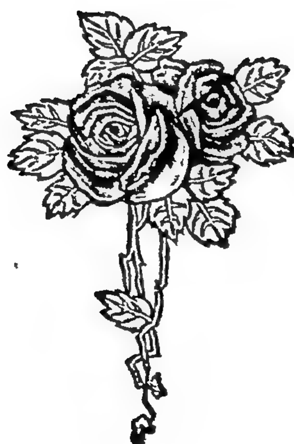
लक्ष्मीबाई की चेतना जाग्रत हो गई थी, अपने अज्ञान की ओर उनकी दृष्टि आकर्षित हो चुकी थी। विद्वान् वक्ता की वाणी सुन कर श्रोता के मन मे जैसी श्रद्धा उत्पन्न होती है, लक्ष्मीबाई के हृदय में भी ठीक वही भाव उठ रहा था। किन्तु उन्होंने इस भाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं होने दिया। वह गङ्गाबाई को प्रेम-भरी दृष्टि से देख कर हँसते-हँसते बोलीं—मैं प्रेम की गाथाएँ सुनने की इच्छा नहीं रखती। तुम्हारी बातें बड़ी प्यारी लगती हैं, किन्तु उनका मर्म समझ में नहीं आता। इसीलिए उन्हें तुम्हारे मुँह से बार-बार सुनने की इच्छा होती है।

गङ्गाबाई के और कुछ कहने के पहले ही एक दासी ने आकर सम्बाद दिया—दीवान लक्ष्मणराव क़िले से लौट आए हैं, महारानी से साक्षात्कार करना चाहते हैं।

गङ्गाबाई स्नान करने चली गईं और लक्ष्मीबाई ने दीवान-खाने मे आकर लक्ष्मणराव से भेंट की। दीवान लक्ष्मणराव

बोले—कमिश्नर स्किन साहब ने महारानी को सलाम कहा है और राजप्रासाद के रक्षार्थ नई सेना नियुक्त करने की आज्ञा दी है।

लक्ष्मीबाई दीवान लक्ष्मणराव को दो सौ नए सैनिक नियुक्त करने का आदेश कर भीतर चली गईं।



सातवाँ परिच्छेद

दुर्ग



न् १८५७ ई० के मई मास के बाद प्रायः छै मास तक भारत के उत्तर-पश्चिम और मध्य भाग में रहने वाले अङ्गरेज़ सदा प्राणों के भय से सशङ्कित रहा करते थे। रात में उन्हें कभी नींद न आती थी। मेमें रात में भी दिन का पोशाक पहने रहती थीं। उन्हें भय था कि यदि एकाएक भागना पड़े तो वस्त्र-परिवर्त्तन का भी समय न मिलेगा।

उस समय झाँसी में स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाएँ सब मिला कर अङ्गरेज़ों की संख्या साठ-सत्तर से अधिक न थी। इनमें कमिश्नर मेजर स्किन, डिप्टी कमिश्नर कप्तान

गार्डन और सैनिक विभाग के प्रधान कर्मचारी कप्तान डनलोप उल्लेख योग्य व्यक्ति थे। कमिश्नर मेजर स्किन ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का अविश्वास नहीं किया था। वह सदा उनकी उदारता, बुद्धिमत्ता और सदाचार की प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि यदि झाँसी के सिपाहियों ने विद्रोह किया तो अङ्गरेज़ स्त्रियों और बच्चों को रानी के संरक्षण मे राजप्रासाद में रख दूँगा। जब रानी ने राजप्रासाद की रक्षा के लिए नए सैनिक नियुक्त करने का प्रस्ताव किया, तो उन्होंने सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। वस्तुतः झाँसी का एक भी अङ्गरेज़ रानी को शङ्कापूर्ण दृष्टि से नहीं देखता था।

झाँसी मे दो क़िले थे। नगर के बीच राजप्रासाद के निकट वाले क़िले का नाम नगर-दुर्ग था। नगर के बाहर स्टार-दुर्ग नाम का एक दूसरा क़िला था। दोनों किले अङ्गरेज़ी सेना के निवासस्थल थे। इस समय सेना मे आठ सौ इक्यासी देशी सिपाही और अङ्गरेज़ केवल ग्यारह थे।

देखते-देखते मई का महीना समाप्त हो गया। झाँसी की सेना अब तक शान्त थी। उसमें विद्रोह का कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होता था। ४ थी जून को भोजन के उपरान्त तीसरे पहर नगर-दुर्ग के एक कमरे मे बैठ कर मेजर स्किन और कप्तान गार्डन विद्रोह के सम्बन्ध मे वार्तालाप करने लगे।

स्किन साहब बड़े शान्त-भाव से बोले—गार्डन, मेरा अनुमान है, झाँसी में हम लोगों पर कोई विपत्ति आने की आशङ्का नहीं। हम लोगों की स्थिति यहाँ पूर्ण निरापद है।

कप्तान गार्डन ने बड़ी शीघ्रता से उत्तर दिया—नहीं स्किन, ख़ज़ाने का रुपया शीघ्र ही नौगाँव भेजना होगा। यहाँ अधिक रुपया रखने की कोई आवश्यकता नहीं।

"क्यों? रुपए क्यों भेज दूँ? तुम्हें क्या इस बात का भय है कि विद्रोही सिपाही ख़ज़ाना लूट लेंगे? यदि धर्मनाश की आशङ्का ही विद्रोह का मूल कारण है, तो तुम विश्वास रक्खो, झाँसी में विद्रोह नहीं होगा। हमारे सिपाही अच्छी तरह समझते हैं कि उनका धर्मनाश करना हमारा उद्देश्य कदापि नहीं है।"

"गुप्तचरों से हमे पता लगा है, केवल धर्मनाश की आशङ्का ही इस विद्रोह का कारण नहीं है। इस आशङ्का की अफवाह उड़ाकर षड्यन्त्रकारी अनजान सिपाहियों को बहका रहे है। उनका असली इरादा खज़ाना लूटने का है।"

"तुम्हारे गुप्तचर ने क्या कहा है?"

"उसने तो बहुत सी बातें बताई हैं, किन्तु मैं उसकी सब बातों पर विश्वास नहीं करता। वह कहता है कि तहसीलदार अहमदहुसेन भी षड्यन्त्र के नेताओं मे से एक है। मैं तो रानी लक्ष्मीबाई को षड्यन्त्रकारी समझ सकता हूँ, किन्तु अहमद

हुसेन जैसे विश्वासी और राजभक्त नौकर का अविश्वास नहीं कर सकता। झाँसी के अङ्गरेजी राज्य में मिलाए जाने के समय से ही अहमद हुसेन और उसका सम्बन्धी सैयद अहमद हमारी सरकार का बराबर समर्थन करते आ रहे हैं।"

"गार्डन, तुम्हे अवश्य धोखा हुआ है। तुम अहमदहुसेन पर विश्वास करते हो? वह तो पहले झाँसी के राजा का नौकर था। उनके साथ विश्वासघात करने के पुरस्कार-स्वरूप ही हम लोगों ने उसे तहसीलदारी का काम दिया है। भला ऐसे कृतघ्न का कहीं विश्वास किया जाता है?"

"अहमदहुसेन कृतघ्न है; मैं इसे नहीं मान सकता। उसके प्रति तुम्हारे मन में जो दुर्भाव उत्पन्न हो गया है, वह सर्वथा निराधार है। अहमदहुसेन और उसके साले के समान राजभक्त प्रजा भारतवर्ष में बहुत थोड़ी है। सैयद अहमद तो हम लोगों का वेतन-भोगी नौकर या अनुगृहीत भी नहीं है। किन्तु वह भी मुसलमानों में राजभक्ति और अङ्गरेजी सरकार के प्रति सद्‌भाव उत्पन्न करने की बराबर चेष्टा किया करता है।"

"गार्डन, तुम समझते नहीं हो कि सैयद अहमद की सारी राजभक्ति और सारा सद्‌भाव कपट और ढोंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह पक्का बना हुआ आदमी है। तुमने अभी तक उसे पहचाना नहीं। किन्तु इस विषय

में अधिक तर्क करना व्यर्थ है। तुम्हारे गुप्तचर ने और भी कुछ कहा है?"

"वह कहता है कि हवलदार गुरुबख़्श और रिसालदार कालेख़ाँ ने पहले सिपाहियों को धर्मनाश का भय दिखा कर विद्रोही बनाने की शक्ति भर चेष्टा की थी। किन्तु उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ गया। सिपाहियों ने उनकी बात हँसी-मज़ाक़ में उड़ा दी। अब उन लोगों ने एक नए उपाय का अवलम्बन किया है। वे सिपाहियो को यह प्रलोभन देते हैं कि हम लोग ख़ज़ाना लूटेंगे और इस लूट में इतना रुपया मिलेगा कि जीवन भर फिर नौकरी करने की आवश्यकता नही रह जायगी। मैं इसी लिए कह रहा हूँ कि ख़ज़ाने से एक लाख रुपया निकाल कर शीघ्र नौगाँव भेज दिया जाय।"

मेजर स्किन थोड़ी देर तक सोच कर बोले—इस समय रुपया भेजने का कोई उपाय नहीं हो सकता। आख़िर इन्हीं सिपाहियो के संरक्षण मे तो रुपया भेजना होगा और ये ही उसे लेकर चम्पत हो सकते है। दूसरी बात यह है कि इस समय रुपया चालान करने से सिपाहियो के मन में अनेक शङ्काएँ उत्पन्न हो सकती हैं। यदि वे खजाना लूट भी लें तो क्या हर्ज है? हम लोगो के प्राण तो वच जायँगे। वे तो ख़ज़ाना लूट कर ही चलते वनेंगे।"

"नहीं, ऐसी वात नहीं है। हम लोगो के प्राणों का भी

भय है। वे केवल खज़ाना लूट कर ही सन्तुष्ट न होंगे। इस विद्रोह का रूप कितना व्यापक है, यह अभी तक तुमने नहीं समझा। यदि गुप्तचर की बातों पर विश्वास किया जाय तो सिपाहियों में असन्तोष फैलने का और भी कारण है। सेना-विभाग में उच्च पद पाने की आशा, वे हरदम के लिए छोड़ बैठे हैं। उनकी धारणा है कि हमारी सरकार उनकी उन्नति में साधक नही, बाधक का काम करती है। उनके हृदय में जो विद्वेष का भाव बद्धमूल हो गया है, उसके कारण वह खजाना लूट चुकने पर हमारे शरीर पर भी अवश्य आक्रमण करेंगे। जिस लक्ष्मीबाई पर तुम इतना विश्वास रखते हो, वह भी भीतर ही भीतर अङ्गरेजों से जलती है। अङ्गरेज़ों का नाम सुनते ही वह कह उठती है कि—"अङ्गरेज राक्षस हैं, मेरे राज्य मे गोहत्या करते हैं, इसका परिशोध उनसे अवश्य लूँगी।"

"गार्डन, तुम्हारे गुप्तचर की एक बात का भी मै विश्वास नहीं करता। हम लोगो की शासन-प्रणाली दोषो से भरी हुई है। क्या तुम समझते हो कि इन देशी सैनिको के साथ न्याय होता है और वे यथोचित पुरस्कार पाते है? यदि रानी लक्ष्मीबाई अङ्गरेजो से द्वेष रक्खें तो क्या अनुचित है? मैं तो समझता हूँ कि लॉर्ड डलहौजी ने उनके राज्य को अङ्गरेज़ी राज्य में मिलाकर सरासर अन्याय किया है।"

स्किन की बात सुन कर गार्डन ने मुस्कराते हुए उत्तर

में अधिक तर्क करना व्यर्थ है। तुम्हारे गुप्तचर ने और भी कुछ कहा है?"

"वह कहता है कि हवलदार गुरुबख़्श और रिसालदार कालेखाँ ने पहले सिपाहियों को धर्मनाश का भय दिखा कर विद्रोही बनाने की शक्ति भर चेष्टा की थी। किन्तु उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ गया। सिपाहियों ने उनकी बात हँसी-मज़ाक़ में उड़ा दी। अब उन लोगों ने एक नए उपाय का अवलम्बन किया है। वे सिपाहियों को यह प्रलोभन देते हैं कि हम लोग ख़ज़ाना लूटेंगे और इस लूट में इतना रुपया मिलेगा कि जीवन भर फिर नौकरी करने की आवश्यकता नही रह जायगी। मै इसी लिए कह रहा हूँ कि ख़ज़ाने से एक लाख रुपया निकाल कर शीघ्र नौगाँव भेज दिया जाय।"

मेजर स्किन थोड़ी देर तक सोच कर बोले—इस समय रुपया भेजने का कोई उपाय नहीं हो सकता। आख़िर इन्हीं सिपाहियों के संरक्षण मे तो रुपया भेजना होगा और ये ही उसे लेकर चम्पत हो सकते है। दूसरी बात यह है कि इस समय रुपया चालान करने से सिपाहियो के मन में अनेक शङ्काएँ उत्पन्न हो सकती हैं। यदि वे खज़ाना लूट भी लें तो क्या हर्ज है? हम लोगों के प्राण तो बच जायँगे। वे तो ख़ज़ाना लूट कर ही चलते बनेंगे।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। हम लोगों के प्राणों का भी

और भ्रमात्मक हैं। इस देश की प्रजा के लिए इनकी प्राचीन शासन-प्रणाली ही अच्छी थी। हमारे प्रबन्ध और न्याय में इतना अधिक व्यय होता है कि इस देश की प्रजा बर्बाद हुई जा रही है।"

"हमारा शासन और न्याय ख़र्चीला होने पर भी, इसी में इस देश का कल्याण है। देशी लोगों के हाथ में शासन-भार रहने से घोर अराजकता फैल जाती है।"

गार्डन की अन्तिम बात सुनकर मेजर स्किन गरजते हुए बोले—क्या कहा? अराजकता फैल जाती? क्या तुम समझते हो रानी लक्ष्मीबाई राज्य-शासन में असमर्थ थीं? ऐसी चतुर रानी मैंने यूरोप में बहुत थोड़ी ही देखी हैं। लक्ष्मीबाई मुसलमान बादशाहों की बेगमों की तरह परदानशीन औरत नहीं हैं। राजा गङ्गाधरराव की मृत्यु के बाद मेजर मालकम ने स्पष्ट रूप से गवर्नमेण्ट को लिखा था—"रानी लक्ष्मीबाई राज्य-शासन के सर्वथा उपयुक्त है। प्रजा उनपर प्रगाढ़ भक्ति एवं हार्दिक श्रद्धा रखती है।" परन्तु तत्कालीन सरकारी नीति ने सत्य की उपेक्षा की। इस समय भी "रानी हम लोगों से बातचीत करने में अपनी पद-मर्यादा का ध्यान रखती है। उसकी बातों मे वह तेजस्विता टपकती है, जो किसी भी रानी के लिए भूषण हो सकती है। मेरा तो अनुमान है कि वह झाँसी की अपेक्षा कहीं बड़े राज्य का शासन सुचारु रूप से करने में समर्थ है।"

दिया—यदि डलहौजी ने झाँसी को अङ्गरेजी राज्य में न मिला लिया होता तो हमें और तुम्हें सैनिक विभाग में केवल चार सौ रुपए मासिक पर ही सन्तोष करना पड़ता। क्या इस जन्म में कभी हम लोग नागरिक शासन में प्रवेश कर सकते ?

"भाई, यह बात तो तुमने ठीक कही । सर हेनरी लॉरेन्स भी उस दिन यही बात स्पष्ट शब्दों में कह रहे थे। मेजर बेल का भी यही अनुभव है। देशी राजाओं को पदच्युत किए बिना हम लोगों की महत्वाकांक्षाएँ कभी पूरी न होतीं।"

"सर हेनरी लॉरेन्स ने तो पञ्जाब के अङ्गरेजी राज्य में मिलाए जाने का विरोध किया था ?"

"हाँ, सबसे प्रबल विरोध उन्हीं का था और इसी कारण उन्हें लॉर्ड डलहौजी का कोपभाजन बनकर पञ्जाब छोड़ना भी पड़ा था। लॉर्ड डलहौजी ने उन्हें राजपूताने का पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त कर दिया।"

"परन्तु मैं सर हेनरी लॉरेन्स या मेजर बेल की बातों से सहमत नहीं हो सकता। हम लोगों के हाथ में आ जाने से ही झाँसी, पञ्जाब आदि प्रान्तों का ऐसा अच्छा शासन हो रहा है। क्या पहले भी कभी इनका ऐसा सुन्दर शासन हुआ था ?"

"गार्डन, मुझे क्षमा करो। तुम्हारी बातें सर्वथा निस्सार

विद्रोही सिपाहियों की संख्या बहुत थोड़ी है। अधिकांश सिपाही अङ्गरेज़ों के पक्ष में हैं और दुर्ग के बाहर परेड कर रहे हैं।



"हाँ, रानी के प्रति अन्याय और दुराग्रह से काम लिया गया है, इसमें कोई शङ्का नहीं। कम से कम राजा गङ्गाधर राव के ऋण का परिशोध तो अवश्य राजकोष से होना चाहिए था।"

"केवल ऋण की बात नहीं है। रानियों के अङ्ग के गहने × × ×।"

स्किन साहब की बात पूरी भी न होने पाई थी कि अकस्मात् तोप की गड़गड़ाहट ने उनका वार्तालाप बन्द कर दिया। स्किन और कप्तान गार्डन दौड़ कर बाहर आए। क़िले में रहने वाली महिलाएँ सशङ्कित हो उठीं। तोप की आवाज़ कहाँ से आई, इसका पता लगाने के लिए चारों ओर चर दौड़ पड़े। दुर्गस्थित सिपाहियों को फौरन हथियार-बन्द हो जाने का आदेश दिया गया। आध घण्टे बाद नगर के बाहर स्टार-दुर्ग से एक सिपाही ने आकर समाचार दिया—बारहवीं गोलन्दाज़ रेजिमेण्ट के हवलदार गुरबख्श और बहुत से हिन्दू तथा मुसलमान-सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया है। वे स्टार-दुर्ग के अङ्गरेज़ों की हत्या करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मेजर स्किन उसी समय नगर-दुर्ग से कुछ सिपाहियों को लेकर स्टार-दुर्ग की ओर प्रस्थान करना चाहते थे, किन्तु गार्डन ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। थोड़ी देर बाद स्टार-दुर्ग से कप्तान डनलोप का पत्र आने पर ज्ञात हुआ कि

धर्म है। बाहरी घटनाओं का आन्दोलन जन-समूह की गति को अपने अनुकूल बना लेता है। आज जो घटना देखने में तुच्छ जान पड़ती है, वही कल अपना विराट् रूप धारण कर लेती है। विश्व-व्यापी फ्रेञ्च-विप्लव के दस दिन पहले भी फ्रान्स की जनता को विप्लव का पता नहीं था। यद्यपि इस विप्लव का बीज बहुत पहले से ही धीरे-धीरे अङ्कुरित हो रहा था, तथापि इसकी वृद्धि एक अति सामान्य घटना के कारण ही हुई थी। एक साधारण-सा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और जनता पागल की भाँति उसमें अपनी आहुति प्रदान करने लगी। समाज-शास्त्र के पण्डितों और इतिहास-वेत्ताओं ने लिखा है कि समाज का तत्कालीन पाप और अत्याचार ही इस विप्लव का मूल कारण था। वास्तव में सब देशों और कालों में पाप और अत्याचार की छाती में ही क्रान्ति की ज्वाला प्रकट होती है और उन्हें जला कर समाज का मङ्गल और विश्व का कल्याण करती है।

वर्त्तमान सिपाही-विद्रोह का बीज भी अङ्गरेजी राज्य के प्रारम्भ से ही अङ्कुरित हो रहा था, किन्तु अब तक उस पर किसी की दृष्टि न पड़ी थी। जब विप्लव की लहर उठी तो सारे देश का हृदय एक साथ ही स्पन्दित हो उठा। जो मुर्दों की तरह अपना जीवन व्यतीत करते थे, उनमें भी वीरत्व का सञ्चार हो गया। रणचण्डिका की लपलपाती हुई जीभ एक के बाद दूसरा बलिदान लेकर तृप्त होने लगी।

आठवाँ परिच्छेद

युद्ध-घोषणा



मनुष्य घटनाओं का दास है। वह सदा घटनाओं के स्रोत में प्रवाहित होता है। स्वेच्छाचारिणी घटनाएँ अपना अनियन्त्रित स्वरूप प्रकाशित कर मनुष्य के जीवन को एक बार ही पलट देती हैं। चौथी जून की घटना ने झाँसी के नागरिकों में एक अभूतपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। जो लोग अपने दैनिक कार्यों के अतिरिक्त और कुछ जानते ही न थे, स्वप्न में भी जिन्होने लड़ाई और झगड़े का विचार न किया था, वे भी युद्ध-भूमि में कूद पड़ने के लिए लालायित हो उठे। जिन्हें उद्योग और परिश्रम से घृणा थी, ऐसे कापुरुषों का हृदय भी जोश से उछलने लगा। मुर्दों में भी जान आ गई। मानव-स्वभाव का अध्ययन करने वाले प्रकाण्ड विद्वानों ने कहा है कि जन-साधारण न्याय-अन्याय का विचार नहीं करता। काल के प्रवाह में बह जाना ही उसका

जाति के अङ्गरेज़ आते हैं और हमसे अयोग्य होते हुए भी हमारे अफसर बन जाते हैं। हमें उनका हुक्म मानना पड़ता है। उनकी हुकूमत में हमारी इज़्ज़त-आबरू तो बहुत पहले ही बरबाद हो गई, अब हमारे धर्म की बारी आई है। यदि इस समय हम चुपचाप रह गए तो ये फिरङ्गी हमारे बाप-दादों का धर्म नष्ट करके छोड़ेंगे। फिर हम किसी काम के न रह जायँगे। अङ्गरेज़ रोज़-रोज़ ऐसे क़ानून बना रहे हैं, जिनसे न तो हिन्दुओं का धर्म बचेगा, न मुसलमानों का मज़हब। विलायत की रानी ने यह हुक्म निकाला है कि सब सिपाहियो को ईसाई बना दो। अब हिन्दुओ को गाय और मुसलमानो को सुअर का मांस खाना पड़ेगा। धर्म नष्ट होने पर हम अपनी जाति से बहिष्कृत—अपनी बिरादरी से अलग—कर दिए जायँगे। हम लौट कर अपने घर जाने लायक़ भी न रह जायँगे। क्या हमारे लिए हमारे भाई-बन्द अपना धर्म छोड़ देंगे? अपने बाप-दादों के नाम पर कलङ्क लगावेंगे? कभी नहीं।

"जाति और धर्म नष्ट कर जीवित रहने से तो मर जाना अच्छा है। क्या हम लोगों के भाग्य में यही बदा था? क्या हम अपने बाप-दादों का नाम डुबाने के लिए ही पैदा हुए थे? अगर आज हम इस मौक़े को हाथ से जाने देते हैं तो हमारे बाप-दादों का धर्म अवश्य नष्ट होगा और हमारी ही बदौलत उन्हें नरक भोगना पड़ेगा। अङ्गरेज़ दिखाने के लिए तो यह

जिस समय हवलदार गुरुबख़्श और रिसालदार कालेख़ाँ ने स्टार-दुर्ग के अङ्गरेज़ों पर आक्रमण किया, उस समय झाँसी का समस्त जनपद उत्तेजित होकर कह रहा था—"मारो साले फिरङ्गियों को, मारो साले फिरङ्गियों को!" अधिकांश सिपाही अब तक अङ्गरेज़ों के अधीन थे, किन्तु कल की घटना ने रणभेरी का काम किया। प्रत्येक सिपाही का हृदय विद्रोह की भावना से उन्मत्त हो गया।

अब छिपे-छिपे परामर्श करने की आवश्यकता न रही। पाँचवीं जून को विद्रोह के नेतागण क़िले के बाहर और भीतर स्थान-स्थान पर खड़े होकर सिपाहियों को उत्तेजित करने के अभिप्राय से भाषण देने लगे। वे प्रकट रूप से विद्रोह कर चुके थे। अङ्गरेज़ी सेनापति में अब उन्हें निःशस्त्र कर पदच्युत करने की शक्ति बाक़ी न थी। उधर डनलोप साहब उन सिपाहियों का परेड करा रहे थे, जिन्होंने अब तक विद्रोह नहीं किया था और इधर गुरुबख़्श, लछमणसिंह, शिवदयाल पाँडे, कालेख़ाँ, फ़ैजुल्लाह आदि का भाषण हो रहा था :—

"हमारे सिपाही भाइयो! कम्पनी का अत्याचार असह्य हो गया है। पहले हम लोगों के मानापमान, धर्माधर्म का ध्यान रक्खा जाता था। हम लोग भी अङ्गरेज़ अफ़सरों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। किन्तु आज वह दिन नहीं रहे। समय बदल गया है। अब इङ्गलैण्ड से छोटी-छोटी

इनाम का नाम सुनते ही सिपाहियों ने दुगुनी शक्ति से "श्रीरामचन्द्र की जय" "बादशाह की जय" कह कर आकाश का वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया। खज़ाना लूटने का लोभ कोई भी संवरण न कर सका।

उधर कालेखाँ स्टार-दुर्ग के भीतर एक स्थान पर खड़े होकर सिपाहियों को समझा रहे थे—"क्या क़ुरान की बात कभी झूठी हो सकती है ? क़ुरान में लिखा है, काफ़िरों के हाथ में कभी सल्तनत रह नहीं सकती। रसूल, नबी और पैग़म्बर का कलाम है कि सारी दुनिया मुसलमानों के क़ब्ज़े में रहेगी। तुर्किस्तान से मौलवी और मुल्ला आए है। उन्होंने बादशाह को सलाह दी है कि आप अपना मुल्क दख़ल कर लीजिए। मौलवी कहते हैं कि दुनिया में काफिरों को सर रखने को भी जगह न मिलेगी। खुद नबी हाथ मे तलवार लेकर काफिरों का सिर काटेंगे। ऐ मुसलमानो ! अगर तुम सच्चे मुसलमान हो तो हमारी बात पर ईमान लाओ और हमारी सलाह के मुताबिक़ काम करो।

"फिरङ्गी हराम है, फिरङ्गी काफिर हैं, फिरङ्गी हमारी इज्ज़त मिट्टी में मिला देंगे। बादशाह का दिल भी बादशाही है। उन्होंने दिल्ली का सारा खज़ाना फ़ौज को दे दिया है।"

इतना सुनते ही सारे मुसलमान-सिपाही "बिस्मिल्लाह ! या अली ! मारो साले फिरङ्गियों को।" कह कर चिल्ला उठे।

पाँचवीं जून का सारा दिन और सारी रात भाषण और

कहते हैं कि उन्हें हमारे धर्म से कोई मतलब नहीं, लेकिन छिपे-छिपे हम लोगों को ईसाई बनाने के लिए इङ्गलैण्ड से पादरी बुला रहे हैं।

"तम लोगों की जो इच्छा हो, सो करो, लेकिन हम लोग जान चली जाने पर भी जाति और धर्म का परित्याग न करेंगे। जय रामचन्द्र की, गुरु महाराज की जय, गङ्गामैया की जय !!"

वक्ताओं के जयजयकार करने पर हिन्दुस्तानी सिपाही भी ज़ोर से चिल्ला उठते—"जय सीताराम,गङ्गामैया की जय!"

फिर भाषण आरम्भ होता :—

"भाई, एक बात और सुन लो। अगर इस वार चूके तो फिर मौक़ा हाथ न लगेगा। तुम लोगों ने सुना होगा, दिल्ली को बादशाह ने दख़ल कर लिया। वहाँ अब अङ्गरेज़ों का नामोनिशान भी नहीं है। लड़ाई के वाद बादशाह ने दिल्ली का सारा ख़ज़ाना फ़ौज को इनाम में बाँट दिया। ख़ज़ाने में लगभग एक करोड़ रुपया था, बादशाह ने उसमें से एक पैसा भी न लिया, सब फ़ौज में बाँट दिया। वादशाह का दिल भी वादशाह है। क्या फिरङ्गियों ने भी कभी तुम्हें एक पैसा इनाम में दिया है? ये तो ऐसे कञ्जूस हैं कि कौड़ी-कौड़ी का हिसाब रखते हैं। इनसे इनाम की उम्मीद रखना वेवक़ूफ़ों का काम है। भाइयो, जो कुछ करना हो, जल्दी कर लेना चाहिए। देरी करने से कोई लाभ न होगा।"



आकस्मिक हत्याकाण्ड



र-दुर्ग के अङ्गरेज़ों से ख़ाली होते ही विद्रोहियो में एक प्रकार की सनसनी फैल गई। सब विद्रोही सिपाही मिल कर अङ्गरेज़ों के प्राण लेने पर उतारू हो गए। नगर-दुर्ग के कुछ पहरेदार और अङ्गरेज़ों के नौकर तथा खान-सामों को छोड़, उनके पास उनकी सहायता के लिए और कोई न बचा।

सिपाहियों की गति-विधि देख कर ७ वीं जून को झाँसी के अङ्गरेज़ों ने प्राणों की आशा छोड़ दी और सब मिल कर विचार करने लगे कि आगे क्या करना चाहिए। अहा ! धन्य हैं अङ्गरेज़ पुरुष ! और धन्य हैं अङ्गरेज़ों की महिलाएँ ! ऐसा जान पड़ता है, धैर्य और वीरता की रक्षा के लिए ही उनका जन्म हुआ है। कर्तव्य-पालन के लिए हँसते-

परामर्श में बीती। उधर कप्तान डनलोप और लेफ्टिनेण्ट कैम्बेल भी उन सिपाहियों को समझा रहे थे, जिनके भीतर राजभक्ति की थोड़ी भी गन्ध बाक़ी थी। वे कहते थे— "हमारी सरकार यह कभी नहीं चाहती कि इस देश के लोग ईसाई बनें, बदमाश लोग तुम्हें झूठी बातें सुना कर बहका रहे हैं। तुम्हें ज़रा भी डरने की ज़रूरत नहीं।"

सिपाही गँवार होने पर यह अच्छी तरह समझते थे कि गवर्नमेण्ट उनके धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगी, किन्तु ख़ज़ाना लूटने का लोभ दमन करने में वे सर्वथा असमर्थ थे। झाँसी का ख़ज़ाना भी विद्रोह का एक कारण—और शायद सबसे प्रबल कारण—बन गया।

६ ठी जून को कप्तान डनलोप मैदान में थोड़े से सिपाहियों का परेड करा रहे थे। वह परेड छोड़ कर एनसाइन टेलर को साथ ले, डाकख़ाने में पत्र डालने गए। लौट कर देखा तो सिपाहियों का रुख़ बदल गया था। बचे-खुचे सिपाहियों ने भी विद्रोह कर दिया। उनके परेड के मैदान में पहुँचते ही, उन पर सिपाहियों ने गोली छोड़ दी। कप्तान डनलोप और एनसाइन टेलर—दोनों वहीं पर सदा के लिए पृथ्वी-माता की गोद में सो गए। स्टार-दुर्ग के अन्यान्य अङ्गरेज़ उनकी हत्या का समाचार पाते ही भाग कर नगर-दुर्ग में जा छिपे।

देखता, रानी के पास दूत भेजने से क्या लाभ होगा। यदि उन्होंने सचमुच विद्रोहियों का पक्ष लिया है, तो हमारे अनुरोध से वह हमारी रक्षा के लिए तैयार नहीं हो जायँगी और यदि उन्होने विद्रोहियो का साथ नहीं दिया है तो उनके समझाने-बुझाने से विद्रोही सिपाही मानने वाले नहीं हैं। वे तो हम लोगों के रक्त के प्यासे हो रहे हैं। मैं साफ देखता हूँ, इस आसन्न सङ्कट से हम लोगों की रक्षा का कोई उपाय नहीं। हम भारतवासियों के स्वभाव से परिचित हैं। जब ये लोग डनलोप की हत्या कर चुके हैं तो एक अङ्गरेज को भी जीता न छोड़ेंगे। उनके मन में यह भाव है कि डनलोप की हत्या का बदला अवश्य लिया जायगा। उस समय दोषी और निर्दोष का विचार न होगा, सबको समान रूप से दण्डित होना पड़ेगा। इस समय वे जीवन की आशा छोड़ कर हम लोगो पर आक्रमण करेंगे।

स्किन की बात समाप्त होने पर लेफ्टिनेण्ट कैम्बेल ने उत्तर दिया—कल प्रातःकाल डनलोप की हत्या के समय मैं स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित था। उस समय केवल चार सौ सैनिक हम लोगों की अधीनता मे परेड कर रहे थे। ऐसी अवस्था में डनलोप की हत्या के लिए सबको दोषी ठहराना कहाँ का न्याय है?

मेजर स्किन पहले से कुछ अधिक उत्तेजित होकर बोले—

हँसते मृत्यु का आलिङ्गन करना ही उनका जातीय धर्म है। ऐसी निराशा-जनक परिस्थिति, ऐसे घोर सङ्कट के समय भी क्या स्त्री, क्या पुरुष, सबने एक स्वर से चिल्ला कर कहा— We will fight to the last—हम लोग अन्त तक लड़ेंगे।

मेजर स्किन, कप्तान गार्डन, डॉक्टर मेगन आदि कई अङ्गरेज़ एकत्र बैठ कर आत्मरक्षा का उपाय सोचने लगे। गार्डन ने प्रस्ताव किया—विद्रोह का दमन करने के लिए एक बार रानी से अनुरोध किया जाय। उनका उत्तर सुनने से हम लोगों को पता लग जायगा, उन्होंने विद्रोहियों का साथ दिया है या नहीं ?

लेफ्टिनेण्ट पाउडस इसका विरोध करते हुए बोले—रानी ने अवश्य विद्रोहियों का साथ दिया है। हमीं लोगो के लिए झाँसी में गोहत्या होती है। इससे रानी हम लोगों का नाम सुनते ही घृणापूर्वक कह उठती है—"अङ्गरेज सुअर हैं।" इस बार वह हम लोगों के सर्वनाश की चेष्टा किए बिना न रहेगी।

रानी लक्ष्मीबाई के पास दूत भेजा जाय या नहीं, इस विषय में बहुत देर तक वाद-विवाद होता रहा। कई अङ्गरेज़ रानी को विद्रोही समझते थे, किन्तु स्किन तथा अन्य कई विज्ञ अङ्गरेजों का विश्वास उनके ऊपर पूर्ववत् अटल था। जब गार्डन ने रानी के पास दूत भेजने का बार-बार अनुरोध किया, तो स्किन उन्हें समझाने लगे— मैं नहीं

उनका मुखमण्डल अङ्गार के समान लाल हो गया। वह फिर बोले—"प्रातःकाल जिस समय मैंने सुना कि सिपाहियों ने डनलोप की हत्या कर डाली है, उसी समय मेरे मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि अब हममें से कोई भी जीवित नहीं रह सकेगा। पुरुषों के जीवन का अन्त तो होगा ही, दिल्ली में सिपाहियों ने जो निष्ठुरता दिखाई है, उससे यह भी जान पड़ता है कि स्त्रियों और बच्चों तक की हत्या की जायगी। जिस समय आठ-नौ सौ सिपाही एक साथ हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे, उस समय क्या हम दस-बारह आदमी किसी प्रकार अपनी रक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे?

"इन्हीं विचारों से व्यथित होकर एक बार मेरी इच्छा हुई कि पहले अपनी प्यारी एमिली की हत्या कर फिर स्वयं आत्महत्या कर लूँगा। यदि विद्रोही मेरी आँखों के सामने ही एमिली का अपमान करने लगें, तो मेरा क्षुब्ध हृदय कैसे यह भयानक अत्याचार सहन कर सकेगा। मृत्यु की गोद में चिरविश्राम लेने के पहले मैं बाइबल खोल कर उसका पाठ करने लगा। मेरी आँखों के सामने प्रभु यीसू के बलिदान का दृश्य नाच उठा और मेरी सारी निराशा दूर होगई, मेरा विचार सहसा बदल गया। मैंने देखा, आत्महत्या कर व्यर्थ ही मै अपने हाथों को कलङ्कित करूँगा। इससे लोक में निन्दा और परलोक में दण्ड पाने के अतिरिक्त और मुझे कुछ लाभ न होगा। मैंने उसी समय यह प्रतिज्ञा कर ली कि

अन्तकाल तक युद्ध करके ही प्राणविसर्जन करूँगा। मैंने अपना मार्ग निश्चित कर लिया है और तुम लोगों से मेरा अनुरोध है कि तुम लोग भी इसी मार्ग का अवलम्बन करो।"

इतना कह कर स्किन साहब ने मौन धारण किया। वह अपनी प्यारी सहधर्मिणी एमिली की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे। उनकी आँखों से अश्रु की धारा बह रही थी। अन्यान्य अङ्गरेज़ और महिलाएँ भी रो रही थीं। इस करुणाजनक शान्ति को भङ्ग कर स्किन साहब पुनः कहने लगे—"हृदय से शोक और दुख दूर करो। प्रभु ईसा मसीह के सच्चे अनुयायियों की भाँति वीरतापूर्वक मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए कटिबद्ध हो जाओ। रानी के पास आदमी भेजने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं अन्तिम घड़ी तक युद्ध करूँगा। सच्चे ईसाई, सच्चे अङ्गरेज़ पुरुष की भाँति निर्भीक चित्त से प्राण विसर्जन करने में ही हमारा गौरव है।"

यह जोशीला भाषण सुन कर एक महिला बोल उठी—Shall Lord forsake us? अर्थात्—क्या ईश्वर हम लोगों की रक्षा नहीं करेगा?

"No, no, dear, Lord shall never forsake his own?" अर्थात्—नहीं, नहीं, प्रिये, ईश्वर अपने भक्तों का त्याग कभी नहीं करता।

यह उत्तर देकर स्किन साहब फिर बोले—"हमारे प्रभु आत्म-बलिदान के द्वारा ही संसार का कल्याण साधित कर सके थे—मानव-जाति का उद्धार करने में समर्थ हुए थे। हम भी आज उसी पुनीत पथ के पथिक बनेंगे। उस सर्व-शक्तिमान् की इच्छा के विरुद्ध वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। यदि आज हमारी मृत्यु होने वाली है तो इसमें उस जगन्नियन्ता का हाथ अवश्य है। हम लोगों की मृत्यु निष्फल कदापि नहीं हो सकती। हमारे रक्त से अङ्गरेजी राज्य का पौधा सिञ्चित होकर और भी हरा-भरा होगा। इङ्गलैण्ड इन हत्याकारियों को समुचित दण्ड देने का विधान करेगा।"

वह पलभर विश्राम लेकर पुनः कहने लगे—"हमारी वर्तमान दुर्दशा हमारे जातीय पाप का प्रतिफल है। मैं इस विपत्ति को ईश्वर-प्रदत्त न्यायोचित दण्ड (Retributive Justice) समझता हूँ। इसलिए हमें यह कष्ट अम्लान मुख से सहन करना चाहिए। ईश्वर ने हमें अपने किसी महान उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही इस देश में भेजा है। देखते नहीं हो, हम लोगो ने कितना सहज ही यहाँ एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया है। मैं यह मान नहीं सकता कि हम लोग यहाँ केवल कर उगाहने, दुकान और कारखाने चलाने तथा धन बटोरने के लिए आए हैं। हमारे आगमन का उद्देश्य इससे अधिक

पवित्र है। यहाँ के लोगों को चरित्र-बल और ज्ञान में समुन्नत करने तथा कुसंस्कारों और मत-मतान्तरों का मूलोच्छेद करने के अभिप्राय से ही ईश्वर ने हमें साम्राज्य-स्थापन में समर्थ बनाया है। किन्तु शोक और लज्जा का विषय है कि हमने ईश्वरीय इच्छा की पूर्त्ति के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। हमारा शासन भारतवासियों के चरित्र को विशुद्ध बनाने के बदले उसे दिनोंदिन अधिकाधिक कुत्सित बना रहा है। क्या भारतवासी हमारे आगमन के पहले भी इतने अधिक मिथ्यावादी और विश्वासघाती थे ? हमारे न्यायालय और शासन-प्रणाली इनके स्वभाव की सरलता और सत्य-प्रियता का विनाश कर इन्हें प्रवञ्चक और मूढ़ बना रही है। हमारे सम्पर्क में आकर सीधे-सादे मितव्ययी भारत-वासी भी कपट और विलासिता की ओर आकर्षित हो रहे हैं। हमने उन्हे सुशिक्षित बनाने का कोई प्रयत्न तो किया नहीं, उलटे उन्हें घृणा की दृष्टि से देखकर अपने सद्‌गुणों को ग्रहण करने में भी असमर्थ बना दिया। आज हमें सच्चे ईसाई की भाँति कर्त्तव्य के लिए प्राण न्योछावर कर, इस पतित जाति को सत्‌शिक्षा प्रदान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्रभु की इच्छा हमारे जीवन में पूर्णतया फलीभूत हो। इस देश के लोग एक बार आँखें खोल कर देख लें कि सच्चा ईसाई मृत्यु से नहीं डरता। अङ्गरेज-जाति स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए सदा मर-मिटने को तैयार रहती

है। हमारा उज्ज्वल बलिदान—हमारे त्यागमय जीवन का अन्तिम दृष्टान्त इस पतित जाति के मन में वीरता का सञ्चार करे; इस भीरु जाति को समुन्नत करे।"

स्किन साहब दीवार पर लटके हुए क्रूस-निहत क्राइस्ट के चित्रपट की ओर उँगली दिखा कर बोले—"यह देखो, हमारे पूज्य प्रभु जगत् के कल्याण के लिए आत्म-विसर्जन कर रहे हैं। आज हम भी प्रभु के पदानुगामी होंगे। क्राइस्ट की भाँति हँसते-हँसते प्राणों का त्याग करना ही हमारे क्रिश्चियन नाम को सार्थक करेगा।"

जिस समय स्किन साहब अपने मर्माहत उद्‌गारों को प्रकट कर रहे थे, उस समय उनकी प्यारी सहधर्मिणी निस्तब्ध भाव से उनके सामने बैठी हुई थी। वक्तृता समाप्त कर स्किन साहब उनके पास आए और उनके गले में हाथ डालकर बैठ गए। फिर उनका मुख चूम कर कहने लगे—"Fear not death, it will open to us the gates of Heaven—अर्थात् मृत्यु का भय न करो, यह हम लोगों के लिए स्वर्ग का द्वार खोल देगी।"

इस प्रकार दुर्गवासी अङ्गरेजों के आपस में बातचीत करते बहुत रात बीत गई। रानी के पास दूत भेजा जाय या नहीं, इस विषय में कुछ निश्चित नहीं हो सका। उस रात अङ्गरेजों को और नींद न आई। नगर की समस्त जनता विद्रोहियों के साथ थी। भागने की राह पाना कठिन

था। उन्हें विवश होकर आत्मरक्षा के लिए प्रस्तुत होना पड़ा। कप्तान गार्डन आदि कई अङ्गरेज़ अस्त्र-शस्त्रों का प्रबन्ध करने लगे।

रात बीती और प्रभात हुआ, किन्तु बड़े अशुभ मुहूर्त में। ७वीं जून ने झाँसी के इतिहास मे एक विपत्ति-काल का पदार्पण कराया। प्रातःकालीन सूर्य की मधुर रश्मियो ने दिग्मण्डल आलोकित किया, किन्तु वसुन्धरा को इस आलोक का न प्राप्त होना ही अच्छा था। बाल सूर्य की रश्मियाँ हृदय को प्रफुल्लित करती हैं, प्रभात-समीरण शान्ति की वर्षा करता है। किन्तु आज झाँसी के प्रातःप्रकाश ने न तो किसी के अशान्त हृदय को प्रफुल्ल किया, न मन्द समीर को किसी चिन्तित मन में शान्ति वितरण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आज एक ओर झाँसी-निवासियो के हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वालामुखी भभकने वाली थी, दूसरी ओर मुट्ठी भर असहाय पुरुष और सुकुमार महिलाएँ उत्सुकता के साथ मृत्यु की बाट जोह रही थीं।

प्रातःकाल से ही केवल विद्रोही सेना ही नहीं, नगर-वासी भी अङ्गरेजों पर आक्रमण की तैयारी करने लगे। पहर दिन चढ़ते-चढ़ते इन लोगों ने नगर-दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। चारों ओर से गोले छूटने लगे। अस्त्र-शस्त्रों की हुङ्कार से आकाश काँप उठा।

किन्तु धन्य है अङ्गरेज़ों की वीरता ! धन्य है अङ्गरेज़-रमणियों का साहस ! दोपहर तक दुर्गस्थित थोड़े से अङ्गरेज़ों ने अविश्रान्त गोलों की वृष्टि कर विपक्षी दल के प्रायः चालीस आदमियों को धराशायी कर दिया । स्किन और ब्राउन साहब की धर्मपत्नियाँ पुरुषों के पीछे खड़ी होकर बन्दूक़ों के लिए बारूद दे रही थीं । देखते-देखते तीसरा पहर हो गया । जून के प्रचण्ड ताप से दोनों पक्ष के योद्धा अत्यन्त क्लान्त हो गए । इधर विद्रोहियों के आघात से दो-एक अङ्गरेज़ों की मृत्यु भी हुई । इसी समय विद्रोहियों के एक प्रधान नेता झाँसी के तहसीलदार अहमदहुसेन ने अङ्गरेज़ों को आश्वासन दिलाया कि यदि आप क़िला छोड़कर झाँसी से चले जायँ तो विद्रोही आपकी हत्या न करेंगे ।

मेजर स्किन अहमदहुसेन का थोड़ा भी विश्वास न करते थे । उन्होंने आश्वासन के शब्दों को विश्वासघात की भूमिका समझा । किन्तु गार्डन आदि कई अङ्गरेज़ कहने लगे—इस समय जब युद्ध करने से भी जीवन-रक्षा असम्भव है, तब इन लोगों की दया पर निर्भर करने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है ?

इधर अधिकांश अङ्गरेज़ों की सम्मति से यह निश्चित हुआ कि बचे हुए अङ्गरेज स्त्रियों और बच्चों के साथ दुर्ग से बाहर होंगे । उधर अहमदहुसेन की आज्ञा पाकर विद्रोहियों ने गोला बरसाना बन्द कर दिया । आध घण्टा भी न बीतने

दसवाँ परिच्छेद

सिंहासनारोहण



सी के अङ्गरेज़ों से शून्य होते ही वहाँ अराजकता फैल गई। नगर का प्रत्येक भाग सैनिकों के कोलाहल से परिपूर्ण हो गया। ख़ज़ाने के लूटे हुए रुपयों को बाँटने के लिए वे आपस में ही विवाद करने लगे। मुसलमान-सिपाहियों में से किसी-किसी ने नवाब हुसेन-कुलीख़ाँ को झाँसी की राजगद्दी पर बैठाने का प्रस्ताव किया। किन्तु झाँसी के विद्रोही सिपाहियों में अधिकांश हिन्दू थे। वे हुसेन कुलीख़ाँ को राजा बनाने के लिए सहमत न हुए। अब हिन्दू-सिपाही तीन दलों में बँट गए। एक दल के नेता थे हवलदार गुरुबख़्श। इस दल के लोग झाँसी-राजवंश के बालाजी नाना विश्वनाथ को झाँसी का राजा बनाना चाहते थे। दूसरे दल के मुखिया बलदेव पाँडे थे। यह दल झाँसी का राज-सिंहासन बालाजी गोविन्दराव को प्रदान करना चाहता था। सूबेदार शिवदयाल पाँडे का

तीसरा दल इस बात का समर्थक था कि झाँसी का राज्य झाँसी की रानी वीराङ्गना लक्ष्मीबाई के ही सुशासन में रहे।

८ वीं जून का सारा दिन इसी वाद-विवाद में व्यतीत हुआ। यहाँ तक कि विद्रोहियों में ही पारस्परिक संग्राम की नौबत आगई। षड्यन्त्रकारियों में केवल अहमदहुसेन ही एक ऐसा व्यक्ति था, जो राज्य-प्रबन्ध का थोड़ा-बहुत ज्ञान रखता था। किन्तु वह स्वयं ही दीवान बनकर झाँसी का शासन-सूत्र अपने हाथों में रखना चाहता था। इस गुप्त अभिप्राय की सिद्धि के लिए वह हिन्दू-सिपाहियों से मिल कर हुसेन कुलीख़ाँ के नवाब बनाए जाने का घोर विरोध करने लगा। इससे मुसलमान सिपाही अहमदहुसेन पर बहुत बिगड़े। उधर हिन्दू-सिपाही उसे पहले से ही विश्वास-घातक कह कर उससे घृणा करते थे। इसलिए अहमद-हुसेन की स्वार्थ-सिद्धि का अब कोई साधन न रहा। राज्य की सारी प्रजा एक स्वर से बोल उठी—'महारानी लक्ष्मीबाई की जय—महारानी की जय!'

अहमदहुसेन ने देखा कि देश की सारी प्रजा एकमत से लक्ष्मीबाई को राज-सिंहासन पर पुनरासीन करना चाहती है। अतः वह भी रानी का पक्ष समर्थन कर अपने को सर्व-प्रिय बनाने की चेष्टा करने लगा। वह उत्तेजित सिपाहियों को पुकार कर कहता था—"भाई, तुम लोग इस समय

विवाद और कलह छोड़कर मेरी एक बात सुनो। कल वाली घटना का समाचार पाते ही नौगाँव से अङ्गरेज़ी फौज तुम लोगों से युद्ध करने के लिए पहुँच जायगी। ऐसी अवस्था में तुम लोग आपस में ही लड़ते-भिड़ते रहोगे तो फिरङ्गियो के हाथ से मारे जाओगे। देश के सब लोग महारानी को सिंहासन देना चाहते हैं। इस समय मातृ-स्वरूपा महारानी के ही सिहासन ग्रहण करने से हम लोगों की रक्षा हो सकती है। इसलिए चलो, हम सब लोग महारानी के पास चलें। उनसे गद्दी पर बैठने का अनुरोध करेंगे। यदि दुर्भाग्य-वश वह हम लोगों की रानी बनना स्वीकार न करें तो फिर जैसा उचित होगा वैसा किया जायगा।"

अहमदहुसेन के इतना कहते ही चारों ओर से "महारानी लक्ष्मीबाई की जय" "माता जी की जय" "महारानी सिंहासन ग्रहण क्यों न करेंगी?" "महारानी ज़रूर गद्दी पर बैठेंगी!" इस प्रकार की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। लोगों ने इतना कोलाहल मचाया कि अहमदहुसेन को विवश होकर अपना भाषण बन्द करना पड़ा। उन्हें अपने मतलब की दो-एक बातें और कहनी बाक़ी थीं। किन्तु "महारानी की जय" "महारानी को गद्दी दी जाय" की चीत्कार में उनके लिए कुछ कहना-सुनना असम्भव होगया। प्रायः आध घण्टे तक चुप रह कर भी जब उन्होंने देखा कि अब कोई बात कारगर न होगी, तो बड़े ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगे—

"तब चलो, हम सब लोग राजमहल में जाकर महारानी से भेंट करें।"

अहमदहुसेन के इतना कहते ही सब लोग "अभी चलो," "हम लोग अभी चलेंगे" कह कर चलने के लिए तैयार होगए। अहमदहुसेन, कालेख़ाँ, गुरुबख़्श, शिव-दयाल पाँडे, लक्ष्मणसिंह, फ़ैज़ुल्लाह, सैकड़ों दूसरे सिपाही और नगर के बहुत से लोग राजप्रासाद की ओर चले।

इधर ७वीं जून की रात में ही दीवान लक्ष्मणराव लक्ष्मीबाई के पास जा, बड़े आह्लादित-चित्त से हँसते-हँसते बोले—बेटी, शुभ घड़ी आ गई। झाँसी अङ्गरेज़ों से ख़ाली हो गई।

"अङ्गरेज़ों से ख़ाली हो गई? सो कैसे? क्या कमिश्नर स्किन साहब को भी मार डाला?"

"बेटी, स्किन-फ़िस्किन, बच्चा-कच्चा, बुड्ढा-जवान—सब यमपुरी भेज दिए गए।"

"तुम क्या कहते हो, बच्चा-कच्चा, बुड्ढा-जवान सबको मार डाला? स्किन साहब की मेम कहाँ है?"

"मेम-बीबी, स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़की—एक आदमी भी जीवित नहीं है। राक्षस-कुल का पूरा संहार हो गया।"

लक्ष्मणराव की बात सुन कर लक्ष्मीबाई का सारा शरीर काँप उठा। उनके अङ्ग-अङ्ग में रोमाञ्च हो आया। वह अपना सिर पीटती हुई बोलीं—क्या झाँसी के भाग्य में

यही बदा था? इस नगरी में स्त्री-हत्या तक हो गई! अङ्गरेज़ यहाँ गो-हत्या करते थे, इससे मेरे मन में कभी-कभी यह आता था कि झाँसी को छोड़ दूँ—और अब यहाँ स्त्री-हत्या तक हो गई! दूर हो नराधम! महाराष्ट्र-कुलाङ्गार! तुम हँसते हुए मुझे नारी-हत्या का सम्वाद सुना रहे हो?"

रानी से इस प्रकार तिरस्कृत होकर लक्ष्मणराव अत्यन्त खिन्न-बदन हो कहने लगे—बेटी, मैं अब वृद्ध हुआ, मेरे तीन पन बीत गए; इधर नगर में नारी-हत्या भी हो गई। विद्रोह का अन्त होते ही मैं गङ्गा-स्नान को जाऊँगा। अतः कुछ समय के लिए विदा माँगता हूँ।

रानी ने क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—मैं तुम्हें जन्म भर के लिए विदा देती हूँ। तुम्हारे और अहमदहुसेन के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं।

लक्ष्मणराव चुपचाप खड़े रहे। रानी ने फिर पूछा—क्या सभी अङ्गरेजों की जान ले ली? स्त्री-पुरुष, लड़की-लड़के सबको मार डाला? सिपाहियों ने यह नीच कर्म किसके हुक्म से किया है?

"सिपाहियों में कोई किसी का हुक्म नहीं मानता। जिसकी जो इच्छा होती है, वह वही करता है। मैंने सुना है कि अङ्गरेज लोग ज्योंही किले से बाहर हुए, त्योंही सिपाहियों ने उन्हें मार डाला है।"

"तो निःशस्त्र दशा में उनका बध हुआ है ?"

"हाँ, जान तो ऐसा ही पड़ता है।"

"उफ ! यह कैसा पशुवत् व्यवहार है ! आपने इन्हीं नराधमों का साथ देने के लिए मुझसे अनुरोध किया था ?"

यह कह कर लक्ष्मीबाई ने लक्ष्मणराव को बिदा दिया और स्वयं अत्यन्त विक्षिप्त भाव से गङ्गाबाई के कमरे की ओर चली गईं। गङ्गाबाई का हृदय लक्ष्मीबाई से भी अधिक कोमल और दयालु था। अङ्गरेज स्त्रियों और बालकों की हत्या का समाचार सुनते ही उनका हृदय भर आया। वह आँखों में आँसू भर कर सौत के साथ हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में बातचीत करने लगीं।

लक्ष्मीबाई ने कहा—देखो, जिसका मुझे भय था, वही हुआ। नीच कायरों की भाँति विद्रोहियों ने अङ्गरेजों का वध किया है।

गङ्गाबाई ने पूछा—क्या विद्रोही हमारे महल पर भी आक्रमण करेंगे ? यदि उन्होंने आक्रमण किया तो आत्म-रक्षा के लिए क्या उपाय करना होगा ?

"क्या उपाय करना होगा ? मैं उनसे युद्ध करूँगी। मै क्या इन स्वार्थी कुत्तों से डरती हूँ ?"

"हजारो सिपाहियो से युद्ध करके तुम राजमहल की रक्षा कर सकोगी ?"

"अकेला शेर हजार शृगालों से नहीं डरता। तुम

विश्वास रक्खो, मेरे पास केवल पचास निर्भीक योद्धा हों तो मैं क्षणमात्र में इन हज़ारों सिपाहियों को पराजित कर सकती हूँ। तुम्हें भीत होने की आवश्यकता नहीं। लक्ष्मीबाई के शरीर में प्राण रहते तुम्हें स्पर्श करने का दुस्साहस कोई नहीं दिखा सकता।"

"क्या तुम समझती हो कि मैं अपने ही अधम शरीर के लिए चिन्तित हूँ ? मैं जानती हूँ, मुझे कोई छू नहीं सकता। इन तीन वर्षों की तुम्हारी सत्सङ्गति ने मेरे हृदय में भी वीरत्व का सञ्चार कर दिया है। मैं पहले मर्दों से डरा करती थी, किन्तु अब मुझे अनुभव होता है कि मैं हाथ में तलवार लेकर सिपाहियो के सामने खड़ी हो सकती हूँ। मुझे अपनी रक्षा की कोई चिन्ता नहीं। मैं तो केवल यह जानना चाहती थी कि सङ्कट आ पड़ने पर तुम क्या व्यवस्था करोगी। मैं यह भली-भाँति जानती हूँ कि अपने स्वगौरव की रक्षा के लिए विपत्ति की आग में कूद पड़ने से पहले तुम आगा-पीछा कभी नहीं सोचतीं।"

"तुम निश्चिन्त बैठो। यदि राजप्रासाद पर आक्रमण होगा तो मैं युद्ध करूँगी। मैं क्या थोड़े से सुअरों से डरती हूँ?"

"विद्रोही सिपाही यदि राजप्रासाद पर आक्रमण न कर, देश छोड़ कर चले जायँ तो नगर की अराजकता को रोकने के लिए क्या प्रबन्ध करोगी।"

"इस विषय में पिता के साथ परामर्श करना होगा।

मालूम होता है कि ऐसी अवस्था में मुझे राज्य-भार अवश्य ग्रहण करना होगा।"

"अराजकता तो आरम्भ हो गई है। सम्भव है, कल से दुकानें बन्द हो जायँ। आज रात को ही पिता के पास आदमी क्यो नहीं भेज देतीं ?"

"कल प्रातःकाल होते ही भेज दूँगी।" यह कह कर लक्ष्मीबाई अपने शयनागार में चली गईं। ७वीं जून की रात भर और दूसरे दिन तीन-चार घड़ी दिन चढ़े तक लोगों का शोर-गुल किसी तरह भी बन्द न हुआ। ८वीं जून को पहर दिन चढ़ते ही षड्यन्त्रकारियो के नेता अहमद-हुसेन आदि विद्रोही सिपाहियो को साथ ले राजमहल के द्वार पर उपस्थित हुए और रानी से साक्षात् करने को अपना अभिप्राय प्रकट किया। रानी के पिता प्रातःकाल से ही राजमहल में आए हुए थे। उन्होने जब यह भली-भाँति समझ लिया कि आए हुए विद्रोहियों का उद्देश्य राजमहल पर आक्रमण करना नही है, तो उन्होंने रानी से बाहर आकर उन्हें दर्शन देने का अनुरोध किया। रानी लक्ष्मीबाई जिस प्रकार पहले दरबार में उपस्थित हुआ करती थीं, आज भी उसी प्रकार वेश-भूषा से सुसज्जित और सहचरियो से परिवेष्टित हो, ज्योंही बाहर आईं त्योंही सिपाहियों ने अपने हाथ का अस्त्र उठाकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। सामने की भीड़ "जय महारानी," "लक्ष्मीबाई की

कलङ्कित किया है—इस नगर को अपवित्र कर डाला है। अङ्गरेज़ झाँसी में गोहत्या करते थे, इससे मेरा मन उन्हें निकाल भगाने के लिए व्याकुल हो उठता था। पहले कोई झाँसी में गोहत्या करने का दुस्साहस नहीं करता था, किन्तु अङ्गरेज राक्षसों ने गोहत्या द्वारा मेरे राज्य को अपवित्र कर दिया है। तुम लोगों ने इससे भी बड़ा पाप किया—स्त्री-हत्या करके झाँसी को नरक से भी बदतर बना दिया। क्या तुम जानते नहीं कि एक स्त्री का वध हज़ारों गायों की हत्या के बराबर है?

रानी की बात अभी समाप्त भी न हो पाई थी कि उन्हें बीच ही में बाधा दे सैनिक चारों ओर से चिल्ला कर अपने को अङ्गरेज़-रमणियों की हत्या के अपराध से निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा करने लगे। पाँच सात सिपाही बोल उठे—दोहाई महारानी की, हम लोगों ने कभी मेमों की हत्या नहीं की। उन्हें मारने का विचार तक हमारे मन में नहीं आया।

मुसलमानों में फ़ैजुल्लाह बोले—महारानी, भला मैं क्यों मेमों का ख़ून करने लगा? मैंने तो पहले से ही ठीक कर रक्खा था कि मैकगविन साहब की मेम को कलमा पढ़ा कर निकाह कर लूँगा!

कालेखाँ बोले—मैं मेमों को क्यों मारता? मैं तो बर्नर्ड साहब की मेम से क़ुरान पढ़ा कर निकाह करने वाला था।'

हुसैनउल्ला बोला—मैं भी बर्जेस साहब की मेम से

नेकाह कर लेता। हवलदार गुरुबख्श तथा उनके दल के हिन्दू-सिपाहियों ने ही मेमों का ख़ून किया है। हम लोगों ने तो उन्हें छुआ तक नहीं।"

स्त्री-हत्या के दोष से अपने को बरी कर मुसलमान-सिपाही ख़ुशी से चिल्लाने लगे। उधर हिन्दू-सिपाही चुपचाप एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे। उनमें यह कहने का साहस न था कि हम अङ्गरेज़-महिलाओं को अपनी अर्द्धाङ्गिनी बना लेते। उनके पास ही झाँसी शहर का एक वैष्णव-धर्मावलम्बी बज़ाज़ खड़ा हुआ था। उसकी जन्म-भूमि वृन्दावन थी। वह झटपट हिन्दू-सिपाहियों से बोला—अरे, मुसलमान-सिपाही इस समय चालाकी से अपने को मेमों की हत्या के अपराध से निर्दोष सिद्ध कर रहे हैं। सारा दोष तुम्हीं लोगों के सिर पर मढ़ा जा रहा है। हमारे ऋषि-मुनि क्या मुसलमानों से भी कम चालाक थे ? उन्होंने क्या हम लोगों के लिए कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया है ? तुम लोग भी कहो कि हम मैकगविन साहब की मेम का सिर मुड़ा कर और उन्हें गङ्गाजल पिलाकर वैष्णवी बना लेते। तुम्हीं लोगों ने मेमों की हत्या की है। इस उपदेश के अनुसार चार-पाँच हिन्दू-सिपाही एकबारगी बोल उठे—"दोहाई महारानी की, हम लोगों ने मेमों की हत्या नहीं की है। हम लोगों ने पहले ही से निश्चय कर लिया था कि उनका सिर मुड़ा कर उन्हें वैष्णवी बना लेंगे।"

हिन्दू-सिपाहियों की यह बात सुनते ही कालेखाँ आपे बाहर हो गए। कहने लगे—साले हिन्दू काफिर, इस सम वैष्णवी बनाने की तदबीर निकाल कर अपना क़ुसूर छिपा चाहते हैं। मै हाथ में क़ुरान लेकर कह सकता हूँ कि हवल दार गुरुबख्श ने ही पहले-पहल मेमो के हाथ बाँधना शु किया था। गुरुबख्श के पहले किसी ने भी अङ्गरेज़ों नहीं छुआ। गुरुबख्श की ही देखादेखी सब लोगो ने मिल कर अङ्गरेज़ो की जान ली है।

उस समय गुरुबख्श सबके पीछे बैठे हुए गाँजे का दम लगा रहे थे। सारा दोष अपने ही मत्थे आते देखकर वह सबके सामने आ गुस्से के साथ बोले—मैंने किस लिए अङ्ग रेज़ो की मेमो और वालकों के हाथ बाँधे, सो तुमने क्या समझा? तुम हो मुसलमान, धर्माधर्म-ज्ञान से शून्य। मेरी यह इच्छा थी कि कुछ वालकों को पकड़ कर माँ के सामने नर-बलि दूँगा। तुम्हीं बताओ, साहबो और मेमों को मारे बिना बच्चो को पकड़ना कैसे सम्भव था? मैंने केवल धर्म के विचार से ही अङ्गरेज़ स्त्री और पुरुषों को मारा था और इसके बाद वालकों को पकड़ने की चेष्टा कर ही रहा था कि इतने में तुम्हारे सैकड़ों मुसलमान सिपाही और उनके पीछे-पीछे असंख्य हिन्दू सामने आकर बालक-बालिका, साहब-मेम सबको मारने-काटने लगे। मैं देख कर अवाक् रह गया। मैंने आशा की थी कि नर-बलि प्रदान कर माँ भैरवी

की पूजा करूँगा और उनसे युद्ध में विजयी होने का वर-दान प्राप्त करूँगा।

गुरुबख़्श की बातें सुन, रानी लक्ष्मीबाई और उनकी सहेलियाँ काँप उठीं। रानी गङ्गाबाई भी वहाँ उपस्थित थीं। उनका हृदय भी द्रवित होगया। वह मन ही मन सोचने लगीं—अन्ध-विश्वास और धार्मिक कुसंस्कार मनुष्य को भी पशु बना देता है।

वस्तुतः धार्मिक अन्धश्रद्धा भी झाँसी के अङ्गरेजों की हत्या का एक प्रधान कारण थी। इसी प्रकार के कुसंस्कारों से प्रेरित होकर यदि गुरुबख़्श अङ्गरेजों का रक्तपात करने के लिए उन्मत्त न हो जाता तो झाँसी में इस प्रकार की भीषण नर-हत्या कदापि न होती। गुरुबख़्श की बातों से रानी को नर-हत्या का असली कारण मालूम हो गया। वह कुछ समय तक मौन रह कर बोलीं—"सैनिको, मैंने बहुत सोच-विचार कर देख लिया कि मैं किसी प्रकार भी तुम्हारा साथ नहीं दे सकती। तुम लोग मेरी आज्ञा का पालन नहीं करोगे। तुममें से प्रत्येक सैनिक स्वेच्छाचारी होना चाहता है। प्रत्येक अपने स्वार्थ की बात सोचता है। हर एक हृदय में मुखिया बनने की इच्छा है। हिन्दू-सिपाही मुसलमान-सिपाहियों से द्वेष रखते हैं और मुसलमान-सिपाही हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। तुम लोगों में कभी आपस में एकता नहीं होगी और इसका फल यह होगा

कि जब अङ्गरेज़ झाँसी पर आक्रमण करेंगे तो तुममें से हर एक अपनी-अपनी जान बचाने के लिए भाग खड़ा होगा। सम्मुख संग्राम में तुम्हें परिचालित करना असम्भव है।"

रानी के मुँह से अपनी निन्दा सुन कर सैनिक एक स्वर से चिल्लाने लगे—हम लोग आपकी आज्ञा मानेंगे। झाँसी में फ़िरङ्गियों का प्रवेश कभी न होने देंगे। महारानी के लिए प्राणों का त्याग करने को प्रस्तुत हैं। जय महारानी की जय !

सैनिकों की यह चिल्लाहट बन्द होने के पहले ही महारानी पहले से भी अधिक उत्तेजित होकर कहने लगीं—मैं व्यर्थ शेखी सुनना नहीं चाहती। तुम्हारी बनावटी बातें मुझे भुलावा नहीं दे सकतीं। तुममें से कितनों ने सैनिक योद्धा का स्वभाव पाया है? किस-किस के हृदय में वीरत्व का निवास है? कौन-कौन सैनिक तेज से प्रदीप्त हो रहा है? प्रकृत योद्धा मृत्यु से नहीं डरते और न विपत्ति में पराजित होते हैं। अटल भाव से, निर्भीक-चित्त से संग्राम-क्षेत्र में प्रवेश करना ही वीर का धर्म है। मैं जानना चाहती हूँ, तुममें से कितने निःशङ्क-चित्त हो, मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए तैयार हैं।

रानी की यह वीरोचित पुकार सुनते ही समस्त सैनिक उच्च स्वर से बोल उठे—हम सब लोग झाँसी की रक्षा के

लिए अपने-अपने प्राण न्योछावर करेंगे। हम महारानी के लिए अपना सर्वस्व-त्याग करने को प्रस्तुत हैं। क्या हम लोग फिरङ्गियों से डरते हैं ?

"क्या तुम लोग फिरङ्गियों से डरते नहीं ? मैं तुम्हारा निरर्थक बकवाद सुनना नहीं चाहती। तुम्हारी झूठी डींग पर मेरा विश्वास नहीं। इस बात को कौन स्वीकार करेगा कि इस देश के निवासियों में वीरता का लेश-मात्र भी बाक़ी है ? वीरता को तो हमने बहुत पहले ही निर्वासित कर दिया। इस देश के राजा कामुक नर-पिशाच हैं—उनके मन्त्री चोर और लबार हैं, उनकी सेना कायर और डर-पोक है, उनकी प्रजा नपुंसक और स्त्रैण है। देश वीरों से विहीन हो गया है— पुरुषो से शून्य हो गया है। ऐ नरा-धम कापुरुषो—औरतो की भीड़—तुम पुरुषों का वेश त्याग कर स्त्रियो के कपड़े पहन लो और इसी समय हाथ का शस्त्र रख कर झाँसी से भाग जाओ, नहीं तो सिंह के समान दुर्जय अङ्गरेज़ सैनिक यहाँ आकर शीघ्र ही तुम्हारी जान ले लेंगे। क्या मै तुम लोगो के शेख़ी मारने पर ही भूल जाऊँगी ? क्या मै तुम्हारे जैसे कायरो की रानी होकर, कुटिल पामरो की माँ बन कर रणक्षेत्र में प्रवेश करूँगी ? यदि एक पुरुष में भी वीरता होगी तो उसी को अपनी सन्तान कह कर सन्तुष्ट होऊँगी। लक्ष्मीबाई वीरों की माता है—कायरों की जननी नहीं।"

रानी की तेजस्विनी वाणी से सिपाहियों का हृदय पूर्णतः उत्तेजित हो गया। रानी का वीरत्व उनके प्रत्येक शब्द के साथ समुच्छ्वसित होकर सैनिको के हृदय में प्रवेश करने लगा। सिपाहियों ने अपने हाथों का अस्त्र-शस्त्र ऊपर उठा कर कहा—माँ, अभी सिंहासन पर बैठ कर आदेश दो, हम अङ्गरेज़ी सेना पर आक्रमण करेंगे। देश को अङ्गरेज़ों से शून्य कर देंगे। माँ, तुम्हारे लिए हम प्राण विसर्जन करने को तैयार हैं—प्राणपण से युद्ध करेंगे।

रानी ने देखा कि मेरी पुकार पूर्णतः निष्फल नहीं हुई। इस बार सैनिक उनसे विशेष आग्रह-पूर्वक राज्य ग्रहण करने के लिए अनुरोध करने लगे। वह भी सैनिकों को डाँट-फटकार न सुना कर उनसे स्नेह-पूर्वक बोलीं—यदि तुम लोग वस्तुतः सम्मुख संग्राम में लड़ने की इच्छा रखते हो, तो सच्चे सैनिक की नाईं प्रतिज्ञा करो कि तुम सदा अपने सेनाध्यक्ष का आदेश मानोगे, कभी उसकी आज्ञा पालन करने में त्रुटि नही करोगे, अपनी जान हथेली पर लेकर युद्ध-स्थल में निर्भय विचरण करोगे—सैनिक धर्म के पालन में पराङ्गमुख न होगे।

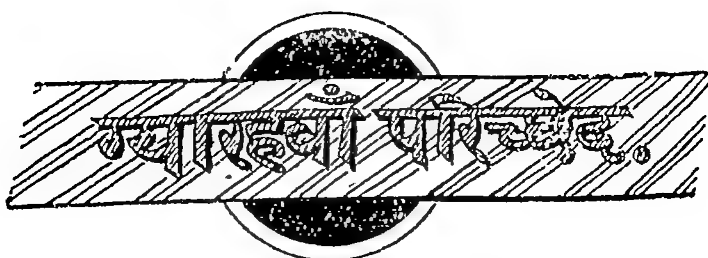
रानी की बात समाप्त होते ही समस्त सैनिक म्यानों से तलवार निकाल कर बोले—यह तलवार हाथ में लेकर हम लोग प्रतिज्ञा करते हैं—झाँसी-राज्य की रक्षा के लिए, महारानी के सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, अस्त्र धारण

करेंगे। आत्म-रक्षा की चिन्ता छोड़ कर महारानी लक्ष्मी-बाई का पदानुसरण करेंगे।

महारानी लक्ष्मीबाई महाराष्ट्र स्त्रियों की प्राचीन प्रथा के अनुसार कमर मे तलवार धारण कर दरबार मे उपस्थित होती थी। जब सिपाहियों ने उन्हे सेनापति के पद पर बिठा कर प्रतिज्ञा की तो वह अपनी कमर की तलवार उठा कर बोली—आज मैं झाँसी का सिहासन ग्रहण करती हूँ। मेरे हाथ की तलवार और मेरे मस्तिष्क की बुद्धि राज्य की रक्षा और प्रजा तथा सेना के मङ्गल के लिए नियोजित होगी।

रानी के मुँह से 'झाँसी का सिहासन ग्रहण करती हूँ' यह सुनते ही सामने खड़े हुए सिपाही आनन्द से उछल पड़े, नाचने और कूदने लगे। हिन्दू-मुसलमान सब एक हो गए और लगातार "महारानी की जय" "लक्ष्मी माता की जय"—की आनन्द-ध्वनि से अपने उल्लास का परिचय देने लगे।





मन्त्रणा



निकों से विदा हो रानी अपनी सहचरियों के साथ अन्तःपुर की ओर चली गईं। रानी लक्ष्मीबाई के सिंहासनारोहण से आज झाँसी की प्रजा के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा! सबके मुख पर उत्साह की झलक दिखाई देती थी, किन्तु साथ ही उनके मन में अपनी मातृस्वरूपा रानी के राज्य को दृढ़ और स्थायी बनाने की चिन्ता भी वर्त्तमान थी।

रानी ने विचार किया कि भोजन के उपरान्त गङ्गाबाई से वार्तालाप कर, उनकी सम्मति के अनुसार राज्य-रक्षण और राज्य-शासन के सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित करूँगी। इस समय गङ्गाबाई के प्रति उनकी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ रही थी। वह अब तक गङ्गाबाई से अपनी सहो-

दरा छोटी बहिन की भाँति स्नेह रखती थीं और उनकी स्वाभाविक सरलता एवं अकपट व्यवहार पर मुग्ध रहा करती थीं, किन्तु जब से उन्होंने गङ्गाबाई के मुख से शास्त्रों का विवेचन और ज्ञान-भरी हुई नाना प्रकार की बातें सुनी हैं, तब से वह उन्हें सब प्रकार अपने से श्रेष्ठ समझती हैं। उनके मन मे धीरे-धीरे यह धारणा स्थिर होने लगी कि मैं अशिक्षित, मूर्ख और अज्ञान हूँ तथा गङ्गाबाई सुशिक्षित रमणी और विदुषी महिला हैं। इस प्रकार का विश्वास ही उन्हे गङ्गाबाई के सामने शिष्य-भाव से उपस्थित कर देता था। आज भी भोजन के उपरान्त दोनों रानियों के एकत्र होते ही उनका विवाद आरम्भ हो गया। गङ्गाबाई हँसते-हँसते बोली—तुमने तो आज देश के राजाओं को कामुक नर-पिशाच, उनके मन्त्रियों को चोर और लबार, उनकी सेना को कायर और डरपोक तथा प्रजा को स्त्रैण और नपुंसक कह दिया। किन्तु देश की स्त्रियाँ क्या हैं, इसे तो तुमने बताया ही नहीं।

"यह हँसी-मज़ाक़ का समय नहीं। मैंने पिता को बुला भेजा है। वह इस समय यहाँ आते ही होगे। राज्य-शासन के लिए क्या प्रवन्ध होगा, यही सोचना है। देश की स्त्रियाँ क्या है, इस विषय पर पीछे विचार हो जायगा।" वह कुछ देर ठहर कर फिर बोलीं—"देश की स्त्रियाँ क्या हैं—सुनोगी ? देश की स्त्रियाँ तुम्हारी-जैसी प्रेमिका हैं, वे केवल

प्रेम का गीत गाना जानती हैं—और केवल प्रेम की ही बात सुनना चाहती हैं।"

गङ्गाबाई ने हँसते-हँसते फिर कहा—मैंने तो अनुमान किया था, तुम यह कहोगी कि देश के मर्द औरत हैं और औरतें मर्द हैं। सिपाहियो! तुम लोग अपने-अपने घर जाओ और अपनी-अपनी स्त्रियों को युद्ध-क्षेत्र में भेज दो। यदि वे रण-क्षेत्र में प्रवेश करें तो हम लोग निश्चय ही फिरङ्गियों को पराजित कर सकेंगी।

सौत की बात सुन कर लक्ष्मीबाई को अपनी हँसी रोकना मुश्किल हो गया। वह हँसते-हँसते बोलीं—मैंने उस समय क्या कहा था, यह मुझे तो याद नहीं, तुमने क्या सब बातों को कण्ठस्थ कर लिया है?

"मुझे तुम्हारे भाषण का एक-एक शब्द याद है। तुम चाहो तो मै तुम्हारा भाषण आदि से अन्त तक ज्यों का त्यों दुहरा सकती हूँ।"

"ऐसी ग़ज़ब की स्मरण-शक्ति! अच्छा, यह तो बताओ, उस समय मेरे मुँह से कोई अनुचित बात तो नहीं निकल पड़ी थी?"

"एक भी अनुचित बात नहीं। मेरा तो यह अनुमान भी नहीं था कि तुम इतने लोगों के समक्ष इस निर्भीकता से बोल सकोगी। वास्तव में तुम रमणी-कुल में धन्य हो! यदि देश की सारी स्त्रियाँ तुम्हारी जैसी हों, तो मर्दों को

अवश्य ही औरत बन कर घर के काम-धन्धे करने पड़ें और स्त्रियाँ ही सामाजिक जीवन की स्वामिनी बन जायँ।"

"अच्छा, इन बातों को छोड़ कर इस समय कर्त्तव्य की बात करो। मैं यही निश्चित करना चाहती हूँ कि राज्य की रक्षा और शान्ति की स्थापना के लिए किस उपाय का अवम्बन करना चाहिए। प्रातःकाल सब सैनिकों के चले जाने पर अहमदहुसेन एकान्त में बातचीत करने की इच्छा से खड़ा रहा। जिस समय मै घर लौटने लगी उस समय उसने बड़े विनीत भाव से कहा—'माता जी, शान्ति-रक्षा के लिए शीघ्र ही कर्मचारी और दीवान नियुक्त किए बिना काम नहीं चल सकता।' मैं उसी समय उसके मन की बात समझ गई, वह स्वयं दीवान बनने की इच्छा रखता है।"

गङ्गाबाई ने उत्तर दिया—इस समय नए कर्मचारियों को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं। अङ्गरेजों के कर्मचारियों से ही शान्ति-रक्षा का काम निकालना चाहिए। वर्तमान शासन-प्रणाली को उलट देने और कर्मचारियों को पदच्युत कर देने से अङ्गरेज यही समझेंगे कि तुम्हीं ने राज्य के लोभ से सिपाहियों को उत्तेजित कर उनकी हत्या कराई है। अभी तक विद्रोहियों को उत्साहित करने में तुम्हारा कोई हाथ नहीं रहा है। सम्प्रति झाँसी का कोई शासक नहीं, अङ्गरेज यहाँ से निकाल दिए गए हैं। ऐसी अवस्था मे अरा-

जकता का निवारण करने के लिए तुम्हें विवश होकर शासन-सूत्र ग्रहण करना पड़ रहा है। यदि तुम ऐसा न करो तो तुम्हें कर्त्तव्य के पथ से विचलित होने का पाप लगेगा। यदि विद्रोहियों ने अङ्गरेज़ों को हरा कर देश से निर्वासित कर दिया, तो राज्य तुम्हारा ही है, इसे कोई छीनने नहीं आता और यदि अङ्गरेज़ों ने विद्रोहियों को पराजित कर पुनः इस देश पर अपना अधिकार कर लिया तो उस समय की अवस्था देख कर उन्हें उनका राज्य सौंप देंगे। हमें व्यर्थ का झगड़ा मोल लेने से क्या लाभ ?

सौत की बात लक्ष्मीबाई को जँच गई। उन्होंने कहा—तुम्हारा परामर्श ही युक्तिसङ्गत जान पड़ता है। मैं भी अङ्गरेज़ों से व्यर्थ युद्ध करना नहीं चाहती। राज्य के भिन्न-भिन्न भागों के स्थानीय शासकों और न्यायाधिकारियों को वर्तमान-प्रणाली के अनुसार ही अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहने का आदेश लिख भेजती हूँ। किन्तु तुमने क्या अङ्गरेज जाति का स्वभाव अब तक भी नहीं जाना ? क्या इनके जैसी सन्दिग्ध-चित्त और स्वार्थ-परायण जाति संसार में दूसरी भी है ? मेरे राज्य-ग्रहण करने से ही अङ्गरेज यह निष्कर्ष निकाल लेंगे कि मेरी ही प्रेरणा से झाँसी का हत्याकाण्ड सङ्घटित हुआ था। यदि उनको पूर्ण रूप से पराजित कर देश से बाहर न निकाल दिया गया तो वे निश्चय ही हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे। ऐसी

अवस्था में उनकी शासन-प्रणाली को अक्षुण्ण रखते हुए भी उनसे युद्ध करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा।

"हाँ युद्ध की तैयारी तो करनी ही पड़ेगी। मैं इसका विरोध नहीं करती। किस धातु से अङ्गरेज़ जाति की सृष्टि हुई है, यह मैं भी जानती हूँ। विपत्ति पड़ने पर शरणागत होते हैं, किन्तु अवसर पाते ही उपकारी का शिरच्छेदन करने में भी कुण्ठित नहीं होते। मैं तुम्हें केवल दोनो ओर से बचाते हुए काम करने की सम्मति देती हूँ। इस युद्ध में अङ्गरेज़ पराजित होंगे और इस देश से निकाल दिए जायँगे, इसकी मुझे अधिक आशा नहीं। सिपाही निरे मूर्ख हैं और अपनी मूर्खता के कारण ही अङ्गरेज़ों को निकाल भगाने का स्वप्न देख रहे हैं। तो भी इस विद्रोह के कारण अङ्गरेज़ों का एकाधिपत्य बहुत अंशों मे नष्ट अवश्य हो जायगा। सम्भव है, उनकी क्षमता कम हो जाने पर वे नई सन्धि करके तुम्हें झाँसी का राज्य वापस लौटा दें।"

"यह तो मैं भी स्वीकार करती हूँ कि अङ्गरेज़ों को इस देश से बाहर निकाल देना कोई सहज काम नहीं है। वे युद्ध में अवश्य ही हम लोगों को पराजित करेंगे, और तुम जो बात कहती हो वह भी असङ्गत नही जान पड़ती। सम्भव है, अङ्गरेज़ों का आतङ्क कुछ कम होने पर वे पूर्व-सन्धि-पत्र के अनुसार झाँसी हमें लौटा दें। किन्तु उनका मित्र बने रह कर झाँसी का राज्य ग्रहण करने की मेरी कभी

इच्छा नहीं होती। यदि राज्य ही करना है, यदि रानी बन कर ही रहना है, तो अङ्गरेज़ों की मित्रता का अङ्कुश अपने सिर पर क्यों लगने दिया जाय? उनसे सम्बन्ध-विच्छेद किए बिना राज्य ग्रहण करना विडम्बना-मात्र है।"

गङ्गाबाई सौत की बात सुन कर मुस्कराती हुई बोलीं—ओहो! तुम भी तो बड़ी ऊँची उड़ान भरती हो! तुम्हारी महत्वाकांक्षा की भी कुछ हद है—एक स्वाधीन राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रही हो। किन्तु यह स्वप्न अङ्गरेज़ों को देश से एकबारगी निकाले बिना चरितार्थ नहीं हो सकता। झाँसी एक छोटा सा प्रदेश है, यह पहले भी तो इस प्रकार का स्वाधीन राज्य नहीं था। होलकर, सीधिया, गायकवाड़, निज़ाम, कोई भी तो स्वाधीन नहीं हैं, सबने अङ्गरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली है, सब उनकी कृपा-कटाक्ष के लिए लालायित हो रहे हैं।

"यह तो मै भी जानती हूँ कि सबों ने अङ्गरेज़ों की दासता स्वीकार कर ली है, किन्तु क्या ये वास्तव मे राजा हैं? सीधिया, होलकर, गायकवाड़ आदि को अपनी बुद्धि के अनुसार अपने राज्य का प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता कहाँ है? अङ्गरेज़ रेज़िडेण्ट ही राज्य के असली शासक हैं। राजा तो अपने राज्य रूपी जेल की चहारदीवारी के भीतर रेज़िडेण्ट अथवा पोलिटिकल एजेण्ट की देख-रेख में रहने वाला बन्दी-मात्र है। ये राजा नहीं, राजाओं के कलङ्क हैं। इनका

जीवन राजत्व की विडम्बना नहीं तो और क्या है ? मैं तो कभी ऐसा राज्य करना नहीं चाहती। नाम के लिए राजा और काम के गुलाम—पद-पद पर रेज़िडेण्ट की दया के भिखारी ! क्या वस्तुतः इनके राजा होने पर देश की ऐसी दुर्दशा होती ? महाराज की मृत्यु के बाद अङ्गरेज़ों ने मुझे राज्यच्युत करके अच्छा ही किया। मैं तो झाँसी में एक मास भी राज्य-शासन न कर पाती। रेज़िडेण्ट की अधीनता मेरे लिए असह्य हो जाती। सदा उससे वाद-विवाद हुआ करता और अन्त में अङ्गरेज़ों से युद्ध करके राज्य और प्राणों से हाथ धो बैठती।"

"तुम्हारी बात सुन कर मुझे हँसी आती है। तुम्हें तो अङ्गरेज़ों की मैत्री तक असह्य है और तुम्हारे प्राणेश्वर उनकी दासता के लिए तरसते रहते थे ! क्या स्वामी की परवशता भी कभी तुम्हें अखरती थी ? महाराज तो पोलिटिकल एजेण्ट मि० इलिस के भय से थरथर काँपते थे।"

"मैं तुमसे सत्य कहती हूँ, महाराज की पराधीनता मुझे समय-समय पर पागल बना देती थी। किन्तु इस विषय में मेरे कुछ कहते ही वह मुझ पर क्रोधित हो उठते थे। उनका विचार था कि स्त्रियों को राज्य-कार्य की छान-बीन करने से क्या मतलब ? उन्हे तो वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर सदा सौन्दर्य की देवी बने रहना चाहिए। यही मुख्य कर्त्तव्य है।"

"अब मैंने समझा, तुम्हारे प्राणेश्वर ने वस्त्र और आभू-

षणों से लदी हुई तुम्हारी रूप-सुधा का पान कर स्वर्गीय तृप्ति का अनुभव करने के लिए ही तुम्हें व्याहा था—राज्य-शासन के प्रबन्ध में सहायता लेने के लिए नहीं।"

"तुमने फिर हँसी-मज़ाक़ करना आरम्भ किया? रहने दो इस समय मनोरञ्जन और आमोद की बातें।"

"मैं तुमसे आमोद की बातें नहीं करती—तुम्हारी दुरवस्था पर गर्म आँसुओं की धार बहा रही हूँ।"

"मेरी कैसी दुरवस्था?"

"यह दुरवस्था नहीं तो क्या है? तुम ऐसे बुद्धिमान के पाले पड़ीं कि उन्हें तुम्हारी योग्यता, तुम्हारी विलक्षणता, तुम्हारी वीरता—किसी का भी पता नहीं लगा।"

"इसके लिए क्या किया जाय? स्वामी बुद्धिमान हो, गँवार हो, अच्छा हो, बुरा हो, जैसा भी हो, उसी को परम गुरु—आराध्य देव मान कर पूजा करनी चाहिए।"

यह कथन सुन कर गङ्गाबाई कुछ न बोलीं। चुपचाप अपनी स त के मुँह की ओर ताकने लगीं। उस समय वह मन ही मन सोच रही थीं—हमारे देश की प्राचीन सुशिक्षा और नवीन कुसंस्कार, दोनों एक दूसरे के गले लिपट कर मनुष्य की आत्मा का हनन कर देते हैं। किन्तु यदि स्त्रियों का ज्ञान ऐसे ही भ्रमात्मक विचारों से आच्छन्न नहीं होता तो क्या उनका जीवन भी मेरी ही भाँति असहनीय नहीं हो उठता?

लक्ष्मीबाई बोलीं—निस्तब्ध भाव से मेरे मुख की ओर क्या ताक रही हो ? मन ही मन क्या विचार कर रही हो ?

"और विचारने की बात ही कौन सी है ? तुम्हारी पति-भक्ति देख कर आश्चर्य कर रही हूँ।"

"क्या पतिभक्ति कोई पाप है ?"

"नहीं, पाप तो मै भी नहीं कहती।"

"तो तुम अभी क्या सोच रही थीं ? कहती क्यों नहीं !"

"मैं जो विचार कर रही थी, वह तुम्हे बताने से कोई लाभ नहीं। उसको तुम समझ नहीं सकतीं। विशेषतः जब तक तुम्हारे मन में ये संस्कार भरे पड़े है, तब तक तुम्हारी बुद्धि उनका मर्म समझने मे सदा असमर्थ ही रहेगी।"

लक्ष्मीबाई ने परिहास करते हुए कहा—वही तुम्हारी प्रेम की बातें ? वही प्रेम-विज्ञान अथवा प्रेम-दर्शन ! अच्छा, प्रेम की मधुर कहानी इस समय रहने दो। जब तक राज्य का उचित प्रबन्ध नहीं हो जायगा, तब तक प्रेम का अङ्कुर मेरे हृदय में नहीं उग सकता। राज्य की व्यवस्था हो जाने पर अवकाश के समय एक दिन निश्चिन्त होकर तुमसे प्रेम का काव्य सुनूँगी—खूब मन लगा कर सुनूँगी। देखूँगी इस वृद्धावस्था मे मैं भी तुम्हारी तरह प्रेमिका हो सकती हूँ या नहीं। किन्तु आज-कल तो युद्ध का आयोजन और राज्य की रक्षा के अतिरिक्त और कोई बात मेरे दिमाग़ में

आएगी ही नहीं। हाँ, युद्ध-कला सम्बन्धी कोई बात सुनाओ तो मैं अवश्य अपनी सारी चेतना और अचेतना को केन्द्रीभूत कर तुम्हारी वाणी सुनने में तल्लीन हो जाऊँगी।

लक्ष्मीबाई की बात समाप्त होते ही उनके पिता ने कमरे में प्रवेश किया और बोले—बेटी, सूबेदार शिवदयाल पाँडे और दूसरे कई एक प्रधान सैनिक तुमसे साक्षात् करने के लिए उपस्थित हैं। राज्य की रक्षा के लिए कहाँ पर कितनी सेना रक्खी जायगी, इसी सम्बन्ध में तुम्हारे आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

लक्ष्मीबाई उसी समय दीवानख़ाने में जाकर शिवदयाल पाँडे तथा अन्य लोगों को समझाने लगीं—"महाराज की मृत्यु के बाद जिस समय अङ्गरेज़ हमारा अस्त्र-शस्त्र छीन लेना चाहते थे, उस समय मैंने चुपके से पाँच पुरानी तोपें छिपाकर अन्तःपुर के पीछे वाले उद्यान में मिट्टी के नीचे रख दी थी।* तुम लोग इस समय कुछ आदमियों से उठवाकर उन तोपों को क़िले के बीच में रख दो। मै स्वयं तीसरे पहर क़िले मे जाकर बताऊँगी कि किस स्थान पर किस तोप को रखना होगा। अङ्गरेज़ों के झाँसी आने का मार्ग बन्द करने के लिए सिपाहियों का एक दल, जहाँ तक हो सके

* राजा गङ्गाधरराव की मृत्यु के बाद रानी का तोपें छिपा कर रखना एक ऐतिहासिक घटना है।

—लेखक

शीघ्र भेज दो। सिपाहियों को अच्छी तरह समझा देना कि कानपुर और आगरे के रास्ते जहाँ एक दूसरे से मिलते हैं, ठीक वहीं या उसके आसपास कहीं पड़ाव डाल दें। अङ्गरेज़ी सेना या तो आगरे से आएगी या कानपुर से। इसलिए आगरे और कानपुर के रास्तों के मिलान पर ही सेना रखने से दोनों ओर से उनका आक्रमण रोका जा सकता है। इस दल के पीछे सैनिको का एक और दल रखना होगा। मैं झाँसी राज्य की सीमा के भीतर अङ्गरेज़ों से युद्ध करना चाहती हूँ।

सूबेदार शिवदयाल पाँडे बोले—माता जी, मैंने भी ठीक ऐसा ही प्रबन्ध करने का विचार किया था। झाँसी से एक सीधा रास्ता कालपी को गया है। कालपी के पास ही एक स्थान पर एक रास्ता आगरा से और दूसरा कानपुर से आकर इस रास्ते से मिल गया है। इसलिए कालपी में सेना रखने से अङ्गरेज़ों का रास्ता आसानी से बन्द किया जा सकता है। विशेषतः कालपी में एक पहाड़ है। उसके ऊपर सेना रखने से अङ्गरेजों के आक्रमण से आत्मरक्षा करने में भी सुविधा होगी। एक दूसरी सेना कालपी के दक्षिण की ओर रखने का प्रबन्ध करूँगा।

उपरोक्त मन्तव्य निश्चित हो जाने पर शिवदयाल प्रभृति सेनानायक-गण चले गए। अब लक्ष्मीबाई झाँसी के भिन्न-भिन्न स्थानों के शासकों और न्यायाधिकारियों के नाम

आदेश भेजने का प्रबन्ध करने लगीं। गङ्गाबाई ने जिस प्रकार का परवाना भेजने की अनुमति दी थी, ठीक उसी आशय का परवाना लिखा गया। अङ्गरेज़ों की संस्थापित शासन-प्रणाली को अक्षुण्ण रखते हुए उन्हीं के नियुक्त किए हुए कर्मचारियों के पास शान्ति-रक्षा के लिए आदेश भेजा गया। परवाने में यह बात भी स्पष्ट-रूप से लिखी हुई थी कि स्वयं रानी ने शासन-भार ग्रहण किया है।

झाँसी के समीपस्थ एक तहसीलदार के पास इस परवाने के पहुँचते ही उसने नौगाँव के कप्तान स्कॉट को लिख भेजा कि झाँसी की रानी ने राज्य पर अधिकार कर लिया है और नगर के विद्रोहियों ने वहाँ के सब अङ्गरेज़ों को मार डाला, उनके स्त्री-बच्चों को भी नहीं छोड़ा है। नगर में अशान्ति छाई हुई है। कप्तान ने इस बात की सूचना गवरनर-जनरल के पास भेज दी।

उस समय तक दिल्ली, कानपुर, लखनऊ आदि सब जगह विद्रोह की अग्नि भड़क चुकी थी। अङ्गरेज़ों में झाँसी के उद्धार के लिए सेना भेजने की शक्ति नहीं रह गई थी। अतः सन् १८५७ ई० के जून से लेकर सन् ५८ के मार्च मास तक रानी लक्ष्मीबाई निर्विघ्न झाँसी का शासन करती रहीं। रानी ने राज्य की रक्षा के लिए किन उपायों का अवलम्बन किया था, उन्हें यहाँ पर उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। युद्ध का समय उपस्थित होने पर पाठक उसे स्वयं ही जान

जाएँगे। हम यहाँ रानी से विदा होकर अपनी ही आँखों से वर्तमान विद्रोह की सच्ची घटनाएँ देखने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रा करेंगे।





कानपुर



घटनाओं की गोद प्रसिद्धि की जन्मभूमि है। घटनाओं के ही प्रभाव से ऊसर-मरुस्थली विख्यात राजधानी के रूप में परिवर्त्तित हो जाती है। घटनाओं का ही संयोग साधारण व्यक्तियों को भी चिरस्मरणीय बना देता है। संसार में कितने पुरुष अपने सद्गुणों एवं उदात्त भावनाओं के लिए प्रसिद्ध हुए हैं? कितने नगरों और जनपदों ने अपने क्रोड़ में साधु-महात्माओं और ज्ञानियों का पालन करने के कारण ख्याति लाभ की है? सिपाही-विद्रोह के पहले जिस कानपुर का नाम भी कुछ इने-गिने व्यक्तियों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था, वही कानपुर विद्रोह के बाद प्रत्येक भारतवासी की जिह्वा पर रहने लगा—सारा संसार उससे परिचित हो गया।

मुसलमानी शासन के पूर्व गङ्गा नदी के दक्षिण किनारे पर एक छोटा सा ग्राम था। मथुरा-पति श्रीकृष्ण के नाम पर इस स्थान का भी नाम पड़ा था कन्हाईपुर; किन्तु मुस्लिम-काल की मुसलमानी संस्कृति के कारण इसका अपभ्रंश होकर कानपुर बन गया।

पश्चिमोत्तर प्रान्त तक अङ्गरेज़ी राज्य का विस्तार होने के पहले कानपुर अवध के नवाबों द्वारा शासित होता था। यहाँ सन् १७५५ ई० से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक नवाब की अनुमति से अङ्गरेज़ लोग अपनी एक छोटी सी सेना या आउट-कण्टिञ्जेण्ट रखते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चतुर गवर्नर-जनरल मारकीस ऑफ वेलज़ली ने कूटनीति के द्वारा अवध की नवाबी का एक विस्तृत भूभाग अपने अधिकार में कर लिया। उसी के अन्तर्गत कानपुर भी था। तब से कानपुर अङ्गरेज़ी राज्य का प्रदत्त-प्रदेश (Ceded Province) बन गया।

उस समय किसी ने कल्पना भी नहीं की थी, स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं किया था कि आधी शताब्दी के बाद ही नेपोलियन के स्पेन-विस्फोट (Napolean's Spanish Uleer) की भाँति कानपुर अङ्गरेज़ी साम्राज्य के लिए एक भयङ्कर विस्फोट का रूप धारण कर लेगा। राज्य का विस्तार करना कठिन नहीं। मराठों ने अल्प काल में ही सम्पूर्ण भारतवर्ष

को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। किन्तु राज्य की रक्षा ही करना बड़ा कठिन कार्य है। राज्य का विस्तार तो न्याय के मार्ग से पतित होकर—पशुबल और विश्वास-घात द्वारा भी किया जा सकता है, किन्तु इसकी रक्षा का उपाय न्याय और धर्म-मार्ग के अतिरिक्त और कोई नहीं। कानपुर को हस्तगत कर अङ्गरेज़ों ने वहाँ दीवानी और फ़ौजदारी की अदालतें स्थापित कीं। इन्हीं अदालतों के आस-पास की भूमि को कानपुर कहने लगे।

कानपुर के उत्तर-पूर्वीय भाग में अङ्गरेज़ लोगों का निवास है। नगर का यह अंश अपने गगनचुम्बी गिरजा-घरों, कण्टोनमेण्ट, नाट्यशाला, घुड़दौड़ के मैदान, परिष्कृत और प्रशस्त मार्ग और बहु-वेतनभोगी अङ्गरेज़ों के सुन्दर बँगलों की मनमोहनी छटा दिखा कर दर्शकों का चित्त लुभा लेता है। इस स्थान में प्रवेश करते ही ऐसा मालूम होता है मानो भारतवर्ष धन और रत्नों का भण्डार है। भारत में दुःख, दरिद्र, और रोग का नाम भी नहीं। भारतवासी सदा की भाँति सुखी और स्वच्छन्द जीवन बिता रहे हैं।

किन्तु पाठक, क्षण-भर के लिए नगर के दूसरे भाग का भी दर्शन कर लीजिए। अङ्गरेज़ों की विलास-भूमि छोड़ कर देशी लोगों की विपन्न झोपड़ी भी देख लीजिए। वहाँ क्या पाइएगा? मिट्टी की दीवारों से घिरे हुए सङ्कुचित पर्ण-

कुटीर। किसी पर छाजन नहीं है, तो किसी में दीवार की कमी है। रास्ते ऐसे तङ्ग हैं कि उन पर एक साथ दो आदमी नहीं चल सकते। एक ही छोटे और गन्दे कमरे के भीतर एक ओर दीन-हीन पति-पत्नी और बालक-बालिकाओं का सारा परिवार सोता है—दूसरी ओर गाय और बकरियों के रहने की जगह है। इनमें जो लोग सम्पन्न कहे जाते हैं उनके पास रहने के घर से सटा हुआ ही पशुओं के लिए एक अलग कमरा होता है। सभी घरों में दुर्गन्ध और मैल भरा हुआ है। वहाँ थोड़ी देर ठहरने में भी घृणा होती है। इन दोनों स्थानों की तुलना करने पर स्पष्ट विदित हो जाता है कि नगर के एक भाग में स्वर्ग है तो ठीक इसके पास ही दूसरे भाग में नरक स्थित है। एक ओर देवगण अपने पुण्य के फल से स्वर्ग का सुख भोग रहे हैं, दूसरी ओर घोर पापी नरक-यन्त्रणा का दण्ड सहन कर रहे हैं। किन्तु इस अनित्य और परिवर्तनशील संसार में न तो किसी के लिए स्वर्ग-सुख स्थायी होता है न किसी के लिए नरक की यातना ही अनन्त-काल तक रहती है। आज जो सिंहासन की शोभा बढ़ा रहा है, कल वह राह का भिखारी भी नहीं रहता।

सन् १८५७ ई० के जून मास में कानपुर के अङ्गरेज मेरठ में सिपाहियों के विद्रोह और दिल्ली पर उनके आक्रमण की बात सुन कर अपने प्राणों के मोह से भयभीत हो उठे।

उस समय कानपुर में कुल मिला कर तीन हज़ार सिपाही थे और अङ्गरेज़ों की संख्या, सैनिक और दीवानी-विभाग के कर्मचारियों का मिला कर प्रायः तीन-चार सौ थी। अङ्गरेज़ी सेना के प्रधानाध्यक्ष थे सेनापति सर ह्यू ह्वीलर। वह भारतीय सेना-विभाग में पचास वर्ष से भी अधिक समय तक काम कर चुके थे। उन्होंने शास्त्रानुसार एक भारतीय महिला का पाणिग्रहण किया था। वह भारतवासियों की प्रकृति से भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए गवर्नर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग उनकी विज्ञता, विवेचन-शक्ति एवं कार्य-पटुता में इतना विश्वास रखते थे कि उनके ऊपर सारा भार छोड़ कर वह स्वयं कानपुर की ओर से सर्वथा निश्चिन्त थे।

संसार के इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ और उसकी घटनाओं का प्रत्येक अंश इस बात की साक्षी देता है कि किसी अप्रकट और अखण्ड शक्ति के द्वारा संसार का शासन और नियमन होता है। किसी में भी इतना सामर्थ्य नहीं कि वह इस शक्ति का कार्यकलाप बन्द कर सके। मनुष्य की सारी विद्या और बुद्धि, बल और पराक्रम, नैपुण्य एवं कौशल—सब इसके सामने व्यर्थ हो जाते हैं। सेनापति ह्वीलर का बहुकाल-व्यापी अनुभव और कुशाग्र बुद्धि कानपुर का विद्रोह रोकने में समर्थ नहीं हो सकती। सिपाहियों में विद्रोह के लक्षण देखते ही वह सचेत होगए और कानपुर में रहने वाले सभी अङ्गरेज़ स्त्री-पुरुषों को एकत्र कर

सिपाहियों के पूर्व-निवासस्थल बैरको में ला रक्खा। बैरकों के चारों ओर खाई खोदकर उसे मिट्टी की दीवार से घेर दिया गया। बिठूर के नाना साहब ख़ज़ाने की रक्षा के लिए नियुक्त किए गए। नाना साहब अभी तक अङ्गरेज़ों के मित्र बने हुए थे। उनके प्रति अङ्गरेज़ों के मन में अभी तक तिलमात्र भी सन्देह नहीं हुआ था।

४ थी जून को सिपाहियो ने विद्रोह किया और सब से पहले ख़ज़ाने पर आक्रमण किया। नाना साहब के आदमियों ने उनके आक्रमण से ख़ज़ाने की रक्षा का कोई प्रयत्न नहीं किया। विद्रोही ख़ज़ाना लूट रहे थे और वे चुपचाप तमाशा देख रहे थे। ख़ज़ाना लूट कर सिपाही दिल्ली की ओर चले, किन्तु नाना साहब के प्रधान कर्मचारी और उनके दाहिने हाथ अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने विद्रोहियों से कानपुर लौटने का अनुरोध किया। उनके अनुरोध से विद्रोहियों ने कानपुर लौट कर अङ्गरेज़ों पर आक्रमण कर दिया। अङ्गरेज़ बैरकों के चारो ओर तैयार की हुई दीवार के पीछे खड़े होकर सिपाहियों के आक्रमण से अपनी रक्षा करने लगे। किन्तु तीन-चार सौ अङ्गरेज़ तीन हज़ार सिपाहियों के सामने कब तक ठहर सकते थे। सिपाहियों के आघात से रोज़ दस-पन्द्रह अङ्गरेज़ मरने लगे। उधर गर्मी की अधिकता के कारण उनकी मेमें अलग छटपटा रही थीं।

कानपुर के हत्याकाण्ड का विस्तृत विवरण इस उपन्यास

उस समय कानपुर में कुल मिला कर तीन हज़ार सिपाही थे और अङ्गरेज़ों की संख्या, सैनिक और दीवानी-विभाग के कर्मचारियों का मिला कर प्रायः तीन-चार सौ थी। अङ्गरेज़ी सेना के प्रधानाध्यक्ष थे सेनापति सर ह्यू ह्वीलर। व भारतीय सेना-विभाग मे पचास वर्ष से भी अधिक समय तक काम कर चुके थे। उन्होंने शास्त्रानुसार एक भारतीय महिला का पाणिग्रहण किया था। वह भारतवासियों की प्रकृति से भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए गवर्नर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग उनकी विज्ञता, विवेचन-शक्ति एवं कार्य-पटुता में इतना विश्वास रखते थे कि उनके ऊपर सारा भार छोड़ कर वह स्वयं कानपुर की ओर से सर्वथा निश्चिन्त थे।

संसार के इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ और उसकी घटनाओं का प्रत्येक अंश इस बात की साक्षी देता है कि किसी अप्रकट और अखण्ड शक्ति के द्वारा संसार का शासन और नियमन होता है। किसी में भी इतना सामर्थ्य नहीं कि वह इस शक्ति का कार्यकलाप बन्द कर सके। मनुष्य की सारी विद्या और बुद्धि, बल और पराक्रम, नैपुण्य एवं कौशल—सब इसके सामने व्यर्थ हो जाते हैं। सेनापति ह्वीलर का बहुकाल-व्यापी अनुभव और कुशाग्र बुद्धि कानपुर का विद्रोह रोकने में समर्थ नहीं हो सकती। सिपाहियो में विद्रोह के लक्षण देखते ही वह सचेत होगए और कानपुर में रहने वाले सभी अङ्गरेज़ स्त्री-पुरुषों को एकत्र कर

सिपाहियों के पूर्व-निवासस्थल बैरकों में ला रक्खा। बैरकों के चारों ओर खाई खोदकर उसे मिट्टी की दीवार से घेर दिया गया। बिठूर के नाना साहब खज़ाने की रक्षा के लिए नियुक्त किए गए। नाना साहब अभी तक अङ्गरेज़ों के मित्र बने हुए थे। उनके प्रति अङ्गरेज़ों के मन में अभी तक तिलमात्र भी सन्देह नहीं हुआ था।

४ थी जून को सिपाहियों ने विद्रोह किया और सब से पहले खज़ाने पर आक्रमण किया। नाना साहब के आदमियों ने उनके आक्रमण से खज़ाने की रक्षा का कोई प्रयत्न नहीं किया। विद्रोही खज़ाना लूट रहे थे और वे चुपचाप तमाशा देख रहे थे। खज़ाना लूट कर सिपाही दिल्ली की ओर चले, किन्तु नाना साहब के प्रधान कर्मचारी और उनके दाहिने हाथ अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने विद्रोहियों से कानपुर लौटने का अनुरोध किया। उनके अनुरोध से विद्रोहियों ने कानपुर लौट कर अङ्गरेज़ो पर आक्रमण कर दिया। अङ्गरेज़ बैरकों के चारों ओर तैयार की हुई दीवार के पीछे खड़े होकर सिपाहियो के आक्रमण से अपनी रक्षा करने लगे। किन्तु तीन-चार सौ अङ्गरेज़ तीन हज़ार सिपाहियों के सामने कब तक ठहर सकते थे। सिपाहियों के आघात से रोज़ दस-पन्द्रह अङ्गरेज़ मरने लगे। उधर गर्मी की अधिकता के कारण उनकी मेमें अलग छटपटा रही थीं।

कानपुर के हत्याकाण्ड का विस्तृत विवरण इस उपन्यास

में नहीं दिया जा सकता। पाठक चाहें तो किसी इतिहास के पन्ने उलट कर उसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु विद्रोह का इतिहास लिखने वाले अङ्गरेज़-लेखकों ने नाना प्रकार के मनगढ़न्त सिद्धान्तों का आविष्कार कर किस प्रकार अपने मस्तिक की उर्वरता और बुद्धि की प्रखरता का परिचय दिया है, इसे पढ़ने से हमारे सहृदय पाठकों का मनोरञ्जन अवश्य होगा। किसी-किसी लेखक ने सेनापति ह्वीलर को अदूरदर्शी सिद्ध करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि यदि सेनापति बैरकों के चारों ओर खाई न खुदवा कर कण्टोन्मेण्ट के ही भीतर मैगज़ीन के चारों ओर खाई खुदवाते तो आत्मरक्षा करने में अधिक सुविधा होती। ह्वीलर का पक्ष समर्थन करने वाले लेखक इसका यह उत्तर देते हैं कि बैरकों के चारों तरफ़ खाई खुदवाने के समय तक सिपाही विद्रोही नहीं हुए थे। वे कण्टोन्मेण्ट के भीतर रहते थे। उस समय यदि सेनापति कण्टोन्मेण्ट के भीतर मैगज़ीन के चारों ओर खाई खुदवाना आरम्भ करते तो सिपाहियों को अवश्य सन्देह हो जाता और वे उसी समय विद्रोह कर देते। इसी आशङ्का से ह्वीलर ने मैगज़ीन छोड़ कर बैरकों का आश्रय लिया था। जिन लेखकों की बुद्धि इनसे भी अधिक प्रखर थी, जो अपनी दिव्य-दृष्टि के बल से मनुष्य के आन्तरिक रहस्यों का भी पता लगा सकते थे, वे एक पग और भी आगे बढ़ कर कहते हैं कि कानपुर की घटना के सम्बन्ध में सेनापति ह्वीलर

की कोई अदूरदर्शिता नहीं प्रकट होती। उन्होंने लगभग ५७ वर्ष तक भारतवर्ष में काम किया था। हिन्दू-शास्त्रानुसार कालीघाट के कुलीन ब्राह्मण की कन्या का पाणिग्रहण किया था। भारतवर्ष का आचार-व्यवहार, रीति-नीति, शास्त्र-पुराण, कोई भी बात उनसे छिपी हुई न थी। वह भारतवासियों के दामाद थे, अतः उन्होंने अनुमान किया कि भारतवासी मेरी सन्तान से पिण्डदान की आशा रखते होंगे, वे मुझे तथा मेरे बच्चों को नहीं मारेंगे। उन्हें कानपुर में विद्रोह होने की कोई आशङ्का नहीं थी।

कानपुर की घटना के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अङ्गरेज़ लेखकों ने इसी प्रकार के भिन्न-भिन्न अनूठे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। भला ऐसे विचार स्थिर किए बिना वे इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध मे तॉतिया टोपी का नाम कैसे घसीट सकते थे? इतिहास के ये पण्डित इस विषय पर तुमुल वाग्युद्ध करते हैं कि सेनापति ह्वीलर के किन उपायों के अवलम्बन करने से आत्मरक्षा होती और किनके करने से न होती। कई लेखक तो लॉर्ड कैनिङ्ग तक की निन्दा करने में नहीं चूके। किन्तु मेरी स्थूल बुद्धि में यह बात आती है कि उस समय सेनापति ह्वीलर जिस उपाय का अवलम्बन करते, वही असफल होता। संसार की बहुत सी घटनाएँ अबाध ईश्वरीय नियमों की प्रेरणा से घटित होती हैं। उन्हें रोकना—

उनकी गति को पलट देना—तुच्छ मनुष्य-बुद्धि और प्रवीणता से परे की बात है।

छठीं जून से २३ वीं जून तक कानपुर के अङ्गरेजों को मिट्टी के प्राचीर से परिवेष्ठित बैरकों के भीतर असह्य यन्त्रणा भोग करनी पड़ी। सिपाहियों के गोलों की वर्षा दिनोंदिन उनकी संख्या कम कर रही थी। सेनापति ह्वीलर के पुत्र लेफ्टिनेण्ट गॉडफ्रे रिचर्ड ह्वीलर घायल होकर शय्या पर पड़े हुए थे। उनकी माता और बहिन आँखों में आँसू भर कर उनके शरीर पर मरहम-पट्टी बाँध रही थी। इतने में विद्रोहियो का एक गोला घर की दीवार छेदता हुआ उनके गले पर आ गिरा। उनका मस्तक शरीर से भिन्न हो गया। इसी प्रकार सिपाहियों के अस्त्राघात से दस-पन्द्रह अङ्गरेजों की मृत्यु होना नित्य की घटना हो गई। दो स्त्रियाँ गर्भवती थीं। उन्हें इसी समय सन्तान उत्पन्न हुई। किन्तु प्रसूतिकाओं की तृष्णा-निवारण के लिए आसानी से एक बूँद जल भी नहीं मिलता था। नए क़िले में केवल एक कुँआ था, जिस पर एक अङ्गरेज़ बैठ कर दिन भर पानी भरा करता था। एक दिन वह भी सिपाहियों के गोले से घायल होकर वहीं पृथ्वी-तल पर लेट गया। मरने के पहले वह अपने स्त्री-बच्चों के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कह सका था। केवल एक वाक्य उसके मुँह से निकला—अमुक स्त्री बहुत देर से थोड़ा जल माँग रही है, उसे जल दे देना।

अन्त में बचे हुए अङ्गरेज़ों की यन्त्रणा, उनका कष्ट, उनकी दिनोंदिन बढ़ती हुई विपत्ति देख कर सेनापति ह्वीलर से न रहा गया। उन्होंने नाना साहब की दया का भिखारी बन कर उनके पास यह सन्देश भेजा—"आप हम लोगों को स्त्री-बच्चों के सहित कानपुर छोड़ कर निर्विघ्न इलाहाबाद चले जाने की अनुमति दीजिए।

नाना साहब ने ह्वीलर साहब के साथ साक्षात् किया। उनमें परस्पर बहुत सी बातें हुईं। अन्त में नाना साहब बोले—हमारे आदमी आप लोगों को इलाहाबाद तक पहुँचा आवेंगे। आप लोगों की यदि इच्छा हो तो स्त्रियों और बच्चों को वहाँ रख कर फिर कानपुर आइएगा और हम लोगों से युद्ध कीजिएगा।*

नाना ने २६ वीं जून को अङ्गरेज़ों को बाल-बच्चों और स्त्रियों सहित इलाहाबाद जाने की अनुमति दे दी। सिपाहियों ने उन पर प्रहार करना बन्द कर दिया। अङ्गरेज़ नए क़िले से बाहर निकल कर वायु-सेवन करने लगे। नाना साहब ने अङ्गरेज़ों के जाने के लिए गङ्गा जी के घाट पर नावें प्रस्तुत कर रक्खी थीं। २७ तारीख़ को सवेरे अङ्गरेज़ लोग नाना साहब के भेजे हुए हाथियों और पालकियों पर चढ़ कर गङ्गा

---

* The evidence of Mrs. Greenway's Ayah is to the folowing effect —

Nena said take away all the women and children to Allahabad, if your men want to fight come back and do so.

जी के घाट पर पहुँचे। वे ज्योंही नावों पर सवार हुए, त्योंही उनकी हत्या आरम्भ हो गई। सिपाही उन पर दनादन गोलियाँ चलाने लगे। नावों में आग लगा दी गई। सैकड़ों अङ्गरेजों के प्राण सङ्कट में फँस गए। "घोर विश्वासघात, घोर विश्वास घात" कहकर अङ्गरेज़ चिल्लाने लगे। थोड़ी देर बाद नाना साहब के आदमियों ने आकर विद्रोहियों को मना किया। इस घटना से बहुत से अङ्गरेज़ तो मर गए। शेष बचे हुए पुरुष-स्त्री और बच्चे क़ैदी बना कर सबेदा कुटी में भेज दिए गए।

२७ वीं जून को पहले पहर में यह बबरता-पूर्ण हत्या-काण्ड हुआ और सायङ्काल सैकड़ों अङ्गरेज़ों के शव से गङ्गा जी का किनारा पटा हुआ दिखाई देने लगा। सूर्यास्त होने में अभी दो घड़ी समय बाक़ी था। इसी समय गैरिक वस्त्र-धारी एक युवा संन्यासी गङ्गा जी का किनारा पकड़े हुए बड़ी तीव्र गति से पश्चिम की ओर जा रहे थे। वहाँ पड़े हुए अङ्गरेज स्त्रियो और बालकों की मृत-देह देख कर उन्हें हार्दिक वेदना होने लगी। वह और आगे की ओर नहीं बढ़ सके। उनके दोनो नेत्रों से झरझर आँसुओं की बूँदें टपकने लगीं। उनके मुँह से अनायास निकल पड़ा—"हाय! पापी सिपाहियों ने निरपराध स्त्रियों और बच्चों तक की हत्या की!" इतना कहते ही शवों के बीच से उन्हें एक आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। वे सहसा यह नहीं जान सके कि वह

कारुणिक शब्द कहाँ से आकर उनके कानों में प्रवेश कर रहा है। उन्होंने अनुमान किया, सम्भव है इनमें कोई अभी तक जीता हो। वह एक-एक लाश की परीक्षा करने लगे। बीस-पच्चीस शवों की परीक्षा कर गए, पर उस आर्तरोदन का उद्गम-स्थान उन्हें न मिला। अन्त में उन्होंने देखा, एक रमणी के शरीर में अभी तक प्राणवायु का सञ्चार हो रहा था। उसका शरीर छूते ही वह कातर और अस्फुट स्वर में बोल उठी—"Put an end to this suffering—इस यन्त्रणा का अन्त करो।"

यह कह कर धराशायिनी रमणी ने एक बार 'हा' किया, उसकी जिह्वा एकबारगी सूख गई थी। युवक ने विचार किया कि शायद जल देने से इसके प्राण बच जायँ, किन्तु उनके पास कोई जल-पात्र न था। वह अविलम्ब नदी के किनारे जाकर अपने वस्त्र का अर्द्धांश भिगा लाए और रमणी के मुख में थोड़ा सा जल निचोड़ दिया। वेहोशी की हालत में जल पाकर वह स्त्री और भी अधिक छटपटाने लगी। दूसरी बार उसके मुख में जल छोड़ने पर उसे कुछ चेत हुआ, उसने आँखें खोलकर युवक को देखा और बोली—"Put an end to this suffering—By your sword—By your sword—इस यन्त्रणा का अन्त करो, अपनी तलवार से—अपनी तलवार से।"

युवक ने अङ्गरेजी में ही जवाब दिया—"I will not

kill you, I will try to save your life—
मैं तुम्हें मारूँगा नहीं, तुम्हारे प्राण बचाने की चेष्टा करूँगा।"

रमणी उत्तेजित होकर बोली—"No, no, kill me—kill me. Put an end to this suffering—नहीं, नहीं, मुझे मार डालो—मुझे मार डालो। इस यन्त्रणा का अन्त करो।"

"I am not a mutineer, I am not a sepoy—a friend—मैं विद्रोही नहीं हूँ, सिपाही नहीं हूँ, शुभचिन्तक हूँ।"

रमणी के प्राणवायु कण्ठागत हो रहे थे। दो-तीन मिनट के बाद ही उसकी सब यन्त्रणाओं का अन्त हो गया—वह इस लोक को छोड़कर परलोक को सिधार गई।

संन्यासी वेशधारी युवक नदी के पार से होकर ठीक उत्तर की ओर चले और सन्ध्या-समय एक विशाल शिवालय के पास पहुँचे।



तेरहवाँ परिच्छेद

शिव का मन्दिर



नपुर और बिठूर के बीच कानपुर से प्रायः दो कोस की दूरी पर बाजीराव पेशवा का बनवाया हुआ एक शिवालय था। सन् १८१८ ई० में अङ्गरेज़ों ने पेशवा को युद्ध में हराकर उनका सारा राज्य हस्तगत कर लिया था। जब पेशवा ने देखा कि राज्य के उद्धार की कोई आशा नहीं, तो सालाना आठ लाख रुपयों की वृत्ति लेकर अपना पैतृक राज्य अङ्गरेज़ों को सौंप दिया। अङ्गरेज़ों ने पेशवा को पुनः पूना लौटने की आज्ञा न दी, कानपुर से लगभग तीन कोस की दूरी पर बिठूर नामक स्थान में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया। पाठक-पाठिकाओं से यह बात छिपी न होगी कि उपरोक्त वृत्ति-भोगी पेशवा ने धुन्दपन्त नाना और बालाजी नाना नामक दो युवकों को गोद लिया था। बाजीराव पेशवा की मृत्यु के बाद भारतवर्ष

के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने नाना को उनकी पैतृक वृत्ति देने से इन्कार किया। इस हुक्म के विरुद्ध अपील करने के लिए नाना ने अपने आम मुख्तार अज़ीमुल्ला को विलायत भेजा। किन्तु इस अपील का कुछ परिणाम न निकला। कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने लॉर्ड डलहौज़ी का हुक्म ही बहाल रक्खा और नाना साहब को उनकी वृत्ति से वञ्चित कर दिया। इससे नाना साहब अङ्गरेज़ों पर बहुत क्रुद्ध हुए और उसी समय से उनके हृदय में अङ्गरेज़ों के प्रति विद्वेष का भाव उत्पन्न हो गया।

कानपुर और बिठूर के मध्यस्थित उपर्युक्त शिवालय विगत तीन वर्षों से नाना साहब और उनके परामर्श-दाताओं का मन्त्रणागार बन गया था।

संन्यासी वेशधारी युवक ने मन्दिर का द्वार खटखटाया। भीतर के आँगन से आकर एक वृद्धा स्त्री ने दरवाज़ा खोल दिया। यह स्त्री प्रतिदिन प्रातः और तीसरे पहर आकर मन्दिर साफ़ कर जाया करती थी।

युवक ने वृद्धा से पूछा—बूढ़े महन्त मन्दिर में हैं न?

वृद्धा बोली—नहीं, वह तो आज प्रातःकाल ही कानपुर चले गए। सन्ध्या-समय तक लौट आने की बात है।

बूढ़े महन्त की प्रतीक्षा में युवक को बैठे हुए अभी केवल दस-बारह मिनट ही हुए थे कि इतने में सम्भ्रान्त पुरुषों की भाँति वस्त्र पहने हुए एक अस्सी बरस के वृद्ध ने मन्दिर

ं प्रवेश किया। उन्हें देखकर कोई यह नहीं समझ सकता था कि वे मन्दिर के महन्त होंगे। युवक ने वृद्ध को देखते ही उनके चरणों में गिर कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वृद्ध आश्चर्य-चकित रह गए, युवक की ओर उनकी टकटकी बँध गई। उनके दोनों नेत्रों से टपटप आँसुओं की बूँदें झरने लगीं। कुछ काल तक दोनों मौन रहे। शायद वृद्ध बहुत दूर से पैदल ही आ रहे थे। इस कारण वह कुछ क्लान्त दिखाई पड़ते थे। वह युवक को साथ लेकर भीतर चले गए। दोनो आद-मियों के बैठ जाने पर वृद्ध ने युवक से पूछा—तुम क्या इस समय झाँसी से आ रहे हो? इतने दिन तक झाँसी में ही थे?

युवक ने उत्तर दिया—झाँसी छोड़े लगभग तीन वर्ष हुए, इस बीच मे झाँसी नहीं जा सका हूँ।

"तीन वर्षों तक कहाँ थे?"

"इन तीन वर्षों से पञ्जाब, राजपूताना और पश्चिमो-त्तर प्रान्त में केवल आपके अनुसन्धान मे भागता रहा हूँ।"

"तुमने यह कैसे जाना कि मैं यहाँ पर हूँ?"

"बहुत खोज और परिश्रम के बाद जान सका हूँ।"

"मेरे लिए इतना कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता थी?"

"मैं आपकी कन्या से इस बात की प्रतिज्ञा कर आया हूँ कि आपको एक बार झाँसी अवश्य ले जाऊँगा। आपके वियोग में उसके दिन बीतने कठिन होगए हैं।"

युवक की बात सुनते ही वृद्ध का मुख-मण्डल विषाद से भर गया। उनकी आँखों से आँसुओं की धार बह निकली। दोनों आदमी कुछ देर तक स्तब्ध रहे।

फिर युवक वृद्ध के चरणों में गिर कर कहने लगा—पिता, सन्तान के इस अनुरोध की रक्षा कीजिए। मेरे साथ एक बार झाँसी अवश्य चलिए। थोड़ी देर के लिए अपना हठ छोड़ दीजिए।

वृद्ध ने कुछ देर तक विचार कर उत्तर दिया—अच्छा, जाऊँगा, तुम्हारी बात स्वीकार करता हूँ। किन्तु आजकल नहीं, वर्तमान विद्रोह का अन्तिम फल देख कर इस स्थान को छोड़ना होगा।

यह उत्तर सुन कर युवक एकदम निराश होगया। उसने अधीरता-पूर्वक पूछा—महाशय, मैं सब जानता हूँ, किन्तु संसार का दुख-शोक क्या मनुष्य को इतना विक्षिप्त बना देता है? ज्ञान, धर्म, वैराग्य, शास्त्राध्ययन, विपत्ति के समय इनमें से कोई भी काम नहीं आता? सब व्यर्थ हो जाते हैं? प्रातःकाल का लोमहर्षण काण्ड तो आपने सुना ही होगा।

"यही सुन कर तो मैं नाना से मिलने के लिए कानपुर गया था, किन्तु मेरे वहाँ पहुँचने के पहले ही अजीमुल्ला के प्रोत्साहन से उन्मत्त सिपाहियों ने यह गर्हित कार्य करना आरम्भ कर दिया था। मेरे समझाने पर नाना ने उन्हें इस अमानुषिक वर्बरता से रोका।"

"अब आपही सोचकर देखिए, इस नारी-हत्या और शिशु-हत्या के पाप के लिए आप ईश्वर के निकट उत्तर-दायी हैं या नहीं ?"

"मैं उत्तरदायी ? क्या मैंने स्त्री-हत्या की है ? या मैंने किसी को इस हृदयहीन क्रूरता के लिए उत्साहित किया है ? मैं तो जहाँ तक मुझसे बन सका, लोगों को इस पाप से निर्लिप्त रखने की ही चेष्टा करता था।"

"क्या आप अपराधी नहीं हैं ? नाना और अज़ीमुल्ला को विद्रोही होने का परामर्श किसने दिया है ? अज़ीमुल्ला के ही एक आदमी की ज़बानी मुझे सब बातों का पता लग गया है !"

"तुम छोकरों की तरह क्या बातें कर रहे हो ? क्या इतना व्यापक और इतना भयङ्कर विद्रोह किसी व्यक्ति-विशेष के षड्यन्त्र अथवा किसी प्रतिहिंसक की प्रेरणा से हो रहा है ? असन्तोष की यह ज्वाला आप से आप फूट पड़ी है। पाप, अत्याचार, अन्याय और अधर्म से जभी समाज की छाती फटने लगती है, तभी उसमें भीषण क्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। विश्व में इसे रोकने वाली कोई शक्ति नहीं। अङ्गरेज़ों की वर्त्तमान दयनीय दुरवस्था उन्हीं के पापों और कुकर्मों का अवश्यम्भावी फल है। मैंने किसी को विद्रोह करने का परामर्श नहीं दिया।"

"देव, मुझे भली-भाँति विदित है कि तर्क द्वारा कोई

आपको पराजित नहीं कर सकता। इसलिए मैं पहले ही यह मान लेता हूँ कि यह भीषण हत्या-काण्ड अङ्गरेजों के ही पापों और दुराचारों का अनिवार्य प्रायश्चित्त है। किन्तु क्या सिपाहियों की चरित्र-हीनता और निन्दनीय अमानुषिकता को देखते हुए अब इस युद्धाग्नि को शान्त करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ? क्या अब भी इस दुर्नीति को आगे बढ़ाने की इच्छा है ?"

"हाँ, यदि न्याय, सत्य और कर्त्तव्य का अनुरोध ऐसा ही हुआ तो इसे आगे बढ़ाने में मैं कोई आगा-पीछा नहीं सोचूँगा। इस विद्रोह को पाप और उच्छृङ्खलता से भी रहित बनाने की शक्ति-भर चेष्टा करूँगा।"

वृद्ध की बात सुन कर युवक स्तम्भित रह गया। आगे कुछ कहने का उसमें सामर्थ्य न रहा।

वृद्ध पूछने लगे—निस्तब्ध क्यों बैठे हो ? क्या सोच रहे हो ? क्या मैंने कोई अक्षम्य अपराध किया है ?

युवक ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया—क्या इससे भी कोई अपराध अधिक अक्षम्य हो सकता है ? आपने सारे देश में पागल कुत्ते छोड़ रक्खे हैं। ये कुत्ते निर्दोष प्राणियों की हत्या कर रहे हैं। इससे बढ़ कर गुरुतर अपराध और क्या हो सकता है ?

"तुमसे किसने कहा कि ये कुत्ते मेरे ही छोड़े हुए हैं ? सारी अशान्ति की जड़ मैं ही हूँ ? तुम 'शान्ति' 'शान्ति'

कह कर चिल्ला रहे हो, बताओ तो देश में कहीं थोड़ी भी शान्ति मौजूद है? अथवा पहले कभी थी? इस देश में शान्ति ही होती तो तुम्हें घर-बार छोड़ कर क्यों जङ्गल और रास्तों की धूल छाननी पड़ती?"

"मैंने जिस शान्ति के लिए घर छोड़ा है, वह शान्ति क्या इस प्रकार की नर-हत्या द्वारा प्राप्त हो सकती है? साधारण जनता में ज्ञान का विस्तार हुए बिना, हमारी वर्त्तमान कुरीतियों और कुसंस्कारों का मूलोच्छेद होने के पहले यह अशान्ति की शिखा कभी बुझ नहीं सकती।"

वृद्ध की तेजस्विनी वाणी ने युवक के उत्तेजित कण्ठ-स्वर का उपहास करते हुए कहा—संग्राम-कुण्ड में प्रदीप्त आहुतियो की सुगन्धि द्वारा हमारे देश का नैतिक वातावरण शुद्ध हुए बिना, असंख्य नर-नारियों के उष्ण रक्त से वसुन्धरा के सिञ्चित और प्लावित हुए बिना, हमारे देश के जन-साधारण की अन्तरात्मा में सांघातिक सङ्घर्ष से पुनरुज्जीवन का सञ्चार हुए बिना इस देश में ज्ञान का बीज अङ्कुरित होना कभी सम्भव नहीं। महाराष्ट्र वीरों के पवित्र शोणित से हमारे देश की मिट्टी के सन जाने पर ही उसमे वङ्गाली देश-भक्तो को ज्ञान का बीज बोने में सफलता मिल सकती है। उसी समय वह बीज अङ्कुरित और पल्लवित हो सकेगा।

युवक ने कहा—महाशय, आपको धोखा हो गया है।

"धोखा मुझे हुआ है या तुझे ?"

"नहीं, धोखा आपको ही हुआ है। क्या आप यह समझते हैं कि युद्ध में अङ्गरेजों को पराजित कर उन्हें देश से बाहर निकाल देने से ही हमारे देश का कल्याण हो जायगा ? देशी नरेशों का आचरण आपसे छिपा हुआ नहीं है। वे न्याय और धर्म के ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं। उधर देश की साधारण जनता घोर अन्धकार में पड़ी हुई है। देश में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत ज्ञान की चर्चा हो रही है, वह अङ्गरेज़ों के ही प्रयत्न का फल है।"

"तुमसे कहता कौन है कि मैं अङ्गरेज़ों को देश से बाहर निकाल देना चाहता हूँ ? क्या अङ्गरेज़ों को बाहर निकाल देना कोई हँसी-खेल है ? इस भावना को मस्तिष्क से बाहर निकाल देना कि अङ्गरेज़ अपने बाहुबल के प्रताप से इस देश का शासन कर रहे हैं। उन्हें यहाँ बाँध कर रखने वाले तो हैं हमारे पाप और कुसंस्कार। जब तक हम अपना पाप और तामस धोकर न बहा देंगे तब तक हमारी मुक्ति नहीं हो सकती।"

"यह तो मैं भी स्वीकार करता हूँ कि अङ्गरेज़ी साम्राज्य हमारी नैतिक दुर्बलता और चारित्रिक हीनता की भित्ति पर ही अवलम्बित है। धार्मिक सङ्कीर्णता का क़िला मटियामेट किए बिना अङ्गरेज़ों के पञ्जों से हमारा छुटकारा नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में आप ही बताइए कि

अङ्गरेजों से युद्ध करना लाभदायक है या अज्ञान और अनीति को दूर करने के लिए आत्म-शुद्धि की चेष्टा करना ?"

"हाँ, मत-मतान्तरों का नाश कर ज्ञान-वृद्धि की चेष्टा सबसे पहले करनी होगी, किन्तु मिट्टी तैयार हुए बिना ज्ञान का बीज बोया कहाँ जायगा ? तुम्हारे बङ्गाल में तो ज्ञान की चर्चा खूब हो रही है, किन्तु तुम्हीं कहा करते हो कि ज्ञान-चर्चा से तुम्हारे देश का कुछ उपकार नहीं हो रहा है। हो रहा है केवल गवर्नमेण्ट की नौकरी पाने की इच्छा और आशा का पोषण और इसी मृगतृष्णा में हमारे देश के लोग थोड़ी सी अङ्गरेजी पढ़ कर अपने चरित्र का दिवाला निकाल बैठते हैं। साहस और नैतिक बल उनमें नाम-मात्र को भी नहीं बच जाता। उदर-पूर्त्ति की वासना के अतिरिक्त उनकी चिन्ता का और कोई विषय नहीं। वे पशुओं से भी बदतर बन जाते हैं।"

वृद्ध की बात सुन कर युवक अवाक् रह गया। उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया। वृद्ध फिर कहने लगे—"आज दोपहर को गङ्गा जी के घाट पर अङ्गरेज-रमणियों की मृत-देह देख कर मेरे मन में कैसा क्षोभ उत्पन्न हुआ, यह मैं नहीं कह सकता। मेरी सारी आत्मा क्रोध से आतुर हो उठी थी। उसी समय मुझे महाभारतोल्लिखित भीष्म की एक उक्ति याद आ गई। मुझे स्मरण है, मैंने वह उक्ति तुम्हे भी कई बार सुनाई थी। शायद तुम्हे याद होगी।

वस्तुतः संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने ही कर्मों का फल भोगता है। कोई किसी का अनिष्ट नहीं कर सकता। अङ्गरेज़ों के पाप और दुष्कृत्य के कारण ही आज उनकी यह दुर्दशा हो रही है। हमारे देश से अज्ञान, अन्धविश्वास, कुसंस्कार, मत-मतान्तर और अशिक्षा को दूर करने के लिए ही भगवान् ने भारतवर्ष की पवित्र भूमि में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली थी। किन्तु विगत एक सौ वर्षों में अङ्गरेज़ों ने इस ईश्वरीय इच्छा की पूर्ति के लिए क्या प्रयत्न किया है? प्रयत्न करना तो दूर रहा, इन पापियों ने हमारी दासता की बेड़ी और भी अधिक ज़ोर से हमारे पैरों में बाँध देने की चेष्टा की है। हमारे पाप, अज्ञान और दुराचार की प्रवृत्ति को उनसे प्रोत्साहन और प्रश्रय मिला है।"

वृद्ध के इतना कहते ही युवक अशान्त हो उठा। उसने बीच में ही उनकी बात काट कर कहा—कभी नहीं, कभी नहीं—अङ्गरेज़ सुशिक्षा के विरोधी कभी नहीं हैं।

"क्या कहते हो? अङ्गरेज़ ज्ञान-विस्तार के विरोधी नहीं हैं? बेटा, अङ्गरेज़ों की ही नौकरी और उन्हीं के सम्पर्क में मेरी अवस्था अठारह से बयासी वर्ष की होगई। क्या इस दीर्घ-काल में भी मैं यह नहीं जान सका कि अङ्गरेज़ ज्ञान-विस्तार के पक्षपाती हैं या विरोधी?"

"संसार को सभ्यता का पाठ पढ़ाने वाली और पतित

जातियों के उत्थान का सन्देश सुनाने वाली अङ्गरेज़ जाति भी शिक्षा की विरोधिनी है, यह पहली बार आपके ही मुँह से सुन रहा हूँ—इसके पहले तो कभी सुना नहीं।"

"पहले कभी सुना भी नहीं? सुनोगे कैसे? तुम बङ्गालियों को तो देश की दशा का इतना अधिक ज्ञान होता है कि और कुछ जानने की तुम्हें आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती! तुम लोगों में कोरी वक्तृता देने की शक्ति है। यह वक्तृत्व-शक्ति ही तुम्हारा उद्धार करेगी। बङ्गाली लोग जिस विषय पर कभी विचार भी नहीं करते, जिस विषय से उन्हें परिचय तक नहीं, उस पर भी वे अनायास एक पहर तक वक्तृता झाड़ सकते हैं। विपय का अभाव होने पर भी उनके पास वाक्यों की कमी नहीं। विचार-बुद्धि की अनुपस्थिति में भी उनका अद्भुत शब्द-भण्डार उनकी सहायता कर सकता है। बङ्गालियों का मुख अक्षय कोप, वीरता की खान, रेलगाड़ी, रावण की चिता और द्रौपदी की रन्धनशाला है! उसमें कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं होता!"

युवक हतबुद्धि की नाईं चुपचाप वृद्ध की बात सुन रहा था। वृद्ध फिर कहने लगे—तुमने कभी अङ्गरेजों की राजनीति पर भी विचार किया है?

"महाशय! आप वयोवृद्ध और अनुभवशील पुरुप हैं। आपके साथ मुझे विवाद करना उचित नहीं। किन्तु भारत

में अङ्गरेज़ी राज्य की स्थापना होने के समय से लेकर आज तक इस सभ्य और नीतिपरायण जाति ने क्या कभी शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में बाधा पहुँचाई है ?"

"क्या बाधा नहीं पहुँचाई ? कैसे आश्चर्य की बात है। अभी भारत में अङ्गरेज़ी राज्य की नींव दृढ़ भी नहीं होने पाई थी—मेरा अनुमान है, शायद लॉर्ड कॉर्नवालिस का शासन-काल रहा होगा—अङ्गरेज़ जाति के एक भूषण, इङ्गलैण्ड के एक महात्मा बिल्वर फ़ोर्स ने भारतवासियों की शिक्षा का एक आयोजन इङ्गलैण्ड की पार्लिमेण्ट के सामने रक्खा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने एक स्वर से उसका विरोध किया। उस आयोजना का प्रतिवाद करने में उन्होंने कुछ भी उठा नहीं रक्खा। क्या तुम्हें इसका भी पता नहीं ?"

"डाइरेक्टरों ने किस आधार पर उस योजना का विरोध किया था ?"

"कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स के प्रायः सभी मेम्बरों ने एक साथ कहा था कि—'भारतवर्ष में शिक्षा के प्रचार और ज्ञान के विस्तार के लिए हम किसी उपाय का अवलम्बन करने को तैयार नहीं हैं। हम भारतवर्ष में पादरियों को ईसाई-धर्म के प्रचार की आज्ञा नहीं देंगे, भारतवासियों को अन्धकार में रख कर ही हम लोग उनके ऊपर अपना राज्य चिरस्थायी बनाने की चेष्टा करेंगे। स्कूल और कॉलेजों की स्थापना

तथा ईसाई-धर्म के प्रचार ने ही अमेरिका को स्वतन्त्र बनाया था। भारतवर्ष के सम्बन्ध में भी हम उसी भ्रमपूर्ण और विवेकहीन नीति से काम लेकर दूसरी भूल नहीं करना चाहते। उनमें से एक ने तो यहाँ तक कह डाला था कि भारत में यदि लुटेरों का एक दल भेजा जाय तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु ईसाई-धर्म के प्रचारकों को हम भारतवर्ष की सीमा के भीतर कभी पैर न रखने देंगे।"

युवक ने विस्मय से पूछा—महाशय, आज तो आपके मुँह से आश्चर्यजनक बातें सुन रहा हूँ। क्या यह भी कभी सम्भव है? सुसभ्य अङ्गरेज-जाति भारतवासियों को चिर-काल तक अशिक्षित और मूर्ख रख कर अपने राज्य को स्थायी बनाना चाहती है? क्या ईसाई-धर्म का प्रचार भी उन्हें इष्ट नहीं? हो सकता है कि ईसाई-धर्म के प्रचार से भारतवासी असन्तुष्ट होकर विद्रोह कर देंगे, इसी आशङ्का से उन्होंने धर्म का प्रचार करना उचित नहीं समझा होगा।

"बेटा, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि बङ्गाली लोग जिस विषय से अनभिज्ञ होते हैं, उस विषय पर भी व्याख्यान देने में सङ्कोच नहीं करते। कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स ने अपना मन्तव्य निर्धारित कर लिया था कि हम लोग भारत-वर्ष में शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करेंगे। उन्होंने सन् १८३५ ई० तक बराबर दृढ़तापूर्वक इस नीति का अवलम्बन किया

है। सन् १७६५ ई० में अङ्गरेज़ों ने बङ्गाल की दीवानी प्राप्त की थी। उस समय से लेकर सन् १८३८ ई० तक जान-बूझ कर यदि इस घातक और कुटिल नीति का अनुसरण न किया गया होता तो आज भारतवर्ष की दशा कुछ और ही होती। आज हम इतने विपन्न और मूढ़ न होते। कुसंस्कार और अज्ञान का भूत हमारे माथे से बहुत पहले ही उतर गया होता। शायद वर्तमान विद्रोह को भी फूट पड़ने का अवसर न मिलता।"

"तो क्या १८३५ ई० के बाद अङ्गरेज़ों ने इस कुटिल नीति का परित्याग कर दिया है?"

"पूर्णतः तो इसका परित्याग नहीं किया, किन्तु प्रकाश्य रूप से अब इसका समर्थन नहीं करते। सन् १८३५ ई० तक वे मनसा, वाचा और कर्मणा इस नीति की घोषणा और आचरण करते थे, किन्तु इसके बाद सिरिश्ते से इस रीति-सम्बन्धी सब काग़ज़-पत्र हटा दिए गए। अब बातें बनाने के समय वे यह कहते हैं कि भारतवासियों को समुन्नत और समृद्धिशाली बनाना ही हमारे शासन का एकमात्र ध्येय है, परन्तु काम के समय वे साफ़ टाल जाते हैं। हम लोगों की हीनता, दुर्बलता और पारस्परिक फूट तथा कलह के ऊपर ही वे अपने राज्य की दृढ़ता की भित्ति रखना चाहते हैं।"

"उफ़! कैसी भयानक अवस्था है! क्या वही अङ्गरेज़

जो अपने को अभिमान के साथ ईसाई-धर्म का अनुयायी बताते हैं; क्या वही अङ्गरेज़, जो यह मानते है कि ईसाई-धर्म का आलोक-ज्ञान प्राप्त किए बिना मनुष्य अनन्त-काल तक नरक की यन्त्रणा भोग करता है, अपने राज्य को स्थायी बनाने के लिए ज्ञान के विस्तार और धर्म के प्रचार में भी बाधक होने में नही सकुचाते ? क्या हम लोगो को अनन्त-काल के लिए नरक की अग्नि में झोक कर भी वे राज्य-भोग का सुख लूटना चाहते है ?"

"बेटा, यदि राज्य को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें भारतवासियों के हाथ-पैर तक काटना पड़े, तो वे इस जघन्य पाप से विमुख नहीं होगे। अनन्त नरक तो बाइबिल की बात है। वे क्या इस देश मे बाइबिल लेकर आए थे ?"

"यदि अङ्गरेजो ने सचमुच इस कुटिल नीति के द्वारा अपने राज्य की रक्षा करने का प्रयत्न किया होगा तो भारत-वासी उनकी वर्तमान विपत्ति मे कभी उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित नहीं कर सकते। कैसी भयानक मनोवृत्ति है ! क्या मुट्ठी भर अङ्गरेजों का प्रभुत्व क़ायम रखने के लिए इन्होने बीस करोड़ भारतवासियो को अन्ध-कूप में ढकेल रखने की चेष्टा की होगी ? क्या इस विशाल जन-समुदाय की उन्नति का द्वार सदा के लिए बन्द कर देने का प्रयत्न किया होगा ?"

"यदि किया होगा, क्यों कहते हो ? क्या मेरी वार्ता की

सत्यता मे तुम्हे कुछ सन्देह है ? यह तुम बङ्गालियों का गप्प नही, इतिहास की सत्य घटना है।"

"देव, आपके कथन में मुझे तिल-मात्र भी सन्देह नही। आपकी बातें तो स्पष्ट आँखों के सामने घूम रही हैं। भारतवासियों को सैनिक-विभाग के उच्च पदों से वञ्चित कर इन्होने हमारे अभ्युदय का मार्ग सदा के लिए बन्द कर दिया है। किन्तु अपने राजत्व को स्थायी बनाने के उद्देश्य से अङ्गरेज़ों ने ईसाई-मत के प्रचार और स्कूल तथा कॉलेजों की स्थापना का भी विरोध किया है, यह पहले-पहल आपके ही मुँह से सुना है, इसके पहले कभी नहीं सुना था।"

"मैं नहीं समझता, तुमने यह बात पहले क्यों नहीं सुनी। इसे तो आजकल प्रत्येक व्यक्ति जान गया है।"

"कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की वह नीति किस प्रस्ताव के द्वारा स्थागित की गई थी ?"

"किसी प्रस्ताव के द्वारा उस नीति का अन्त नहीं हुआ। सन् १८३५ ई० के कुछ पूर्व भारतवर्ष का शासन-सूत्र कई सदाशय और दयालु अङ्गरेज़ों के हाथ में आया। उस समय लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क भारत के गवर्नर-जनरल थे और लॉर्ड मेटकाफ तथा लॉर्ड मैकॉले उनके परामर्शदाता थे। इन्हीं महानुभावों के प्रयत्न से भारतवर्ष में अङ्गरेजी शिक्षा की प्रणाली स्थापित हुई थी। लॉर्ड मेटकाफ अत्यन्त सहृदय और उदार पुरुष थे। उन्हीं के परामर्श से सती-प्रथा

रोकने का क़ानून बनाया गया था। वे कहा करते थे कि यदि भारतवासियों को चिरकाल तक अन्धकार के परदे में रखने से ही ब्रिटिश राजत्व की रक्षा हो सकती है, तो भारत के विनाश का कारण इङ्गलैण्ड ही समझा जायगा। इस कलङ्क की अपेक्षा तो ब्रिटिश राज्य का नष्ट हो जाना ही अच्छा है।"

"ये तो बड़े महात्मा पुरुष थे।"

"बेटा, ऐसे ही कुछ उदारचेता और दयालु महात्माओं के पुण्य से मिस्टर जॉन इण्डिगो के वंशधर इस समय भी भारतवर्ष में राज्य कर रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो मिस्टर जॉन इण्डिगो, फ़ान्सिसटोबे और सर हेनरी साल्ट को बोरिया-बिस्तर बाँध कर आज ही विलायत की राह पकड़ लेनी होती। इन महापुरुषों की उदार नीति के अवलम्बन से ही भारत में अङ्गरेज़ी राज्य स्थायी हो सकता है। इस विद्रोह से अङ्गरेज लोग अच्छी तरह समझ जायँगे कि भारतवासियों को शिक्षित किए बिना उनके सामने अङ्गरेज़ी राज्य की उपकारिता सिद्ध करना कितना कठिन है। तुम्हारे बङ्गदेश में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा शिक्षा का प्रचार अधिक हो रहा है। इसी कारण अजीमुल्ला के गुप्तचरों के हजार प्रयत्न करने पर भी वहाँ एक आदमी भी विद्रोही नहीं बनाया जा सका। उस दिन नाना साहब के सामने विद्रोही लोग मयूर तिवारी नामक एक सूबेदार को पकड़ लाए थे। मयूर ने विद्रोहियों का साथ

नहीं दिया था। उसने कप्तान डनकन साहब की मेम को तीन दिनों तक अपने घर मे छिपा रखने के बाद चुपके से इलाहाबाद भेज दिया था। इसीसे विद्रोही लोग उसे प्राणदण्ड देना चाहते थे और नाना साहब के पास पकड़ कर लाए थे। मैने सुना कि मयूर तिवारी अङ्गरेजी बोलना और पढ़ना जानता है। उसे पढ़ने-लिखने का अच्छा अभ्यास है। शिक्षित होने के कारण ही उसने विद्रोही बनने से इन्कार कर दिया। इस पर अज़ीमुल्ला ने उसे प्राणदण्ड देने का आदेश दे दिया। मैं उस समय घटना-स्थल पर मौजूद था। मेरे ही अनुरोध से नाना साहब और अज़ीमुल्ला ने उसके प्राणदण्ड की आज्ञा रद्द कर इस समय उसे क़ैद मे रक्खा । जिन लोगो के हृदय से कुसंस्कार और अज्ञान दूर हो गया है, वे कभी विद्रोह नहीं करेंगे। हमारे देश का अन्धविश्वास, रूढ़ि-पूजा और मत-मतान्तर ही इस विद्रोह के मूल कारण हैं। अङ्गरेजों ने हमारी उन बुराइयो को दूर करने की कुछ भी चेष्टा नहीं की। चेष्टा करना तो दूर रहा, अपनी वाणी और कर्म से उन्होने हमारे मार्ग मे रोड़ा भी अटकाया है। अपनी मृत्यु का बीज इन लोगों ने अपने ही हाथों बोया है।"

"महाशय! मैं एक बात पूछना चाहता हूँ। मेरी धृष्टता क्षमा कीजिएगा। आप स्वयं कहते हैं कि अज्ञान, कुसंस्कार और मत-मतान्तर ही इस विद्रोह के एकमात्र कारण हैं,

देश के अशिक्षित तथा मूर्ख लोग ही विद्रोही हो रहे हैं। फेर आपके जैसे ज्ञानी और महात्मा का इस विद्रोह के साथ संलग्न होना क्या किसी भी अवस्था में उचित कहा जा सकता है ?"

"मेरा विद्रोहियों के साथ क्या सम्बन्ध है ? मैं तो इन्हें पहचानता भी नहीं। नाना साहब और ताँतिया टोपी से पहले से ही मेरा परिचय था, इसीसे अज़ीमुल्ला से भी परिचय हो गया। तुम मेरे ऊपर विद्रोहियों को उत्साहित करने का दोष बार-बार क्यों लगाते हो—मेरी तो समझ में नहीं आता अज़ीमुल्ला के आदमियों ने मेरे सम्बन्ध में तुमसे कोई मिथ्या बात तो नहीं कही है ?"

"क्या आपने नाना साहब की जन्म-पत्री देख कर उन्हें यह विश्वास नहीं दिलाया है कि तुम बहुत शीघ्र अपने पिता का राज्य प्राप्त कर लोगे ? क्या आपने नाना साहब को अनेक प्रलोभन-वाक्यों द्वारा अङ्गरेज़ों के विरुद्ध संग्राम करने के लिए उत्साहित नहीं किया है ?"

"बेटा, तुम मेरे साथ दो वर्ष तक रह चुके हो। मेरा स्वभाव, मेरी प्रकृति, तुमसे कुछ भी छिपी हुई नहीं है। क्या तुम्हें भी यह विश्वास होता है कि मैं सत्य को तिलाञ्जलि देकर छल और कपट के रास्ते पर पैर रक्खूँगा—दुष्कर्म में लिप्त होऊँगा ?"

"कन्या के शोक में जिस प्रकार आप विह्वल हो गए थे—

आपकी बुद्धि जिस प्रकार विक्षिप्त हो गई थी—उसे देखते हुए तो आपका कुमार्ग में प्रवृत्त हो जाना कोई असम्भव बात हीं दीखती।"

"बेटा, जिस समय पोलिटिकल एजेण्ट और झाँसी के रेजिडेण्ट ने गङ्गाधरराव को दण्ड देने से इन्कार किया था, उस समय मेरा हृदय सचमुच घोर प्रतिहिंसा की अग्नि से जल रहा था। मैंने निश्चय कर लिया था कि विप्लव की आग देश में सर्वत्र फैलाए बिना मैं विश्राम नहीं लूँगा। किन्तु एक महीने के बाद ही मेरा क्षोभ शान्त हो गया। मैंने आत्म-चिन्तन और आत्म-निरीक्षण के द्वारा यह अनुभव किया कि मेरे ही दोषो ने मेरा सर्वनाश किया है। प्रतिहिंसा की ज्वाला इस ज्ञान की शीतलता में विलीन हो गई। यदि प्रत्येक मनुष्य इसी प्रकार अपने व्यक्तिगत दोषों का पता लगा ले, तो क्रोध को उसके हृदय पर अत्याचार करने का अवसर ही नहीं मिल सकता। जिस हृदय में यह ज्ञान है कि मेरा अमुक कष्ट मेरे ही कर्मों का अवश्यम्भावी फल है, उसमें क्रोध का उद्भव कैसे हो सकता है? मन शान्त होने पर मैं पूना चला गया। गत तीन वर्षों वहीं रहा हूँ। इस बीच केवल एक बार बम्बई गया था। ताँतिया टोपी के अनुरोध से इस समय यहाँ आया हूँ। ताँतिया युवावस्था के प्रारम्भ मे मुझसे पूना में संस्कृत पढ़ा करता था। यहाँ से पुनः पूना लौट जाने का विचार है,

किन्तु ताँतिया कुछ दिन और ठहरने का अनुरोध कर रहा है। मैंने भी यह निश्चित किया है कि वर्तमान विद्रोह का अन्तिम परिणाम देख कर इस स्थान से चला जाऊँगा। ताँतिया नाना साहब के परामर्शदाताओं में से एक है। इस समय इन लोगो मे मतभेद के कारण दो दल हो गए हैं। एक दल मे नाना की माता और ताँतिया है और दूसरे में अज़ीमुल्ला और नाना की उप-पत्नी आदिला हैं।"

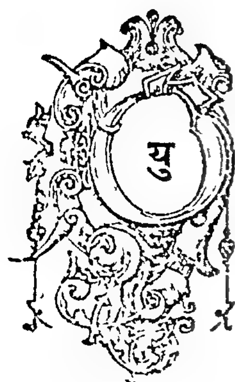
"आपके सम्बन्ध मे तो व्यर्थ ही इतनी अफ़वाह फैल गई है। क्या किसी ज्योतिषी ने नाना की जन्मपत्री देखकर उसे विद्रोही होने की सम्मति नहीं दी है?"

"भाई, यह एक लम्बी कहानी है। इन घटनाओं के भीतर विद्रोह के दो-तीन वर्ष पहले का सारा इतिहास छिपा हुआ है। मुझे भी ये सब बातें मालूम नहीं थीं। मैंने हाल में ही ताँतिया के मुँह से सुना है। इन बातो को सुनने से तुम्हे कोई प्रयोजन नहीं।"

"महाशय, मेरे लिए इन बातों को सुनना बहुत ही आवश्यक हो गया है। आपके सम्बन्ध में मेरे मन मे अनेक शङ्काएँ उठ-उठ कर मुझे कितना विकल बना देती हैं, यह आप नहीं जानते। जब तक मेरी शङ्काएँ निर्मूल नहीं हो जातीं, तब तक मेरे हृदय मे शान्ति नहीं आ सकती।"

चौदहवाँ परिच्छेद

ज्योतिषी



युवक के बहुत अनुरोध करने पर वृद्ध पुरुष ने कहा—"बेटा, वर्तमान विद्रोह किसी विशेष घटना अथवा किसी निर्दिष्ट कारण से उत्पन्न नहीं हुआ है। किसी व्यक्ति का षड्यन्त्र या किसी समुदाय का असन्तोष भी इसका मूल कारण नहीं है। अनेक प्रकार की पारस्परिक सम्बन्ध-हीन घटनाओं के विचित्र संयोग से इसकी वृद्धि हो रही है। इसमें ऐसी विभिन्न श्रेणियो के लोग मौजूद हैं, जिनके स्वार्थों मे किसी प्रकार की एकता नहीं और जिनके स्वार्थ कभी-कभी एक दूसरे से टकरा भी जाते हैं। इस विद्रोह की किसी भी एक घटना के साथ दूसरी घटना का कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं दीखता। चार-पाँच घटनाओं को एक साथ मिला कर परीक्षा करने से उनमें कोई कार्य-कारण-शृङ्खला नहीं मिलती।

नाना साहब के कार्यों के साथ दिल्ली के बादशाह का कोई सम्पर्क नहीं। दिल्ली की घटना से लखनऊ के विद्रोही सिपाहियो का कुछ सम्बन्ध है, यह बात भी समझ में नहीं आती। इस विद्रोह के नैतिक कारणों (Moral causes) पर विचार करने से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि अङ्गरेज़ लोगो ने स्वार्थ से अन्धा होकर, अपने को सुरक्षित बनाने के लिए जिस नीति का अवलम्बन किया था, वही नीति उनके विनाश का कारण हो रही है। जिस अशिक्षा की नीव पर वे अपने राज्य की दृढ़ता का आधार रखना चाहते थे, उसी अशिक्षा की ज्वाला मे पड़ कर आज उनका अस्तित्व भी भस्म होने जा रहा है। इस गूढ़ रहस्य के अतिरिक्त विद्रोह के और भी कई प्रत्यक्ष कारण हैं। पश्चिमोत्तर प्रान्त मे अङ्गरेजी राज्य का विस्तार होते ही वर्त्तमान विद्रोह का बीज भी अङ्कुरित होने लगा था। बङ्गाल के लोगों मे इस सरकार के प्रति कैसे भाव हैं, यह तो मै अच्छी तरह नहीं जानता, किन्तु पश्चिमोत्तर प्रान्त में तो अङ्गरेजो के पदार्पण करते ही राजा-प्रजा, अमीर-ग़रीब, मजदूर-किसान सबकी आँखो से रोष के स्फुलिङ्ग निकलने लगे थे। उनके हृदय में अङ्गरेज़ो के प्रति विद्वेष का समुद्र लहरा रहा था। इसका कारण था, अङ्गरेजो ने किसी श्रेणी की प्रजा के साथ न्याय का व्यवहार नहीं किया। तुम्हारे बङ्गाल की भाँति यहाँ भी इन लोगों ने भूमि का असा-

लतन बन्दोबस्त करने की बार-बार प्रतिज्ञा की, किन्तु उस प्रतिज्ञा की पूर्ति कभी नहीं की गई। किसानों को हरदम धोखा दिया गया, उनकी मालगुज़ारी मनमाना बढ़ाई गई। तुमने सुना ही होगा कि मार्किस ऑफ वेलेज़ली के उत्पीड़न से ऊब कर उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में अवध के नवाब सआदतअली ने अङ्गरेज़ों को इस बात के लिए ललकारा कि हमारे आधे राज्य का शासन तुम लोग करो और आधे का शासन मैं करता हूँ। देखा जाय, किसके राज्य में प्रजा अधिक सुखी रहती है, किसमें शासन-प्रबन्ध की योग्यता अधिक है। नतीजा यह निकला कि नवाब के अर्द्धांश का राजस्व पहले की भाँति केवल एक करोड़ बीस लाख रुपया ही रहा और अङ्गरेज़ों को अपना वार्षिक कर बढ़ा कर दुगुना कर देना पड़ा। उन्होंने प्रजा से दो करोड़ तीस लाख रुपया वसूल किया, यद्यपि उनका शासन नवाब के शासन से कहीं ज्यादा खराब था। अन्त में अङ्गरेज़ों ने यह बहाना किया कि नवाब के राज्य में अराजकता फैल गई है और इसी बहाने से नवाब वाजिदअली को अवध के सिंहासन से उतार कर उनका राज्य अपने राज्य में मिला लिया। किन्तु वास्तविक दशा यह थी कि जहाँ नवाब के शासन में एक भी ज़मींदार अथवा तालुकेदार बिगड़ने नहीं पाया था, वहाँ दूसरी ओर अङ्गरेज़ों के राज्य में जितने भी प्राचीन और प्रतिष्ठित परिवार थे, सब ऋणी और दरिद्र होगए। बहुतों का तो वंश भी

नहीं बचने पाया। अङ्गरेज़ों ने जो अदालतें स्थापित की हैं, वे अदालतें नहीं—लोगों का ख़ून चूस कर उन्हे निर्जीव बना देने वाली संस्थाएँ हैं। जो अभागा भूल कर भी एक बार उनके द्वार पर न्याय की भिक्षा माँगने गया, वह अपना सर्वस्व खोने के पहले वहाँ से नही लौट सकता। इन अदालतों मे न्याय नही होता, न्याय का उपहास होता है। शब्दो का ढोंग और वाक्यों का जाल बिछाकर काग़ज़ और क़लम की तीरन्दाज़ी से दीन-हीन, असहाय और पीड़ित प्रजा का शिकार किया जाता है। अङ्गरेज़ो ने भारतवासियो की उन्नति का एक भी द्वार खुला हुआ न रक्खा। सेना अथवा शासन, किसी विभाग मे भारतवासी ऊँचे पद नहीं प्राप्त कर सकते। सारा भारतीय राष्ट्र शूद्रो की नाईं तुच्छ सेवा करने का अधिकारी मात्र रह गया है। हमारा अधःपतन जिस वेग से हो रहा है, उसे देखते हुए हम लोगों में असन्तोष का होना स्वाभाविक ही है। अङ्गरेज हमारे देश के उच्च-वंशीय, कुलीन और विचारवान् लोगों पर विश्वास नहीं करते, उनके प्रेम-पात्र होते हैं नीच जाति के दुश्चरित्र और स्वार्थी लोग।

"इसी अन्याय और अविचार ने हमारे देश के राजा-प्रजा, हिन्दू-मुसलमान—सभी श्रेणी के मनुष्यों को अङ्गरेज़ों के विरुद्ध उठ खड़े होने के लिए विवश किया है। इसके पहले भी हमे यह दुर्व्यवहार चुभता था, किन्तु हमारे पास

प्रतिकार का साधन नहीं था, हम असङ्गठित थे, लहू का घूँट पीकर चुप बैठ जाया करते थे। ज़मींदार प्रजा को सताने में अपना गौरव समझते थे, तो प्रजा उन्हें धोखा देने के लिए बाध्य होती थी। हिन्दू मुसलमानों से घृणा करते थे और मुसलमान हिन्दुओं को मिटा देने पर उतारू रहते थे। इस फूट के कारण हम सब लोग सरकार से असन्तुष्ट होते हुए भी, उसे अपने असन्तोष की सूचना देने में असमर्थ रह जाते थे। इस समय अकस्मात् सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया है, आग एक जगह जल उठी है, उसकी चिनगारियाँ फैल कर समस्त देश को जला रही हैं। मेरठ के सिपाहियों की देखादेखी सभी स्थानों के सैनिक और जनता ने विद्रोह कर दिया। विद्रोही अङ्गरेज़ों पर सियार और कुत्तों की भाँति आक्रमण करते हैं। मूर्ख अङ्गरेज़ों ने उनकी शिक्षा का थोड़ा भी प्रयत्न किया होता, तो आज ये विद्रोही उनके रक्त के लिए इतने प्यासे तो न हो उठते!"

"बेटा, जिस देश का राजा प्रजा की उन्नति के लिए राज्य नहीं करता, जिस देश के राजकर्मचारी प्रजा की मङ्गल-साधना अपना कर्तव्य नहीं समझते, जिस देश की शासन-संस्था का मुख्य व्यवसाय है प्रजा का अर्थ-शोषण, उस देश में विप्लव अवश्य होगा। शिक्षित जनता जो क्रान्ति करती है, उसमें रक्त की नदी नहीं बहती। वह राज-नैतिक आन्दोलन के द्वारा राजा की अनीति के विरुद्ध अपने

नैतिक बल का प्रयोग करती है। शिष्ट और बुद्धिमान् राजा इस बल का आदर करता है, वह लोकमत के अनुसार अपनी नीति में परिवर्त्तन करता है। किन्तु जब अशिक्षित प्रजा विद्रोही होती है, तब वह कुत्तों और सियारों की भाँति राजपुरुषो पर आक्रमण करती है। अङ्गरेज़ों की कुटिलता ने ही सिपाहियों को शस्त्र उठाने के लिए बाध्य किया है। यदि उन्हें शिक्षित होने का अवसर दिया गया होता तो आज यह अवस्था कैसे उत्पन्न होती ?

"विचारशील, नीतिज्ञ और न्यायपरायण राजा कभी अपनी प्रजा को धोखा नही देता। कभी उसे अन्धकार में रखने की चेष्टा नहीं करता। उसकी उन्नति का द्वार वन्द करना तो पतित और निकृष्ट राजाओं का काम है। नीति-कुशल नरपति यह जानता है कि ज्ञान के आलोक और शिक्षा के प्रकाश मे ही सुख और शान्ति का साम्राज्य फैलता है, प्रजा के मङ्गल में ही राजा का कल्याण है।"

वृद्ध जब इतना कह कर रुके तो युवक ने फिर पूछा—नाना साहब क्यों विद्रोही हुए ? नाना साहव पर कौन सा अत्याचार हुआ था ?

वृद्ध फिर कहने लगे—"नाना साहव और बालाजी राव साहव वृत्तिभोगी पेशवा के दोनों पोष्यपुत्र हैं। बाजीराव पेशवा को अङ्गरेज़ लोग सालाना आठ लाख रुपए की वृत्ति

देते थे। सन् १८५१ ई० में पेशवा की मृत्यु होगई। उस समय लॉर्ड डलहौज़ी भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल थे। उन्होंने नाना साहब को उनकी पैतृक वृत्ति देने से इन्कार किया और उसी समय से उनकी वृत्ति बन्द कर दी गई। नाना साहब ने अज़ीमुल्ला को अपना प्रतिनिधि बना कर लॉर्ड डलहौज़ी के हुक्म के विरुद्ध अपील करने के लिए विलायत भेजा। जिस समय अज़ीमुल्ला विलायत में था, उस समय नाना साहब ज्योतिषियों से अपील के फलाफल की गणना कराते थे और प्रचलित विश्वासों के अनुसार ग्रह की शान्ति और देवताओं की प्रसन्नता के लिए पूजा-पाठ आदि अनुष्ठान भी कराते थे। फिर क्या था? नाना साहब के द्वार पर हर-दम ज्योतिषी, गणक और पण्डितों की भीड़ लगी रहती थी। अनेक पण्डित उनके रुपयों से मालामाल होगए। एक दिन एक चलता-पुर्ज़ा धूर्त आदमी ज्योतिषी बनकर नाना के पास आया और उनके पूछने पर उनके भाग्य का फलाफल बताने लगा। उसने बड़ी चालाकी से उत्तर दिया—"महाराज, आपका अभीष्ट अवश्य सिद्ध होगा, किन्तु आपके ऊपर इस समय राहु की दृष्टि है, इसी से कुछ विलम्ब जान पड़ता है। राहु के कारण शत्रु का पक्ष बलवान् हो गया है। तो भी चार-पाँच दिन के भीतर ही आपको एक शुभ सम्वाद मिलने वाला है। उस सम्वाद के ऊपर निर्भर होकर अपना प्रयत्न न छोड़ दीजिएगा। ग्रह-दोष से मनुष्य के हाथ में

'आया हुआ फल भी कभी-कभी मुँह में डालने के पहले हाथ से छूट कर गिर जाता है।"

इस धूर्तराज की बातचीत और भाव-भङ्गी से नाना साहब बहुत प्रभावित हुए। संयोग-वश उसके दो ही दिन बाद उन्हें विलायत से अज़ीमुल्ला का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था :—

"बहुत जल्द दो लाख रुपए भेज दीजिए। लॉर्ड डलहौज़ी का हुक्म ज़रूर रद होगा। पार्लिमेण्ट के सभी बड़े-बड़े मेम्बरों ने आपका पक्ष लिया है, लेकिन उन्हें कुछ रुपए दिए बिना काम नहीं चल सकता।

"विलायत बड़े मज़े की जगह है। हाथ में रुपया हो तो यहाँ कोई काम असम्भव नहीं। पाँच लाख रुपए खर्च करूँ तो वज़ीर पामरस्टन की लड़की को भी साथ ला सकता हूँ। लेकिन इस वक़्त इन कामों के लिए मुझे फ़ुरसत कहाँ? हाथ में जो काम लिया है, उसे पूरा किए बिना मैं चैन नहीं लूँगा"।

इस घटना ने छद्मवेशी ज्योतिषी के प्रति नाना का विश्वास सौगुना बढ़ा दिया। नाना ने उसको फ़ौरन बुलाकर एक हज़ार रुपयों का इनाम दिया और उससे बिठूर में ही रहने का आग्रह किया।

धूर्त ज्योतिषी बिठूर में रहने लगा और प्रति दिन मन्दिर में जाकर पूजा-पाठ, मन्त्र-तन्त्र, होम-जाप के द्वारा

नाना के ग्रह की शान्ति करने लगा। एक दिन वह नाना की जन्मकुण्डली देख कर बोला—महाराज, आपका भाग्य बड़ा प्रबल है, आप अपने पिता का खोया हुआ राज्य अवश्य प्राप्त करेंगे।

यह धूर्त ज्योतिषी धीरे-धीरे बहुत प्रसिद्ध हो गया। उस समय जो अङ्गरेज़ महिलाएँ बिठूर में आकर नाना का आतिथ्य ग्रहण करती थीं, वे भी दिल्लगी के लिए अथवा कौतूहल से उसज्योतिषी को अपना हाथ दिखाने लगीं। गणक महाराज अनायास उनके भाग्य के रहस्यों को खोलकर उनके सामने बिखेर देते थे। एक बार यह ज्योतिषी नाना का पत्र लेकर दिल्ली गया और वहाँ के सभी प्रसिद्ध हिन्दू और मुसलमानों को उनके भाग्य का फलाफल बताने लगा। दिल्ली में यह शोर मच गया कि एक अद्वितीय ज्योतिषी आए हुए हैं। अभागा दिल्ली का बादशाह तक उनसे अपने भाग्य की गणना कराने के लिए तैयार हो गया। ज्योतिषी जी बड़े आदर-सत्कार के साथ महल में बुलाए गए। बड़ी देर तक गणना करने के बाद गणक-पुङ्गव ने अपनी आकृति को जहाँ तक हो सका, गम्भीर बनाकर इधर-उधर देखा कि कोई है तो नहीं। फिर बादशाह के कान के पास अपना मुँह ले जाकर बड़े धीमे स्वर में कहा—"जहाँपनाह, एक सौ वर्ष पूरा होते ही अङ्गरेज़ी राज्य का खातमा हो जायगा। उस समय हुज़ूर ही समूचे भारत के बादशाह होंगे।" यह भविष्य-वाणी

सुनकर दिल्ली के सम्राट् प्रसन्नता के समुद्र में डूबने-उतराने लगे। जहाँ तक हो सका, उन्होंने ज्योतिषी की प्रतिष्ठा की और उसे बहुत सा धन देकर बिदा किया।

उधर कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने नाना की अपील नामञ्जूर करके लॉर्ड डलहौजी का ही हुक्म बहाल रक्खा। नाना का बहुत सा धन फूँक-फाँक कर अज़ीमुल्ला विलायत से लौटा। इस अपील में नानासाहब के लगभग दस लाख रुपए खर्च हुए। नाना ज्योतिषी और अजीमुल्ला दोनों पर बहुत नाराज हुए। किन्तु ज्योतिषी ने ऐसे गोल-मोल शब्दों मे नाना का भाग्य बतलाया था कि उसे कोई पकड़ नहीं सका। उसने इतने पर भी अपने कथन की पुष्टि करते हुए कहा—आप निश्चिन्त रहिए, मेरी एक बात भी मिथ्या नहीं होगी। राहु की दृष्टि का अन्त होते ही या तो आप अपनी वृत्ति पाइएगा या आपको एक बारगी अपने पिता का राज्य ही प्राप्त हो जायगा।

अज़ीमुल्ला भी नाना को आश्वासन देने लगा। उसने नाना का बहुत सा धन स्वयं हड़प कर लिया था, इसलिए इस समय नाना को ढाढ़स दिलाए बिना काम न चल सकता था। उसने ज्योतिषी की बात का समर्थन करते हुए कहा—"मैने विलायत में जो कारवाइयाँ की है उनसे मुझे पूरी आशा है कि अङ्गरेज आपके साथ अवश्य न्याय करेंगे। अगर अङ्गरेजों ने आपके साथ सद्विचार नहीं किया तो मैं

प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी जान पर खेलकर आपके राज्य का उद्धार करूँगा।" उसने और भी कहा—"मैंने न तो अब तक आप से धन कमाया है, न आगे कमाने की इच्छा रखता हूँ। मित्रता के नाते मैं आपका उपकार करने में अपनी शक्ति भर कुछ भी उठा नहीं रक्खूँगा।"

सरल नाना ज्योतिषी और अज़ीमुल्ला की बातों में आकर इस बार भी ठगे गए। उन्होंने ज्योतिषी से ग्रह की शान्ति के लिए फिर पूजा-पाठ और यज्ञ-याग करने का अनुरोध किया। वह धूर्त नित्य मन्दिर में बैठकर यज्ञ, हवन और मन्त्रों के द्वारा नाना का भाग्य सुधारने लगा। एक यज्ञ समाप्त हो जाने पर उसने नाना को विश्वास दिलाया कि अब देवता लोग प्रसन्न हो रहे है।

इस समय तक नाना ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि उन्हें सेना इकट्ठी कर अङ्गरेजों के साथ युद्ध करना होगा। ज्योतिषी ने उन्हे विश्वास दिलाया था कि राहु की कुदृष्टि का अन्त होने पर उन्हें या तो अपने पिता का राज्य प्राप्त हो जायगा या वृत्ति मिलने लगेगी। इसलिए वह मन ही मन यह समझे बैठे थे कि मेरे दुर्भाग्य का अन्त होते ही प्रजा अङ्गरेजों को देश से निकाल कर मुझसे सिंहासन ग्रहण करने की प्रार्थना करेगी अथवा अङ्गरेज लोग स्वयं वृत्ति देने पर राजी हो जायँगे। इसी आशा से वह अब तक अङ्गरेजों के मित्र बने हुए थे। इन्हें पार्टियाँ देने में जो

खोल कर रुपया खर्च करते थे। अङ्गरेज़-महिलाओं को बहुमूल्य उपहार भेंट दिया करते थे और यह आशा करते थे कि उनके अनुरोध से अङ्गरेज़ी सरकार हमें वृत्ति देने लग जायगी।

उधर वह धूर्त ज्योतिषी ग्रह की शान्ति के लिए नित्य नए-नए यज्ञों का ढोंग रच कर नाना से खूब धन हड़पने लगा। वह बड़ा ही दुश्चरित्र मनुष्य था। संसार मे शायद ही कोई ऐसा दुराचार हो जो उससे बचा हुआ था। गाँजा, शराब आदि मादक पदार्थों से उसे विशेष प्रेम था। उसकी उपपत्नियों की संख्या सात-आठ से कम नहीं थी। एक वर्ष पहले आगरे में उसे दारोग़ा लालसिंह ने अपनी एक उपपत्नी की हत्या करने के अपराध मे गिरफ्तार किया था। इस देश के पुलिस-कर्मचारियों का आचरण तो तुम जानते ही हो। उस धूर्त से पाँच हज़ार रुपए रिशवत लेकर दारोग़ा उसे छोड़ देने पर राजी होगया, किन्तु ज्योतिषी के पास उस समय इतना रुपया नहीं था। उसने एक हज़ार नकद और चार हज़ार रुपए एक साल के भीतर देने का वचन देकर छुटकारा पा लिया। एक वर्ष के भीतर जब उसने रुपए नहीं चुकाए तो लालसिंह ने आकर पुनः उसे शिव-मन्दिर में गिरफ्तार किया। वह धूर्त नाना को ठग कर जो कुछ भी कमाता था वह सब व्यसन में स्वाहा कर देता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं बचता था। लालसिंह

द्वारा पकड़े जाने पर वह बिलकुल निरुपाय हो गया। लालसिंह ने उसके साथ परामर्श करके नाना से रुपए वसूल करने की एक नई युक्ति सोच निकाली।

जिस दिन प्रातःकाल लालसिंह ने उसे गिरफ्तार किया था, उसी दिन तीसरे पहर अपने आरम्भ किए हुए यज्ञ को ताबड़तोड़ समाप्त करके वह एक साँस से दौड़ता हुआ नाना के पास जाकर बोला—मेरा यज्ञ सिद्ध हो गया, आपके भाग्य में जो कुछ लिखा है, उसे महादेव जी आपको स्वयं बतावेंगे। सायङ्काल मन्दिर मे आकर महादेव जी के ही श्रीमुख से सब बातें सुन लीजिएगा, मैं इस सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहता। आप लोग बड़े आदमी हैं। मुझ असहाय, दरिद्र ब्राह्मण का विश्वास क्यों करने लगे? मैंने साल-भर परिश्रम करके आपके लिए औघड़दानी महादेव को प्रसन्न किया है। अब जो कुछ करना हो महादेव के आज्ञानुसार ही कीजिए। मै यहाँ और अधिक दिनों तक नहीं रहूँगा। कानपुर और जयपुर के राजा मुझे बुलाने के लिए बार-बार आदमी भेज रहे हैं। वहाँ जाने में मुझे दस-बारह हजार रुपए मिल जायँगे।

नाना साहब उस धूर्त्त की बात सुन कर खुशी के मारे उछलने लगे। सायङ्काल बालाजी राव और अजीमुल्ला को साथ लेकर मन्दिर की ओर चले। अजीमुल्ला मुसलमान था, वह मन्दिर के अहाते के बाहर खड़ा रहा। नाना जी

और बालाजी ने शिवालय के द्वार पर माथा टेक कर ज्योंही प्रणाम किया, त्योंही मन्दिर के भीतर से आवाज़ आई—"दूर हो अभागा नाना, दूर हो पाखण्डी बाला, दूर हो, दूर हो।"

नाना साहब और बालाजी दोनों एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उस समय धूर्त्त ज्योतिषी उनके पास ही खड़ा था। वह झटपट गले में वस्त्र डाल कर भूमिष्ट हो शिव जी को प्रणाम करने लगा और कुछ देर तक 'बम्' 'बम्' 'ओ३म्' 'ओ३म्' का उच्चारण करता रहा। फिर बोला—भगवन्! देवों के देव महादेव! नाना साहब के सब अपराध क्षमा करो, आपकी जो आज्ञा हो, हम सबका पालन करेंगे।

उसके इतना कहते ही मन्दिर के भीतर से फिर आवाज़ आई, "रे नराधम नाना! मैं यहाँ और नहीं ठहर सकता। मेरे मन्दिर के निकट गोहत्या! अरे चाण्डाल, वृषभ मेरी सवारी है—उस वृषभ की यह दुर्दशा! दूर हो, दूर हो!!" उस धूर्त ने पुनः गले में वस्त्र डाला और प्रणाम करके दो-तीन बार 'बम्' 'बम्' शब्द का उच्चारण किया। मन्दिर के भीतर से फिर सुनाई पड़ा—"रे पाखण्डी नाना, अभी इस गोहत्या को बन्द करो। भय क्या है, तुझे राज्य अवश्य मिलेगा। क्या त्रिभुवन-विजयी त्रिशूल और कमला-पति का सुदर्शन-चक्र तुम्हारी रक्षा करने मे समर्थ नही हो सकेगा?"

शब्द समाप्त होते ही मन्दिर का दरवाज़ा बन्द हो गया। वह धूर्त्त ज्योतिषी नाना से कहने लगा—महाराज, शिवजी अन्तर्हित हो गए। मैं भी आज ही यहाँ से चला जाऊँगा। अब इस स्थान पर अधिक दिनों तक आप मुझे नहीं रख सकते। आपका अभीष्ट क्यों नहीं सिद्ध हो रहा है, यह तो आप समझ ही गए। गोहत्या के कारण ही महादेव जी आप पर इतने रुष्ट हैं। पहले एक बार आपने व्यर्थ ही मुझे डाँट-फटकार बतलाई थी, मेरा कुछ भी दोष नहीं था। आपकी जन्म-कुण्डली में स्पष्ट लिखा है कि आप राजा होंगे। आपके हाथ में राजा के सभी लक्षण मिलते हैं। मैंने सब बातें आपको सच-सच बताई थीं। मैं कभी एक शब्द भी झूठ नहीं बोलता हूँ। किन्तु किस कारण से आपके ऊपर देवताओं की वक्रदृष्टि है, जिससे आपका अभिप्राय सिद्ध नहीं होता, यह तो ज्योतिष बता नहीं सकता। मैंने एक वर्ष तक लगातार अथक परिश्रम करके और अपने पास से भी बहुत सा रुपया व्यय करके आपके लिए यह अनुष्ठान प्रारम्भ किया था। वह यज्ञ आज सिद्ध होगया। आपने मुझे दस हज़ार रुपए देने का वचन दिया था। आपकी इच्छा हो तो अपना वचन पूरा कीजिए, नहीं तो आज्ञा दीजिए, मैं अपने देश को लौट जाऊँ।

अबोध नाना ने धूर्त को दस हज़ार रुपए देकर बिदा किया। रात में नाना साहब, बालाजी और अज़ीमुल्ला के

साथ परामर्श करने बैठे। बालाजी नाना साहब के समान भोले और सरल नहीं थे। वह बोले—मुझे सन्देह हो रहा है कि इस मन्दिर में ब्राह्मण ने किसी आदमी को छिपा रक्खा था!

अज़ीमुल्ला ने देखा कि अच्छा मौक़ा है। वह इस तरह बातें करने लगा मानों मुसलमान होते हुए भी उसे हिन्दू-धर्म की सभी बातों पर विश्वास था। बालाजी की शङ्का का समाधान करते हुए उसने कहा—नहीं हुज़ूर! यह बरहमन इस क़िस्म का इन्सान नहीं है। मैंने बहुत लोगों को देखा, लेकिन ऐसा खरा आदमी मुझे कहीं नहीं मिला। नेकनीयती और ईमानदारी में तो यह शख़्स एक ही है।

नाना बोले—तो क्या तुम्हे विश्वास है कि सब बातें स्वयं महादेव जी ने कही है?

अज़ीमुल्ला ने उत्तर दिया—बेशक! सब बातें महादेव जी ने कही हैं—इसमें कोई शक नहीं। अगर वह सब बातें न कहते तो भला दूसरे आदमियो को उनके घर की बातों का क्या पता?

बालाजी ने पूछा—घर की कौन सी बात?

अज़ीमुल्ला कहने लगा—हुज़ूर, क्या ये बातें घरेलू नहीं हैं? आप लोगों के महादेव जी साँड़ पर चढ़ कर घूमते हैं, इस बात को पहले कौन जानता था। क्या आपको ही इसका पता था?

बाला जी हँसने लगे। उन्होंने हँसते हुए कहा—साँड़ महादेव जी की सवारी है, इसे कौन नहीं जानता ?

बालाजी का हँसना देखकर अज़ीमुल्ला ने क्रोध दिखाते हुए कहा —हुज़ूर, साँड़ पर चढ़ने की बात हो सकती है, लोग जानते हों। लेकिन किसके घर मे कौन सा हथियार है, इसे कोई कैसे बता सकता है ? मेरे ही घर में कौन-कौन से हथियार हैं, आप बताइए तो सही। आप हिन्दू लोगों के देवताओं के घर की बात भला कोई कैसे जान सकता है ? किसमे इतनी ताक़त है जो इन बातो को जान ले ? हिन्दू लोग अपने मन्तर-तन्तर किसी पर ज़ाहिर नही करते। इन बातों को ज़रूर महादेव जी ने अपने मुँह से कहा है। वह ख़ुद न कहते तो दूसरे को क्या पता था कि उनके घर में एक तिरसूल और एक चक्कर है ?

बाला जी बोले—अज़ीमुल्ला, तुम हो अहमक। महादेव जी का अस्त्र त्रिशूल और विष्णु भगवान का अस्त्र चक्र-सुदर्शन है, इसे तो हिन्दुओं का एक बच्चा भी जानता है।

इस बार अज़ीमुल्ला ने ग़ुस्से के मारे आपे से बाहर होकर कहा—"हुज़ूर, आप मुझे अहमक़ बनाते हैं। यह क्या कभी मुमकिन है कि दूसरे के घर में कौन सा हथियार है, यह दूसरा कोई जान ले ? मेरी उम्र पचास साल की हुई, मैं इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, इटली और न जाने कहाँ-कहाँ से घूम आया। दुनिया के परदे पर कोई ऐसा मुल्क नहीं बचा,

जहाँ के आदमियों से मैंने मुलाक़ात नहीं की हो। और आज आप मुझे नई बात सिखा रहे हैं। मैं. क्या हिन्दू-मज़हब से भी वाक़िफ नही हूँ। हिन्दू देवता कभी दूसरों पर यह ज़ाहिर नहीं करते कि उनके घर मे क्या है। हम लोगो का यह जोतिपी बड़ा पक्का आदमी है। मै क़ुरान छूकर क़सम खा सकता हूँ कि सब बातें ख़ुद महादेव जी ने कही हैं। अगर आज हम लोग अङ्गरेज़ों से भिड़ पड़ें तो मैं आपको शर्तिया यक़ीन दिलाता हूँ कि आपके सब हिन्दू देवी और देवता तिरसूल और चक्कर ले-लेकर हम लोगो की कुमुक मे मौजूद हो जायँगे। मैं बूढ़े महाराज के ज़माने से जानता हूँ, हम लोगों के इस मन्दिर के देवता हम लोगों पर बहुत मिहरबान रहते हैं। अगर ऐसी बात न होती तो बूढ़े महाराज इतना रुपया ख़र्च करके यह मन्दिर क्यो बनवाते? अब महादेव जी बूढ़े हो गए है, वह घोड़े पर नहीं चढ़ सकते, सिर्फ़ साँड़ की पीठ पर चढ़ कर थोड़ा-बहुत इधर-उधर घूम लिया करते हैं। उसी साँड़ की औलाद को ये साले फिरङ्गी नेस्त-नाबूद कर रहे हैं। भला बूढ़े देवता नाराज़ न हों तो क्या हों? हुज़ूर, आपकी उम्र है अभी थोड़ी, आपने सब हिन्दू सास्तर पढ़े ही कहाँ? मैं आपके सास्तर की हर एक बात जानता हूँ, आप लोगों के सास्तरों मे सत, त्रेता, द्वापर और कलि, ये चार जुग हैं। ये देवता सतजुग के ज़माने के है। इस

वक़्त बेचारे इस क़दर ज़ईफ़ हो गए हैं कि साँड़ के बग़ैर दो क़दम भी नहीं चल सकते। मैं क्या आपके इस देवता को नहीं जानता हूँ ? इन्हें गाँजा पीने की लत है। गाँजा वग़ैरह नशीली चीज़ों से पूजा करने से वह .खुश रहते हैं। हुज़ूर, मैंने .खुद देखा है, महादेव जी कभी-कभी साँड़ पर चढ़ कर गाँजे के अड्डों पर जाया करते हैं। उसी साँड़ की औलाद को अङ्गरेज़ लोग मिटा रहे हैं। लिहाज़ा महादेव जी को बड़ा नागवार गुज़र रहा है। हुज़ूर, आप इस बन्दे की राय मानिए, जब आप लोगों के—हिन्दुओं के—सबसे आला और नामवर देवता महादेव का हुक्म हो गया, तब और देरी करने से क्या फ़ायदा ? जो कुछ करना हो, उसे चट-पट कर डालना ही मुनासिब है। हाँ, मुझे एक बात और याद आ गई—गोहत्ता से बूढ़े महादेव के बिगड़ने की यह भी एक ख़ास वजह है। एक तो बिना साँड़ के वह चल नहीं सकते, दूसरे उन्हें अफ़ीम खाने की भी लत है। अफ़ीम के साथ दूध पिए बिना चल नहीं सकते। इसी से गोहत्ता के सबब से महादेव जी एकदम घबरा गए हैं। मुझे इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि अगर हम लोगों ने फिरङ्गियों को मुल्क से निकाल कर जल्दी ही गोहत्ता नहीं बन्द कर दी, तो यह देवता इस मुल्क को छोड़ कर ज़रूर कहीं भाग जायँगे।"

जब अजीमुल्ला इस तरह हिन्दू-धर्म की व्याख्या

और महादेव जी के गुणों का कीर्तन कर चुका, तो नाना की भी अङ्गरेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करने की इच्छा हुई, किन्तु बाहर से वह अङ्गरेज़ों के मित्र ही बने रहना चाहते थे। इधर नाना के ख़र्च से अज़ीमुल्ला ने बहुत से गुप्तचर नियुक्त किए। ये गुप्तचर पश्चिमोत्तर प्रान्त के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूम-घूम कर सिपाहियों में यह अफ़वाह फैलाने लगे कि अङ्गरेज़ लोग सब सिपाहियों को ईसाई बनाने की कोशिश कर रहे हैं।

वह धूर्त ज्योतिषी भी लालसिंह के रुपए चुका कर और कुछ दिनों तक दिल्ली तथा आगरे की सैर करके फिर बिठूर वापस आ गया। उसने नाना को एक औषधि बना कर दी और कहा कि जिस व्यक्ति को यह औषधि खिला दीजिएगा, वही विद्रोही हो जायगा। अज़ीमुल्ला के गुप्तचर इस औषधि को आटे अथवा मैदे में मिला कर चपातियाँ पकवाने लगे और उन चपातियों को रेजिमेण्ट के सिपाहियों और उनके घरों में बाँटने लगे।

विद्रोह के पाँच-छः महीना पहले से ही अज़ीमुल्ला के गुप्तचर चपातियाँ बाँटते और सिपाहियों में झूठी ख़बरें फैलाया करते थे। "अङ्गरेज़ सिपाहियों का धर्म नाश करेंगे, सबको क्रिस्तान बना डालेंगे"—इस प्रकार की निराधार बातें कह कर इन लोगों ने सिपाहियों को विद्रोही बनाया है। सिपाही इतने गँवार नहीं हैं कि इस प्रकार की बातों पर

सहसा विश्वास कर लेंगे। अङ्गरेज़ों के अन्याय के कारण उनका मन भीतर ही भीतर असन्तुष्ट हो रहा था। बदला लेने के लिए वे मौक़े की ताक में थे। इसी कारण इस अमूलक प्रवाद के सत्यासत्य का निर्णय किए बिना ही वे विद्रोह की अग्नि में कूद पड़े। मानव-स्वभाव की यह एक अपरिहार्य दुर्बलता है कि जब मनुष्य के मन में किसी के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है, तब वह उसके विषय में झूठी बातों पर भी सरलता से विश्वास कर लेता है। सिपाहियों की भी ठीक यही दशा हुई है। उनके मन में अङ्गरेज़ी सरकार के प्रति विद्वेष का भाव मौजूद था। यह झूठी ख़बर सुनते ही किसी अज्ञात शक्ति ने उन्हें सब बातों पर विश्वास करा दिया।"

युवक ने पूछा—सिपाही सरकार के प्रति क्यों असन्तुष्ट हो रहे थे ?

वृद्ध ने कहा—सिपाहियों के ही बाहुबल से अङ्गरेज़ों ने भारतवर्ष में राज्य का विस्तार किया। आज तक भारतीय सैनिक ही सेनापति आदि के उच्च पदों पर काम करते आ रहे थे। किन्तु राज्य के दृढ़ हो जाने और मालगुज़ारी बढ़ा कर अपना पेट अच्छी तरह भर लेने के बाद अङ्गरेज़ों ने सिपाहियों पर ज़ुल्म करना आरम्भ किया। देशी सिपाही केवल छोटे-छोटे पदों पर रक्खे जाते थे, और बड़े-बड़े पद अङ्गरेज़ों के लिए सुरक्षित रक्खे गए। उन्नीसवीं शताब्दी के

आरम्भ से ही सिपाहियों में असन्तोष फैलने लगा और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उनका असन्तोष भी तीव्र होने लगा। अङ्गरेज़ी सरकार ने यदि उनके स्वत्वों को पद-दलित नहीं किया होता, तो अज़ीमुल्ला के गुप्तचर उन्हे विद्रोही बनाने में कभी सफल नही हो सकते।

वृद्ध के मुँह से यह लम्बी कहानी सुन लेने पर युवक ने कहा—अज़ीमुल्ला के गुप्तचर की बात सुन कर मैंने यह समझ लिया था कि आप ही छद्मवेश में ज्योतिषी बने हुए विद्रोह का प्रचार कर रहे है। मेरी वह धारणा अब दूर हो गई। इस समय आप मेरे साथ झाँसी चलिए। मै आपकी कन्या से प्रतिज्ञा करके आया हूँ कि उसे आपका दर्शन कराऊँगा। वह बेचारी आपके वियोग मे घुल-घुल कर अपने प्राण गँवा रही है।

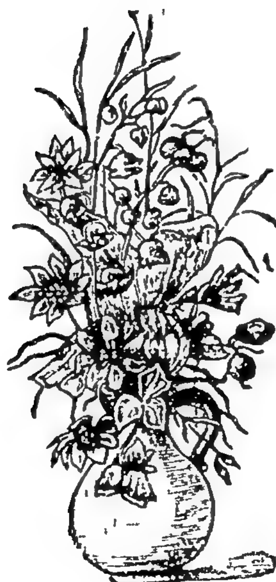
"बेटा, मै यहाँ ताँतिया के अनुरोध से आया हूँ। ताँतिया पर मै अपनी सन्तान की भाँति स्नेह रखता हूँ। उसे मै इस विद्रोह के अन्त तक यहाँ रहने का वचन दे चुका हूँ।"

"ताँतिया कौन है? वह तो नाना साहब का सलाह-कार है। उसके साथ आपका क्या सम्बन्ध? मैं तो यही जानता हूँ कि नाना जैसे निष्ठुर है, ताँतिया वैसा ही होगा।"

"नहीं बेटा! ताँतिया को तुम जानते नही हो। यद्यपि

ताँतिया की यौवन-सुलभ वीरता और सहृदयता इस कुत्सित हिन्दू-समाज में पड़ कर बहुत अंशों में नष्ट हो चुकी है, तथापि अब भी उसमें अनेक सद्गुण दिखाई पड़ते हैं।"

"ताँतिया कौन है ? क्या वह महाराष्ट्र है ?"





ताँतिया टोपी



वक के प्रश्न करने पर वृद्ध कहने लगे—"ताँतिया उच्च वंश का ब्राह्मण है। उसके पिता मेरे हार्दिक मित्र थे। ताँतिया के युवा होने के पहले ही वह इस लोक से चल बसे। ताँतिया अपने बचपन से ही वीरता, तेजस्विता, धीरता, सहृदयता आदि सद्‌गुणों का परिचय देने लगा था। हिन्दू-समाज की नीचता, कायरता, कुटिलता आदि वर्त्तमान बुराइयों ने उसके हृदय को स्पर्श तक नहीं किया था। उसकी जन्मभूमि अङ्गरेज़ी राज्य में नहीं है—शायद बाजीराव पेशवा के राज्यान्तर्गत पूना में उसका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था से ही उसके मन में विदेशी सरकार के प्रति घृणा थी। अपनी बाल्य-क्रीड़ा में भी वह अपनी स्वाधीनप्रियता का परिचय दिया करता था।

"पितृ-वियोग के बाद मित्र की सन्तान समझ कर उसके पालन-पोषण का भार मैंने अपने ही ऊपर ले लिया था और उसे संस्कृत पढ़ाने लगा था। संस्कृत मे उसका अच्छा प्रवेश भी हो गया था, किन्तु न्याय, दर्शन और स्मृति-ग्रन्थो मे उसकी रुचि नही थी। युद्ध-विग्रह और सैन्य-सञ्चालन की कहानियाँ सुन कर वह बहुत प्रसन्न होता था।

"यौवन के प्रभातकाल में ही उसके मन मे महत्वाकांक्षाएँ उत्पन्न होने लगी। वह कहा करता था कि मुसलमान और अङ्गरेजो को देश से बाहर निकाल कर सारे भारतवर्ष पर मराठों का प्रभुत्व स्थापित करूँगा। भारतवर्ष मे पुनः हिन्दू-धर्म के उत्कर्ष की पताका फहराऊँगा।

"ताँतिया की अवस्था बीस वर्ष की होते ही उसकी माँ उसके विवाह की चर्चा करने लगी। बुढ़िया पुत्र-वधू का मुँह देखने के लिए पागल हो गई थी। ताँतिया उस समय विवाह करना नहीं चाहता था, किन्तु माता के हठ के सामने पुत्र के मनोबल को पराजित होना पड़ा। विवाह हुआ और साथ ही साथ हुआ ताँतिया की उमङ्गो, आशाओ और समस्त सद्गुणो का श्राद्ध ! विवाह के बाद उसके मन की प्रसन्नता न जाने किस शून्य मे विलीन हो गई, उसके यौवन का उत्साह भग्न हो गया। विवाह के तीन-चार वर्ष के बाद उसके बच्चे पैदा होने लगे, और

दो बच्चों के बाद तो वह अपने रहे-सहे उद्यम और उत्साह के साथ अपनी महत्वाकांक्षाएँ भी खो बैठा। अब उसके ऊपर एक परिवार के पालन-पोषण का भार था। वह कम्पनी की सरकार में बीस-पच्चीस रुपए की एक जगह के लिए उम्मीदवारी करने लगा, किन्तु लगातार दो साल तक कोशिश करने पर भी उसे कोई नौकरी न मिली। अन्न-कष्ट के कारण उसके परिवार की दुर्दशा होने लगी। तब मैंने एक प्रार्थना-पत्र के साथ उसे वृत्तिभोगी पेशवा बाजीराव के पास भेजा। राज्यच्युत होने के पहले से ही पेशवा से मेरा परिचय था। अङ्गरेज़ों से युद्ध मे हार कर जिस समय पेशवा बिठूर मे रहने के लिए विवश हुए थे, उस समय कर्नल मालकम ने मेरी ही देख-रेख मे उनके परिवार को पूना से बिठूर भेजा था। उस समय से बाजी-राव की स्त्री से भी मेरा परिचय हो गया। वह मुझ पर अगाढ़ श्रद्धा रखती थी।

"ताँतिया के पितामह पेशवा के अत्यन्त विश्वासपात्र भृत्य थे। वृत्तिभोगी पेशवा ने भी मेरा अनुरोध मान कर ताँतिया को अपनी सरकार मे रख लिया। सन् १८५१ ई० में बाजीराव पेशवा की मृत्यु हो गई। उस समय नाना ने पेशवा की स्त्री के वर्त्तमान होते हुए भी, उसकी सारी सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया। इस बात को लेकर नाना और पेशवा की स्त्री में विवाद उठ खड़ा हुआ।

ताँतिया ने पेशवा की स्त्री का पक्ष ग्रहण किया। झगड़ा निबटाने के लिए ये दोनों मुझसे बिठूर आने का आग्रह करने लगे, परन्तु उस समय मै यहाँ नहीं आ सका था। शायद और किसी ने बीच मे पड़ कर झगड़ा तय कर दिया। उसके बाद से ताँतिया नाना की सेवा करने लगा। पाँच-छः महीने के बाद फिर नाना ने पेशवा की स्त्री का एक पाँच लाख रुपए का बहुमूल्य हार लेकर अपनी उप-पत्नी आदिला को दे दिया। इससे पेशवा की स्त्री बहुत दुखी हुई और उसने मुझे बुलाने के लिए ताँतिया को पूना भेजा। इसीलिए पिछले अप्रैल मास में मैं पूना से यहाँ आया हूँ। मैंने नाना से हार लौटाने के लिए कई बार अनुरोध किया, किन्तु बेचारा नाना परवश है। उसमें अपनी उप-पत्नी आदिला को अप्रसन्न करने का साहस नहीं है।

"मेरे यहाँ आ जाने के बाद ही विगत दसवीं मई को मेरठ के सिपाहियों ने विद्रोह किया। वहाँ कई अङ्गरेजों की हत्या करने के बाद दूसरे दिन उन लोगों ने दिल्ली पर आक्रमण किया। दिल्ली में वहाँ के सभी अङ्गरेजों की हत्या की और उसके बाद दिल्ली के बादशाह को सारे भारतवर्ष का सम्राट् घोषित किया। इस समय ये सिपाही दिल्ली में ही पड़े हुए हैं।

"यह खबर सुनते ही अजीमुल्ला यहाँ के सिपाहियों को भड़काने लगा। उसी के परामर्श से पाँचवीं या छठी जून को

यहाँ विद्रोह हुआ। सिपाहियों ने सबसे पहले ख़ज़ाना लूटा और उसके बाद दिल्ली की ओर बढ़े। लेकिन वे कल्याणपुर तक भी नहीं पहुँचे थे कि अज़ीमुल्ला ने उन्हें जा घेरा और यहाँ के अङ्गरेज़ों की हत्या करने के लिए उन्हें बहकाने लगा। यहाँ केवल तीन-चार सौ अङ्गरेज़ थे, और सिपाहियों की संख्या थी चार-पाँच हज़ार; तो भी सिपाही उन्हें आसानी से नहीं हरा सके। सिपाहियों के गोले क़िले के भीतर गिर गिर कर मेमों और बच्चों की हत्या कर रहे थे और अङ्गरेज़-पुरुष हृदय पर पत्थर रख कर एक ओर अपनी पत्नियों और बच्चों का आर्त-नाद सुन रहे थे और दूसरी ओर वीरता-पूर्वक सिपाहियों के गोलों का जवाब दे रहे थे।

"अङ्गरेज़-सेनापति जनरल ह्वीलर ने नाना साहब से प्रस्ताव किया कि हमें बाल-बच्चों के साथ यहाँ से चले जाने की अनुमति दीजिए। ताँतिया नाना साहब से इस प्रस्ताव को मान लेने का आग्रह करने लगा। वह अज़ीमुल्ला की भाँति क्रूर नहीं है। उसकी बाल्यावस्था के धर्म-भाव और वीरत्व अभी भी क्षणस्थायी बिजली की नाईं उसके चरित्र में कभी-कभी अपनी दिव्य-ज्योति दिखा जाते हैं। अज़ीमुल्ला और आदिला अङ्गरेज़ों के प्राण लेने पर तुले हुए थे। वे नाना को समझाने लगे कि—'अङ्गरेज़ों के प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बालक-बालिका का वध किए बिना युद्ध में जय पाने की कोई आशा नहीं।' इस प्रस्ताव को लेकर ताँतिया और

अज़ीमुल्ला में घोर विवाद उठ खड़ा हुआ। मैंने नाना को स्त्री-हत्या और बाल-हत्या के जघन्य पाप से अपने हाथों को कलङ्कित करने से मना किया। मैंने उसे समझाया कि इस भयङ्कर अपराध का कठोर दण्ड तुम्हे ईश्वर के दरबार से अवश्य मिलेगा। मेरे समझाने से नाना की विवेक-बुद्धि जाग्रत हो उठी। उसने सेनापति ह्वीलर को स्त्रियों और बालकों के साथ इस स्थान से चले जाने की अनुमति दे दी। यह स्थिर हुआ कि आज प्रातःकाल अङ्गरेज लोग यहाँ से चले जायँगे। किन्तु हत्यारा अज़ीमुल्ला अपने सङ्कल्प से टलने वाला न था। उसने गुप्त-रूप से सिपाहियों से परामर्श किया और जैसे ही अङ्गरेज़ लोग नावों पर चढ़े वैसे ही उन पर आक्रमण कर दिया। ताँतिया ने उसी समय एक आदमी भेज कर मुझे इस दुर्घटना की सूचना दी। मैं एक साँस में दौड़ा हुआ गङ्गाजी के घाट पर पहुँचा, किन्तु मेरे वहाँ पहुँचने के पहले ही अनेक अङ्गरेज़ों की हत्या हो चुकी थी। मैंने जब नाना से बारम्बार अनुरोध किया तब कहीं जाकर हत्याकाण्ड बन्द हुआ। जीवित बचे हुए अङ्गरेज़ इस समय सबेदा-कुटी में बन्दी बना कर रक्खे गए हैं।"

इतना सुनने पर युवक अपने मर्म की व्यथा नहीं रोक सका। उसने अपने हृदय का उद्गार प्रकट करते हुए कहा—उफ ! ऐसी नृशंसता ! कैसा भयानक विश्वासघात है ! पशुत्व की भी कोई सीमा होती है ?

वृद्ध फिर कहने लगे—ताँतिया की यह इच्छा नहीं थी कि इस प्रकार कायरतापूर्वक अङ्गरेज़ो पर आक्रमण किया जाय। वह तो नाना साहब को सम्मुख संग्राम के लिए प्रस्तुत कर रहा था। किन्तु नाना के पिट्ठू अज़ीमुल्ला और उसकी प्रणयिनी आदिला ने नाना को नरक मे डुवा दिया। संसार मे कोई व्यक्ति इनसे भी बढ़कर निर्दयी और कुटिल है, इसमें मुझे सन्देह है! नारी-हत्या और शिशु-हत्या ने भारतवर्ष के उज्ज्वल यश और विमल कीर्ति-पताका को कलङ्कित कर दिया। इस पाप की आग में भारतवर्ष की आत्मा न जाने कितने दिनों तक झुलसती रहेगी। तुम्हारे बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला ने एक पाप किया था, जिसके कारण इस ऋषि-भूमि के पैरो में—उन पाद-पङ्कजों मे, जिन्हे पखारने में पतित-पावनी गङ्गा और यमुना, पुण्यतोया सिन्धु और सरस्वती अपना सौभाग्य समझती है—दासता की दुर्जय शृङ्खला बँध गई। काल-कोठरी का हत्याकाण्ड न हुआ होता तो आज राम और कृष्ण की सन्तान पराधीन और परमुखापेक्षी न होती। नाना के पाप उसे किस पतन की खाड़ी में गिरावेंगे, इसे भविष्य बताएगा। तो भी मैं यहाँ कुछ दिनों तक रह कर नाना को अज़ीमुल्ला और आदिला के पञ्जे से छुड़ाने का प्रयत्न करूँगा।

युवक ने विरक्तिपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—महाशय, इस प्रयत्न में आपकी सारी चेष्टाएँ विफल होगी। इस जन्म में

नाना आदिला और अज़ीमुल्ला के संसर्ग से मुक्त नहीं हो सकते। निष्ठुरता में नाना अज़ीमुल्ला से घट कर न होंगे। अच्छा तो यह है कि आप ताँतिया को इन नर-पिशाचों की सङ्गति से हटाने का प्रयत्न कीजिए।

"ताँतिया नाना और उनके पूर्वजों के अन्न से पला है। उसके रग-रग में नाना का नमक भिना हुआ है। क्या विपत्ति-काल में उसका नाना का परित्याग करना कभी उचित कहा जा सकता है?"

"इसमें अनौचित्य ही क्या है? क्या विश्वासघाती, निष्ठुर और धर्माधर्म ज्ञान-शून्य नर-पिशाचों के साथ रह कर अपने जीवन को भ्रष्ट करना उचित कहा जायगा?"

"इसमें तो अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि अज़ीमुल्ला और नाना का संसर्ग दूसरों को भी पतित बना रहा है, किन्तु यदि इस विद्रोह में लोग सियार और कुत्तों की भाँति कायरतापूर्वक अङ्गरेजों पर आक्रमण न करें—वीरता-पूर्वक सम्मुख-संग्राम में उनके साथ युद्ध करने का साहस करें तो इस देश का अनन्त उपकार हो। अङ्गरेजों में फिर इस देश के अधिवासियों को सताने की हिम्मत न रह जायगी। विद्रोहियों ने आज तक जो कुछ भी किया है उससे देश का उपकार होने के बदले अपकार ही अधिक होगा। हम लोग अङ्गरेज़ों पर कुत्तों और सियारों की तरह टूट पड़ते हैं, अङ्गरेज़ भी जङ्गली जानवरों की भाँति हमारा

शिकार करेंगे। इस अवस्था में यदि ताँतिया टोपी सेनाध्यक्ष बन कर अङ्गरेज़ों से युद्ध करने के लिए एक बार मैदान में उतर पड़े तो अङ्गरेज़ लोग बाध्य होकर—सम्मुख संग्राम में पराजित होकर—सन्धि का प्रस्ताव पेश करेंगे। उनके हृदय पर हमारी वीरता का प्रभाव पड़ेगा। प्रतिहिंसा से उन्मत्त होकर वे हम लोगों का शिकार न करेंगे। युद्ध की अशान्ति क्षण-मात्र में मिट जायगी। यह भी सम्भव है कि अङ्गरेज़ लोग नाना को क्षमा कर दें। किन्तु इस समय यदि ताँतिया नाना का साथ छोड़ दे तो घोर अनर्थ हो जायगा। अङ्गरेज़ी सेना को देखते ही अज़ीमुल्ला और नाना भाग खड़े होंगे। अङ्गरेज़ जी भर कर कानपुर के नागरिकों की हत्या करेंगे और अन्त में नाना को पकड़ पाने पर उसे भी फाँसी पर लटका देंगे।"

"ताँतिया के विजयी होने से ही तो युद्ध बन्द न हो जायगा। नाना सन्धि करने पर तैयार न हो, तो शान्ति स्थापित होगी या अशान्ति की लहर दुगुनी बढ़ जायगी?"

"बेटा, ऐसा अवसर उपस्थित होते ही नाना को ताँतिया का हुक्म मान कर चलना पड़ेगा। उस समय ये मुसलमान भाई-बहिन अज़ीमुल्ला और आदिला एक मिनट को भी नहीं ठहरेंगे। ताँतिया के अतिरिक्त नाना के परामर्श-दाताओं में और कोई ऐसा नहीं है, जो दुश्मन के गोलों से अपना सिर और भालों से अपना सीना टकरा सके।"

"और यदि ताँतिया टोपी पराजित हुआ तो ?"

"पराजय की चिन्ता नहीं करता। देश के कल्याण और स्वामी की सेवा के लिए मर-मिटने मे ही वह अपना गौरव समझता है। तुम उसके स्वभाव से बिलकुल परिचित नहीं हो। आह, उसके यौवन का वह वीरत्व, वह उत्साह, वह उच्चाभिलाषा, वह त्याग संसार मे क्या नहीं कर सकता था ? आज भी उसकी आत्मा हमारी सामाजिक स्वार्थ-वासना से कोसों दूर है। उसने मुझसे स्पष्ट कहा था कि यदि जननी-जन्मभूमि की सेवा के लिए प्राण निछावर करना पड़े तो मैं हँसते-हँसते मृत्यु का आलिङ्गन करूँगा।"

"ताँतिया के पराजय और अकाल-मृत्यु से भला देश का क्या कल्याण होगा ? हाँ, यदि वह विजयी हुआ और अङ्गरेजों को सन्धि करने के लिए मजबूर कर सका तो अवश्य हमारी सन्तान भविष्य मे मनुष्यों का जीवन व्यतीत कर सकेगी।"

"सम्मुख संग्राम मे ताँतिया के पराजित होने मे भी देश का कल्याण ही है।"

"क्या कल्याण हो सकता है ? आज तक कहीं पराजित का भी भला हुआ है ?"

"बेटा, स्वतन्त्रता की आग जब देश के हृदय में एक बार जल उठती है, तब वह बुझाए नहीं बुझती। वंश-परम्परा और युग-युगान्तर तक वह जलती रहती है। खून मे लथपथ

पिता और पितामह के परिच्छद को पुत्र और पौत्र बड़े आदर और गर्व के साथ धारण करते हैं। युद्ध में निहत बाप-दादो का तेज बेटे और पोतों में भी त्याग और वीरत्व का सञ्चार कर देता है। वर्तमान विद्रोह मानवीय स्वार्थों की सङ्घर्ष-ज्वाला नहीं है, भगवान् शङ्कर का ताण्डव-नृत्य है। इसमें क्रूरता और स्वार्थ की भावना को तिलाञ्जलि देकर शुद्ध-भाव से आत्म-बलिदान करने की आवश्यकता है। सम्मुख संग्राम में विजयी होने पर हमारी परतन्त्रता की बेड़ी कट जायगी, रणक्षेत्र में वीरगति प्राप्त करने से देश का कलङ्क और समाज का पाप धुल कर हमे मुक्त करेगा।"

युद्ध की बात समाप्त हो जाने पर युवक टकटकी बाँध कर उनका मुँह देखने लगा। कुछ देर तक सोच-विचार कर बोला—महाशय, मैं नहीं समझता कि आप युद्ध और विप्लव के इतने पक्षपाती क्यों हैं। क्या संग्राम-प्रियता और क्रान्ति-प्रेम ही महाराष्ट्रों का जातीय स्वभाव है? हम लोगो का देश अन्धकार से आच्छन्न है। हिमालय से लेकर कन्या-कुमारी तक सर्वत्र अज्ञता और मत-मतान्तरो का जाल बिछा हुआ है। इस समय यदि हमे किसी से युद्ध करना है तो इसी अज्ञता और मत-मतान्तरो के पिशाच से। इस पिशाच का दुर्भेद्य चक्र-व्यूह तोड़ने में पाश्चात्य विज्ञान और अङ्गरेजी सभ्यता हमारी सहायिका होगी। उस समय ब्रिटिश साम्राज्य हमारा शत्रु नहीं रहेगा, वह होगा विचार

से हमारा शुभचिन्तक और वाणी तथा कर्म से सहायक और मित्र।

"बेटा, यह कभी ख्याल में भी न लाना कि विद्या और ज्ञान में महाराष्ट्र लोग तुम बङ्गालियों से पीछे है। मैं इसे भी मानने के लिए तैयार नहीं कि बङ्गालियों की चिन्ता-शक्ति बड़ी तीव्र है। लड़ाई का नाम सुनते ही बङ्गालियों के प्राण सूख जाते हैं। किन्तु बेटा, जिस संग्राम से अज्ञान का साम्राज्य विध्वंस हो, जिस युद्ध से शासकों की उच्छृङ्खलता मिटे, मैं उस संग्राम का पक्षपाती हूँ, उस युद्ध का उपासक हूँ। मैंने पचास वर्ष तक अङ्गरेज़ों के अधीन काम किया है। इस समय भी उन से पेन्शन पा रहा हूँ—मैं क्या अङ्गरेज़ों के कल्याण का इच्छुक नहीं? तुम बङ्गालियों ने समाज-सुधार, धर्म-संस्कार आदि दो-तीन शब्द कहीं से सुन रक्खे हैं। समय-असमय सदा उन्हीं का वेतुका राग अलापते हो। कार्य के फलाफल का निर्णय करने की शक्ति तो तुममें है ही नहीं।"

"महाशय, संग्राम से किस प्रकार देश की अज्ञता दूर होगी, यही बात तो मेरी समझ में नहीं आती!"

"अगर यही बात तुम्हारी समझ में नहीं आती तो मैं अभी तुम्हारी शङ्का का समाधान किए देता हूँ। नेपोलियन बोनापार्ट का नाम तो तुमने सुना ही होगा। वह एक मामूली सिपाही था, एक ग़रीब पिता की सन्तान था।

किन्तु उसकी अन्तरात्मा में वीरता और शौर्य का भाण्डार छिपा हुआ था। वह अपने देश के सैनिक विभाग में एक छोटे से पद पर नियुक्त हुआ था। किन्तु अपनी क्षमता का परिचय देने में उसे अधिक समय नहीं लगा। थोड़े ही दिनों में वह अपने देश के राजसिंहासन पर भी बैठ गया। वही अभागा नेपोलियन यदि हमारे देश में पैदा होता तो क्या उन्नति के उस सर्वोच्च शिखर तक कभी पहुँच सकता था? गुलामी के बन्धन में जकड़े हुए नाना के नौकर इस ताँतिया की ही बात लो, क्या वीरता और निर्भयता में वह नेपोलियन से किसी अंश मे कम है? वह यदि किसी स्वाधीन राज्य में पैदा हुआ होता तो आज उसके व्यक्तित्व से सेनापति का पद सुशोभित होता। किन्तु जिस देश में ताँतिया के समान असाधारण शक्ति-सम्पन्न पुरुष को पापी पेट की ज्वाला में दग्ध होकर बीस रुपए मासिक की एक तुच्छ किरानीगिरी के लिए ऑफिसो की धूल छाननी पड़ती हो और आजीवन किरानी बने रह कर अपमानित, तिरस्कृत और लाञ्छित होना पड़ता हो, अफसरो के लात और जूते खाने पड़ते हों, उस देश में गला फाड़-फाड़ कर 'ज्ञान-ज्ञान' 'सुधार-सुधार' चिल्लाने से क्या लाभ होगा? क्या ऐसे देश के लोगों में कभी ज्ञान का विस्तार हो सकता है? क्या वेद, क़ुरान और बाइबल के पाठ से ही ज्ञान का समुद्र उमड़ पड़ेगा? सांसारिक समुन्नति के शुभ्र शिखर से ही

ज्ञान की सुरसरी समुच्छ्वसित होती है। किन्तु हमारे देश की तो दशा ही विचित्र है। जिसने क़ुरान के दो पन्ने कण्ठस्थ कर लिए, वही अपने को ज्ञानियो में अग्रणी समझने लगता है—उसके अहङ्कार का ठिकाना नही रहता। हमारे अभिमान के लिए इससे श्रेष्ठतर और कोई पदार्थ नही। हम सारे दिन अङ्गरेज़ों के पाद-प्रहार और गालियो की बौछार से अपमानित और तिरस्कृत होते है, किन्तु रात्रि के पापमय एकान्त में अपनी अज्ञ और मूर्खा प्रेयसी के आगे हमें अपनी बहादुरी की डींग मारने में शर्म नहीं आती! शास्त्र का दो-एक श्लोक कण्ठस्थ कर लेने मे ही हमारे अभिमान को शान्तिदायिनी तृप्ति का अनुभव होने लगता है! जब तक यह तामसिक वातावरण बना रहेगा, तब तक हमारे देश के लिए ज्ञान का द्वार बन्द है।"

"महाशय, आपकी युक्तियाँ मेरी समझ मे नही आतीं, मेरा तो विश्वास है कि बाल्यावस्था के विवाह ने ही ताँतिया का जीवन नष्ट किया है। बीस वर्ष की अवस्था में एक कामिनी का बोझ उसके गले मे बाँध दिया गया और पचीस वर्ष की अवस्था मे बेचारा दो बच्चो का बाप बन गया! परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता ने अकाल में ही उसकी उच्चाभिलाषाओ पर पानी फेर दिया! वह सब प्रकार निस्तेज और पुरुषत्व से हीन हो गया। उसके वर्त्तमान अधः-पतन का एकमात्र कारण उसके बाल्यावस्था का वीर्यनाश है।"

"बेटा, इसमें कोई शक नहीं कि ताँतिया के असामयिक विवाह ने ही उसको सब प्रकार तेज-शून्य और वीरत्व-विहीन बनाया है। मै भी इसे स्वीकार करता हूँ कि उसकी बाल्यावस्था की सन्तानोत्पत्ति ने ही उसे मनुष्यत्व और पुरुषत्व से पतित कर दिया है, नहीं तो वह आत्म-सम्मान खोकर बीस-पच्चीस रुपए की एक नौकरी के लिए मारा-मारा न फिरता। तो भी विचार करने की बात यह है कि यदि बाल्यावस्था मे उसका विवाह न हुआ होता, उसका तेज और पुरुषत्व अकाल में ही नष्ट न हो गया होता, तो क्या ब्रिटिश सरकार उसे कप्तान या कर्नल के पद पर नियुक्त कर देती ? उसके तेज और वीरत्व को यदि सन्मार्ग मे परिचालित होने का अवसर न दिया जाता, तो वह कुमार्ग का पथिक अवश्य बन जाता। उसकी विशाल महत्वाकांक्षाएँ उसे दस्यु-वृत्ति ग्रहण करने के लिए बाध्य करतीं—ताँतिया देश में एक बड़ा भारी डाकू होता। अङ्गरेज़ी सरकार की कुटिल नीति, हमारे देशवासियो के तेज और वीरत्व आदि गुणों को विकसित होने का मार्ग नहीं देती। और ऐसी अवस्था में बाल-विवाह की प्रचलित प्रथा को सर्वथा निराधार और निन्दित नही ठहराया जा सकता। बाल-विवाह ने ताँतिया का तेज और उच्चाभिलाषा नष्ट कर उसे कुमार्गगामी होने से बचाया है। ताँतिया अफरीका का दुर्दान्त सिंह था, किन्तु बाल-विवाह ने उसे पालतू बिल्ली बना दिया !"

इस बार युवक ने पैंतरा बदल कर वृद्ध के ऊपर एक नया तर्क-बाण छोड़ा—"महाशय, अङ्गरेजी गवर्नमेण्ट हमें सैनिक विभाग के उच्च-पदों से वञ्चित रखती है, क्या इसी कारण हमारे तेज, वीरत्व, प्रतिभा और कार्य-कौशल के उत्कर्ष-साधन का कोई उपाय नहीं रह जाता? ताँतिया की प्रतिभा और कार्यक्षमता यदि देश-सेवा के किसी अन्य कार्य-क्षेत्र में नियोजित होती, तो क्या इससे हमारे राष्ट्र का मङ्गल न होता? वर्त्तमान अवस्था में देश की उन्नति के लिए समाज-सुधार और धर्म-संस्कार के प्रशस्त पथ हमारे सामने विद्यमान हैं। यदि ताँतिया समाज-सुधार का काम करता तो क्या इससे देश की सेवा न होती? वास्तविक बात तो यह है कि असामयिक विवाह ने उसे चौपट कर दिया। प्रकृत वीर की भाँति शुभ-कार्य में जीवन समर्पित करने की यदि किसी की इच्छा हो तो क्या संसार मे कार्य-क्षेत्र का अभाव है?"

"बेटा! 'समाज-सुधार', 'धर्म-संस्कार' 'शुभ कार्यों में आत्म-विसर्जन' आदि शब्द बङ्गदेशीय ब्रह्मसमाजियों के मुख से प्रायः सुनने में आते हैं। शायद तुम्हारे देश की माताएँ प्रसव के ही समय सन्तति को इन शब्दों को रटा दिया करती हैं। समाज-सुधार किसी उचित प्रणाली के अनुसार कार्य करने से होगा अथवा केवल 'सुधार' 'सुधार' कह कर चिल्लाने से होगा, यह तो तुम्हें मालूम

नहीं। जब तक समाज के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के स्वभाव-सिद्ध गुणों का पूर्णरूप से परिस्फुटित होने का सुअवसर नहीं दिया जायगा, तब तक समाज-सुधार की चर्चा मनोरञ्जक गल्प के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती। नाना-प्रकृति-विशिष्ट नाना व्यक्तियों की सम्मेलन-भूमि पर ही समाज-शरीर की रचना होती है। प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक विशेष अङ्ग है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक प्रतिभा के चरम विकाश में ही सामाजिक उन्नति का तत्व निहित है। ताँतिया ने बाल्य-काल में ही अपनी सामरिक स्पृहता का परिचय दिया था, इसलिए युद्ध-कला के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय में उसका पारङ्गत होना कठिन था। अङ्गरेजी सरकार की वर्तमान नीति ताँतिया के समान पुरुष-रत्नों को अपनी आभा छिटकाने का अवसर न देकर हमारे समाज-सुधार का मार्ग बन्द कर देती है। शासन-संस्था के उद्देश्य और प्रबन्ध पर ही देश की उन्नति का सारा दारोमदार रहता है। बङ्गालियों की भाँति लम्बी-चौड़ी वक्तृताएँ झाड़ कर समाज का उपकार करने की क्षमता ताँतिया में नहीं है। किन्तु भीष्म की भाँति वीरता दिखा कर वह संग्राम-क्षेत्र में सदा के लिए धराशायी हो सकता है। उसका दृष्टान्त इस अधःपतित, निश्चेष्ट और मृतप्राय हिन्दू-जाति की नाड़ियों में विद्युत की धारा बहा देगा। मैं बङ्गालियों की लम्बी-चौड़ी वक्तृताओं का विरोधी नहीं।

एक बारगी निश्चेष्ट होकर बैठ जाने की अपेक्षा तो अन्तःमुख से ही वीरता प्रकट करना अच्छा है! किन्तु जब तक मनुष्य के मन में सामरिक तेज उद्दीप्त नही होता, तब तक मनुष्य देश-सेवा के विराट् यज्ञ मे कभी जीवन की आहुति नहीं दे सकता। भीरुता और कायरता ही सब पापों की जननी है।"

युवक ने फिर पूछा—यह तो मैं मानता हूँ कि सामरिक शिक्षा के अभाव मे हमारे देश के लोग भीरु हो गए हैं, किन्तु बार-बार 'स्वाधीनता-स्वाधीनता' कह कर आप व्यर्थ समय क्यों नष्ट करते हैं? यदि ताँतिया ने किसी तरह लड़-भिड़ कर अङ्गरेजों को देश से बाहर भी कर दिया तो क्या लम्पटों के सरदार नाना साहब और चोरी के माल के हिस्सेदार दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह सिंहासन पर बैठ कर देश को निहाल कर देंगे? अङ्गरेज सैकड़ों अत्याचार करते हुए भी लम्पट नाना और चोरों के साथी बहादुरशाह की अपेक्षा सौ गुना अच्छे हैं।

"बेटा, तुम तो वही भ्रमात्मक बातें बार-बार दुहराते हो, दूसरों की बात तो सुनते ही नहीं। क्या मैंने ताँतिया को इसलिए युद्ध करने को कहा है कि इससे नाना साहब अथवा दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह का उपकार होगा? नाना और बहादुरशाह इस जन्म में अब सिंहासन पर नहीं बैठ सकते। नैतिक बल के अतिरिक्त आज तक किसी ने

बाहुबल से राज्य का शासन नहीं किया। अङ्गरेजो का राज्य, उनमें अनेक दोषों के होते हुए भी, नैतिक बल के आधार पर टिका हुआ है। इस समय राज्य-लक्ष्मी उसी के अधिकार मे जायगी, जो अङ्गरेजो की अपेक्षा राज्य का प्रबन्ध अधिक उत्तम रीति से कर सकेगा। मै अच्छी तरह जानता हूँ कि ताँतिया अङ्गरेजो को देश से नहीं निकाल सकेगा।"

वृद्ध के इतना कहते ही युवक ने उन्हें और कुछ कहने का मौक़ा न देकर अधीर भाव से कहा—तब आप 'स्वाधीनता-स्वाधीनता' कह कर क्यों व्यर्थ वाक्य-व्यय करते हैं? बङ्गाली लोग 'समाज-सुधार' समाज-सुधार कह कर चिल्लाते है तो महाराष्ट्र लोग 'स्वाधीनता-स्वाधीना' कह कर प्रलाप करते हैं। व्यर्थ बकवाद चाहे बङ्गाली का हो, चाहे महाराष्ट्र का, वह निरर्थक वाक्याडम्बर ही है।

युवक की अधीरता से वृद्ध कुछ विरक्त होकर बोले—तुम तो सारी बात सुनने के पहले ही बीच में बात काट कर बोल उठते हो, इससे मै अपने मन का भाव भली-भाँति व्यक्त नही करने पाता। 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ क्या है? क्या हमारे देश का एक आदमी राजा हो जाय तो हम लोग स्वाधीन हो जायँगे? हमारा ही भाई देश का सम्राट् बन कर हमें लूटने लगे तो क्या हम अपने को स्वाधीन कह सकेंगे? विदेशी सरकार की अधीनता में भी

प्रजा पूर्ण स्वाधीन हो सकती है। अङ्गरेज यदि वेण्टिङ्क अथवा मेटकाफ़ की प्रतिपादित उदार नीति से भारतवर्ष का शासन करने लगे तो हम अङ्गरेज़ी सरकार की छत्र-च्छाया में भी पूर्ण स्वाधीन हो सकते हैं—सुखी और स्वच्छन्द जीवन व्यतीत कर सकते हैं। उदार नीति के पोषक अङ्गरेज़ों ने सदा इस बात की चेष्टा की है कि भारत-वासियों को उनके सभी राजनीतिक स्वत्व प्रदान किए जायँ, किन्तु अङ्गरेज़ी सरकार उनके सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करती। इस देश के लोगों को शासन और सेना-विभाग के उच्च पदों पर नियुक्त करने से किसी सुदूर भविष्य में उसे अपने अस्तित्व पर धक्का पहुँचने का भय रहता है। इसी निर्मूल आशङ्का के कारण वह सदा हमारी शारीरिक और नैतिक शक्तियों का ह्रास करने में ही अपने को सुरक्षित समझती है। हमारी दुर्बलता उसका बल और हमारी विनाश-धारा उसकी समृद्धि का साधन बन जाती है। इस स्वार्थान्ध अविश्वास ने ही हमें सभी मानवीय अधिकारों से वञ्चित कर पशु-तुल्य बना दिया है। बेटा, ताँतिया का बलिदान अङ्गरेज़ों को हमारे साथ उदार नीति का बर्ताव करने के लिए बाध्य करेगा—नाना का विलास अथवा बहादुरशाह की भोगलिप्सा तृप्त करने के लिए नहीं। ताँतिया पराजित होकर भी हमारे हृदयों में त्याग का बीज बो जायगा, उसके रक्त की बूँदों से असंख्य

ताँतिया उत्पन्न होंगे और वे अनन्तकाल तक स्वाधीनता की पताका फहराते रहेंगे। जब तक अङ्गरेजी सरकार हमें उदार नीति का सन्देश नहीं सुनावेगी तब तक ताँतिया की पुण्य-स्मृति हमें विश्राम नहीं लेने देगी।

इस बार युवक ने लज्जा और विनय के साथ कहा—महाशय, मेरा अपराध क्षमा करें। आपके पूज्य चरणों में मेरी अनन्य भक्ति और प्रगाढ़ श्रद्धा है, आपके सम्भाषण में बाधा देकर मैंने बड़ा अनुचित कार्य किया है। किन्तु मुझे शङ्का यह होती है कि ताँतिया नाना साहब का एक नौकर है, उसमें कितनी विद्या और बुद्धि है, यह आप से छिपा हुआ नहीं है। उसने आप से केवल कुछ साल तक थोड़ी सी संस्कृत पढ़ी है और केवल संस्कृत-ग्रन्थों के पाठ से मनुष्य कहाँ तक मनुष्य बन सकता है, यह आप जानते ही हैं। ताँतिया यदि युद्ध भी करेगा तो अपनी सेवा के पुरस्कार में नाना से कुछ द्रव्य पाने के लोभ से ही। उदार शासन और कुटिल राज-नीति किसे कहते हैं, यह वह बेचारा जानता भी नहीं होगा। आधुनिक विज्ञान, पाश्चात्य राजनीति और नवीन सभ्यता के मूल तत्वों का गहरा अध्ययन किए बिना कोई संस्कृत-पुस्तक के ढेर का ढेर उदरस्थ कर जाने पर भी इन बातों को नहीं समझ सकता। ताँतिया के जैसा अशिक्षित मनुष्य देश की शासन-प्रणाली में उदार नीति का अवतरण कराने के लिए युद्ध करने जा रहा है, यह बात किसी दूसरे के मुँह से सुनने

पर मै पागल कह कर उसका मज़ाक़ उड़ाता। किन्तु आप में मैं पितृ-तुल्य भक्ति रखता हूँ। आपकी बातों का प्रतिवाद करने में भी मुझे सङ्कोच होता है। आपके चरणों मे मस्तक रख कर मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी बात मानिए और मेरे साथ झाँसी चलिए। ताँतिया को नाना के संसर्ग से मुक्त कीजिए। यदि अङ्गरेज़ लोग नाना और अज़ीमुल्ला को प्राण-दण्ड भी दे दें तो देश का कोई अपकार न होगा, इनके कलुषित कर्म ने देश को कलङ्कित कर दिया है। अङ्गरेज़ों में सैकड़ों दोष होते हुए भी उनका नैतिक चरित्र हमसे उन्नत है, इसे तो आप भी स्वीकार करते हैं। इसलिए हम लोग अङ्गरेज़ों को पराजित नहीं कर सकते। यदि वर्त्तमान विद्रोह बहुत दिनों तक चलता रहा तो इससे देश की बड़ी हानि होगी। विद्रोह का दमन करने के लिए उन्हें इङ्गलैण्ड से सेना मँगानी पड़ेगी और विद्रोह की शान्ति के बाद उन्हें सेना की संख्या भी बढ़ानी पड़ेगी। वे लोग यदि सब देशी सिपाहियों को बरख़ास्त न भी कर दें तो उनकी संख्या अवश्य कम कर देंगे। भारतीय राजकोष पर एक विशाल अङ्गरेज़ी सेना के व्यय का भार पड़ेगा और प्रजा पर नित्य नए-नए टैक्स लगा कर उसका रक्त चूसा जायगा। प्रजा दुखी-दरिद्र और बरबाद हो जायगी। संक्षेप में ताँतिया के युद्ध का यही परिणाम होगा। आप इस युद्ध को रोकने की चेष्टा कीजिए। इससे प्रजा का मङ्गल नहीं, देश का अकल्याण ही होगा।

युवक की बात सुन वृद्ध ने मुस्कराते हुए कहा—बेटा, ताँतिया विद्या में परिडत और बुद्धि में कुशाग्र न होते हुए भी ईश्वरीय इच्छा का दूत बन कर इस विप्लव-यज्ञ में किसी महान् उद्देश्य की पूर्त्ति करेगा। मै पहले ही कह चुका हूँ कि यह विद्रोह मनुष्य की रचना नहीं, ईश्वर की इच्छा है। अशान्ति और युद्ध की आड़ में शिव की मङ्गलमयी शक्ति अपनी कल्याण-कामना को सिद्ध कर रही है, इससे देश का अहित कभी न होगा। युद्ध के भविष्य-फल की भयङ्कर कल्पना करके तुम्हें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। अङ्गरेज़ लोग बहुत बुद्धिमान् है, वे दूरदर्शी और नीति-कुशल हैं; तुम बङ्गालियो की भाँति केवल वाक्य-कुशल नहीं। वे विद्रोह के कारणों की तह तक घुसेंगे, उन्हे यह जानने में विलम्ब न लगेगा कि विद्रोह का मुख्य कारण हमारी कुटिल नीति है, धर्मनाश की आशङ्का नहीं। वे अपने राज्य की रक्षा के लिए बेरिटङ्क और मेटकाफ की उदार नीति का अवलम्बन करेंगे, भारतवासियो को राजनैतिक क्षेत्र में अपनी बराबरी का अधिकार प्रदान करेंगे, उन्हें भी शासन के ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त करेंगे, केवल अङ्गरेज़ी सेना की संख्या बढ़ा कर अपने को सुरक्षित बनाने का प्रयत्न नहीं करेंगे। अङ्गरेज़ी सेना दस लाख होने पर भी बीस करोड़ भारतवासियों को अपने अधिकार में नहीं रख सकेगी। विद्रोह के बाद उनकी नीति में नैतिक बल की प्रधानता

होगी। यदि ताँतिया वीरों की भाँति लड़ते हुए युद्धभूमि मे प्राण दे सका तो वे यह भी समझ जायँगे कि ताँतिया टोपी के समान लोगों को सैनिक विभाग में उच्च पद दिए बिना भारत में निर्विघ्न शासन करना असम्भव है। परमेश्वर ने ताँतिया को वीर-शिरोमणि नेपोलियन की तरह असाधारण वीरता प्रदान की है, किन्तु इस नरक-तुल्य देश में उसके सब सद्गुणों और शक्तियों का विकाश होने के पहले ही ह्रास हो गया। उसकी आत्मा पहले ही मर चुकी है। इस समय मृत्यु के बाद की यन्त्रणा भोगने के लिए शरीर-मात्र बाक़ी है। त्रिभुवन-विजयी धनुर्धारी कर्ण को जिस प्रकार तीन शत्रुओं ने मिल कर मारा था, उसी प्रकार ताँतिया के भी इस संसार मे तीन शत्रु हैं—घृणित हिन्दू-समाज उसका पहला शत्रु है, माता उसका दूसरा शत्रु और अङ्गरेज गवर्नमेण्ट तीसरा शत्रु है। समाज और माता के अनुरोध से ताँतिया को व्याह करना पड़ा और अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट की कुटिल राजनीति का शिकार होकर उसे सैनिक विभाग के ऊँचे पद से वञ्चित होना पड़ा, नहीं तो आज यह सेना-विभाग का एक उज्ज्वल रत्न होता।

"बेटा, जो लोग प्रकृति से अनन्त शक्तियों का उपहार पाकर भी, प्रतिकूल परिस्थितियों के थपेड़े खाकर अपना सारा जीवन दुख-दैन्य और दारिद्र्य की कण्टकाकीर्ण मरुभूमि में बिता देते हैं, वे इस संसार में पूर्वजन्म के किसी पाप

का दण्ड भोगने के लिए ही उत्पन्न होते हैं। ताँतिया युद्ध में मर कर कम से कम इस नरक की यन्त्रणा से तो मुक्ति पा जायगा। एक दिन मरना अवश्यम्भावी है। स्वदेश के कल्याण और स्वजाति की सेवा के लिए संग्राम-क्षेत्र में जीवन विसर्जित करने की अपेक्षा मनुष्य के लिए और कौन सी मृत्यु अधिक वाञ्छनीय हो सकती है ? मै वृद्ध हो गया हूँ, अस्त्र-विद्या में मेरा प्रवेश नही, नहीं तो मैं भी ताँतिया की सेना का एक सैनिक बन कर अपने भाग्य को सराहता, देश के लिए इस जीर्ण-शीर्ण शरीर को समर्पित करके अपने जीवन को कृतार्थ मानता। रोगों से ग्रसित होकर घुल-घुल कर मरना भीरु, कायर और नपुंसको का काम है। किन्तु पुण्यात्मा लोग तो शत्रु के आघातों से समर-क्षेत्र मे प्राण त्याग कर सदेह स्वर्ग जाते हैं।"

युवक वृद्ध की बातो से निरुत्तर होकर कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा। प्रायः पन्द्रह मिनट के बाद बोला— आपने जो कुछ कहा, सब ठीक है; किन्तु नाना और अजी-मुल्ला से विलग रह कर ताँतिया का लड़ना क्या ठीक न होगा ? ये लोग तो बड़ी निर्दयता दिखा रहे हैं।

"नाना और अजीमुल्ला से अलग होकर ताँतिया सिपा-हियो को किस प्रकार अपने अधीन कर सकेगा ?"

"क्या नाना और अजीमुल्ला के साथ ताँतिया को भी अङ्गरेजों से निष्ठुर व्यवहार नहीं करना होगा ?"

"सम्मुख संग्राम में अग्रसर होने पर सभी कार्य ताँतिया के आदेशानुसार होंगे। उस समय नाना और अज़ीमुल्ला कुछ भी न कर सकेंगे। इन लोगों ने अपने गले की फाँसी अपने ही हाथों से तैयार की है। ये न घर के रहेंगे न घाट के। यदि कानपुर के सिपाहियों के विद्रोही होते ही नाना सभी अङ्गरेज़ों को स्त्रियों और बच्चों सहित कानपुर से चले जाने देता तो अङ्गरेज़ लोग उससे सन्धि का प्रस्ताव कर सकते थे, वह अपने पिता की वृत्ति भी पा जाता और सबका मित्र बना रहता। अन्ततः आज प्रातःकल यदि घोर विश्वासघात न होता, नौकारोहण के समय असहाय अङ्गरेज़ों की हत्या न की जाती, तो नाना साहब की परिस्थिति इतनी खराब न होती। कम से कम छः मास तक तो अङ्गरेज़ यहाँ पर आक्रमण करने की बात भी न सोचते। इतने में नाना अपनी सेना सङ्गठित कर लेता।

"किन्तु अब अङ्गरेज़ इन गीदड़ों से सन्धि न करेंगे। वे इनसे हत्याकाण्ड का बदला लेंगे। आख़िर मनुष्य मनुष्य के साथ ही मित्रता कर सकता है, सियार व कुत्तों से नहीं। विद्रोहियो की निष्ठुरता से स्वयं उन्हीं का अनिष्ट हुआ है। अब अङ्गरेज़ी सेना शीघ्र ही यहाँ आक्रमण करेगी। उस समय नाना साहब और अज़ीमुल्ला दुम दबाकर देश से भाग जायँगे। अङ्गरेज लोग परिशोध लेने के लिए कानपुर में क़त्लेआम करेंगे, दोषी-निर्दोष किसी का विचार न किया

जायगा, सबको जङ्गली जानवरो की तरह तलवार के घाट उतरना पड़ेगा। प्रतिहिसा अङ्गरेजो का जातीय धर्म है। वे अपनी जाति के स्त्री-पुरुष तथा बालको की हत्या के लिए इस देश की शतगुन और सहस्रगुन जन-संख्या का संहार करेंगे।"

वृद्ध की बात समाप्त होते ही ब्राह्मण ने आकर सूचना दी—"महाराज, भोजन तैयार है।" दोनों आदमी उठकर भोजन करने के लिए दूसरे कमरे में चले गए।



सोलहवाँ परिच्छेद

नारायण त्र्यम्बक शास्त्री



थम तीन अध्यायों को पढ़ कर पाठकगण सम्भवतः समझ गए होंगे कि ये वृद्ध और युवक कौन हैं। वृद्ध का नाम नारायण त्र्यम्बक शास्त्री है। यह झाँसी की रानी गङ्गाबाई के पिता हैं। युवक वही योगिराज हैं, जिनसे पाठकगण झाँसी की दोनों रानियों—लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई—के वार्तालाप में परिचित हो चुके हैं। युवक ने भारत के प्रायः प्रत्येक प्रदेश में भ्रमण किया है, कहीं के लोग इन्हे संन्यासी समझते हैं और कहीं ये योगिराज नाम से पुकारे जाते हैं। वेश और भावभङ्गी से ये मद्रासी जान पड़ते हैं, किन्तु इनकी वास्तविक जन्मभूमि का पता, शायद त्र्यम्बक शास्त्री और गङ्गाबाई के अतिरिक्त, संसार में और किसी को नहीं। यह

कभी किसी को अपना परिचय नहीं देते और इसीलिए इनकी जाति और वर्ण भी अज्ञात है।

इस समय नारायण त्र्यम्बक शास्त्री की अवस्था बयासी वर्ष की हो चली है, किन्तु अब भी उनके शरीर में विलक्षण शक्ति है। उनकी पाचन क्रिया पहले की अपेक्षा बहुत मन्द हो गई है, तथापि एक बेला के भोजन में जब तक वह दाल, तरकारी, रोटी, दूध इत्यादि सब मिला कर चार-पाँच सेर नहीं उड़ा जाते, तब तक उनका जठरानल शान्त नहीं होता। वह कोलाहल-शून्य निर्जन स्थान में रहना अधिक पसन्द करते हैं, इसीलिए बाजीराव की स्त्री और ताँतिया ने इस एकान्त शिव-मन्दिर में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया है। एक रसोइया और दो नौकर उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए लगे हुए हैं।

नारायण त्र्यम्बक शास्त्री सन् १७९२ ई० में अठारह वर्ष की अवस्था में पहले-पहल बम्बई-सरकार की सेवा में एक छोटे से पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने बालकपन से ही अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में न्याय, सत्य, सारल्य, औदार्य और दया का परिचय दिया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तत्कालीन देशी और अङ्गरेज़ कर्मचारियों का नैतिक जीवन इतना पतित था कि झूठ बोलना और रिशवत लेना उनके लिए साधारण सी बातें थीं। उनके कोष मे उचित और अनुचित, दोनों शब्दों का एक ही अर्थ था। इस प्रकार के दूषित वातावरण में रहते हुए भी

नारायण त्र्यम्बक शास्त्री कभी रजत के रूप और स्वर्ण की शक्ति पर मोहित न हुए, उन्होंने अर्थोपार्जन के लिए अपने जीवन में कभी सत्य को तिलाञ्जलि न दी। वह लगातार दस वर्षों तक थोड़े से वेतन पर सन्तुष्ट रह कर कई छोटे-छोटे पदों पर काम करते रहे। कम्पनी के कर्मचारी बेईमानी और घूसखोरी में अपना सानी नहीं रखते थे। वह ऐसे ही आदमियो को ऊँचे पदों पर स्थापित करते थे, जो रुपया देकर उनकी कृपा खरीद सकता था। त्र्यम्बक शास्त्री जैसे सच्चरित्र लोगों के लिए उनकी प्रसन्नता का पात्र होना कठिन ही नहीं, अत्यन्त कठिन था। अङ्गरेज़ी सरकार के माथे से यह कलङ्क आज तक नहीं मिट सका। आजकल के अङ्गरेज़-कर्मचारी रिशवत मे चाँदी के टुकड़े तो नहीं लेते, पर ख़ुशामद-पसन्द होते हैं अव्वल दर्जे के। उनका ख़ुशामद-प्रेम उनके अधीनस्थ कर्मचारियों को आत्म-सम्मान से हीन और मनुष्यत्व से रहित बना देता है। फल यह होता है कि उनके दरबार में अच्छे आदमियों की पूछ नहीं होती—छली, प्रपञ्ची और ढोंगी लोग ही शासन-संस्था के सर्वेसर्वा बन जाते हैं।

सत्य और न्याय की विजय अवश्य होती है—चाहे अङ्गरेज़ी सरकार हो, चाहे मुसलमानी अमलदारी। साधु-महात्माओं को प्रारम्भ में प्रायः कष्ट भोगना पड़ा है, किन्तु किसी त्रिकाल-व्यापी और अखण्ड नियम के अनुसार अन्त में उनकी पूजा अवश्य हुई है।

दस वर्षों तक नारायण त्र्यम्बक शास्त्री के वेतन मे कोई वृद्धि न हुई। उन्हे केवल दस रुपया मासिक लेकर सन्तुष्ट होना पड़ा। सन् १८०२ अथवा १८०३ ई० में मराठा-युद्ध के समय वह कर्नल आर्थर वेलेज़ली की सेना के कमिसरियट विभाग में पन्द्रह रुपए मासिक पर नियुक्त हुए। सेना के लिए खाद्य तथा अन्य आवश्यक पदार्थ इसी विभाग के द्वारा ख़रीदे जाते थे। अतः इस विभाग के कर्मचारियो को सरकारी रुपया हड़पने का सबसे अधिक सुयोग मिलता था। किन्तु सच्चरित्र त्र्यम्बक शास्त्री अनुचित उपायो मे कभी एक पैसा भी न लेते थे। वह शीघ्र ही अन्य कर्मचारियों की आँख का काँटा बन गए। प्रधान अङ्गरेज़ अफ़सर के पास उनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित होने लगे। इन्हीं गड़बड़ियों में एक दिन संयोगवश प्रधान सेनापति कर्नल आर्थर वेलेज़ली से उनका परिचय हो गया।

पाप और दुराचार के कारण जिनके विवेक की आँखे बन्द होगई हैं, छल और कपट ने जिनके मन-मुकुर को अस्वच्छ बना दिया है, वे साधु-महात्माओ को नहीं पहचान सकते; किन्तु प्रकृत महापुरुष मनुष्यों का स्वभाव पहचानने में कभी भूल नहीं करते। चरित्रवान् व्यक्ति चाहे जिस वेश में उनके पास जाय, उनसे आदर और सत्कार पाता है। पाठकों ने सम्भवतः कर्नल आर्थर वेलेज़ली का नाम सुना होगा। यह महाशय आज की घटना के बारह वर्ष बाद

जगत्प्रसिद्ध अलौकिक शक्तिशाली, महावीर नेपोलियन बोनापार्ट को वाटर्लू के मैदान में पराजित करके अक्षय कीर्ति के स्वामी हुए थे। पीछे इन्हें ड्यूक ऑफ वेलिङ्गटन की उपाधि मिली और यह इसी नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं। इनकी दृष्टि नारायण त्र्यम्बक शास्त्री पर पड़ी और ये उसी समय समझ गए कि इस युवक शरीर में एक सच्चे मनुष्य का हृदय छिपा हुआ है। कम्पनी के कर्मचारी त्र्यम्बक शास्त्री को द्वेषपूर्ण दृष्टि से देखा करते थे। ये कर्मचारी चोर थे, और चोरों के लिए साधु की प्रतिष्ठा करना असम्भव है। महामना कर्नल वेलेजली त्र्यम्बक शास्त्री में बड़ी श्रद्धा रखने लगे और उसी समय से शास्त्री जी के भाग्य का उदय आरम्भ हुआ।

मराठा-युद्ध के बाद जिस समय कर्नल आर्थर वेलेजली भारतवर्ष से बिदा होने लगे, उस समय उन्होंने अपने परम मित्र मेजर मालकम से कहा था कि भारतवर्ष के काले लोगों में भी मनुष्य का हृदय है, इस बात में मैं सदा सन्देह किया करता था? मेरा अनुमान था कि दया, धर्म, कृतज्ञता, सत्य-प्रियता, चिन्ताशीलता आदि मानव-जीवन की समस्त सुन्दरता का भारतवासियों में एकान्त अभाव है। किन्तु नारायण त्र्यम्बक शास्त्री का आचरण देखकर मेरा भ्रम दूर हो गया। काले लोग भी मनुष्य हैं, इसे अस्वीकार करने का मेरे पास अब कोई कारण न रहा। अन्त में मेजर

मालकम से नारायण त्र्यम्बक शास्त्री को कम्पनी की सरकार में कोई ऊँचा पद देने का अनुरोध कर वह विलायत चले गए।

कम्पनी की नौकरी करते हुए नारायण त्र्यम्बक शास्त्री ने थोड़ी सी अङ्गरेजी सीख ली थी। विदेशी भाषा की ओर उनकी अभिरुचि देखकर मेजर जॉन मालकम बहुत सन्तुष्ट हुए और जब वह मैसूर के रेजिडेण्ट नियुक्त हुए तो उन्होंने एकबारगी दो सौ रुपए मासिक देकर नारायण त्र्यम्बक शास्त्री को अपना नेटिव असिस्टेण्ट बना लिया। इस पद पर कार्य करते हुए कभी-कभी शास्त्री जी को स्मृति-शास्त्रों की व्यवस्था देकर मद्रास की बड़ी अदालत की सहायता करनी पड़ती थी। कई वर्ष के बाद मालकम साहब फारस देश के राजदूत बनाए गए। उस समय शास्त्री जी ने भी मैसूर छोड़ दिया और पहले की अपेक्षा एक अधिक ऊँचे पद पर बम्बई-सरकार की सेवा करने लगे।

पेशवा बाजीराव की मृत्यु के बाद सन् १८१७ ई० में मराठी-इनाम-दफ्तर की जाँच के लिए एक कमीशन बैठा। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री चार सौ रुपए मासिक वेतन पर इस कमीशन के नेटिव असिस्टेण्ट नियुक्त हुए। इसके बाद कई वर्षों तक राजस्व-विभाग का काम करते रहे। अन्त में सन् १८४३ ई० मे उन्होंने पेन्शन ले ली। उस समय से आज तक पेन्शन पा रहे हैं। बीच में एक बार महाराजा सींधिया

ने उन्हें अपना दीवान बनाना चाहा था, किन्तु वह इस पद को ग्रहण करने के लिए तैयार न हुए।

जब तक मनुष्य के हृदय में तत्वज्ञान की जिज्ञासा—सत्य को जानने की चिन्ता—नहीं उत्पन्न होती तब तक कोरे पुस्तकों के पाठ, शास्त्रों के अध्ययन और विज्ञान की चर्चा से कोई लाभ नहीं होता। इससे हृदय के कुसंस्कार और मन की दुर्बलता दूर नहीं होती। बङ्गाल की वर्तमान अवस्था इसका जीता-जागता उदाहरण है। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री मे सत्य के अन्वेषण और ज्ञान-प्राप्ति की अदम्य अभिलाषा उत्पन्न हो गई थी। वह बहुत छोटी उमर से ही जीवन के भिन्न-भिन्न प्रश्नो पर अपना स्वतन्त्र विचार रखते थे। जाति-पाँति की प्रथा से उन्हें बड़ी घृणा थी। आजकल के शिक्षित कहलाने वाले युवको की भाँति उनकी नैतिकता का दिवाला नहीं पिट चुका था। वह प्रकाश्य रूप से अङ्गरेज और मुसलमानों के साथ खाने-पीने लगे। वह समाज के दण्ड से भय नही करते थे और इसी लिए अपने आचरण को छिपाने की चेष्टा भी नहीं करते थे। उनके जाति-भाइयों मे इतना साहस न था कि उन्हें समाज-च्युत कर सकें; क्योंकि उनमें से अनेक का जीवन उनकी आर्थिक सहायता पर निर्भर था। दूसरी बात यह थी कि शास्त्री जी की अटल सत्यनिष्ठा और ज्वलन्त तेज का विरोध करना भी कोई साधारण काम न था। कुछ ब्राह्मण पण्डित कभी-कभी

भूकने अवश्य लग जाते थे, किन्तु सामने जूठा पत्तल पाते ही, वे कुत्तो की भाँति दुम हिला कर चाटने लगते थे। शास्त्री जी की आन्तरिक इच्छा इन ब्राह्मणो को कभी कुछ देने की न होती थी, किन्तु माता के अनुरोध के सामने वह हार मानते थे। उनकी माता सामाजिक वहिष्कार का अपमान सहन न कर सकती थीं और इसीलिए वह शास्त्री जी को इन ब्राह्मण पण्डितो का मुँह बन्द रखने के लिए वाध्य करती थीं।

युवावस्था में त्र्यम्बक शास्त्री की पाचन-शक्ति अद्भुत थी। वह एक बेला में चावल, दाल, तरकारी, रोटी, दूध इत्यादि सब मिला कर दस सेर से कम न खाते थे। डेढ़-दो घण्टे में उनका भोजन समाप्त होता था। उनका शरीर कुछ स्थूलकाय था, इसलिए आधे पहर तक आसन पर वैठ कर रोटी-दाल के साथ कुश्ती करने मे उन्हें बड़ा कष्ट होता था। वह अङ्गरेजों की तरह टेवुल-कुर्सी पर वैठ कर खाना खाने लगे। फिर क्या था, अपने को शिक्षित और सभ्य समझने वाले लोगों ने उनका मज़ाक़ बनाना शुरू किया। 'अङ्गरेज़ों का नकल करने वाला' कह कर लोग उनका उपहास किया करते थे। किन्तु त्र्यम्बक शास्त्री लोक-निन्दा से विचलित होने वाले पुरुप न थे। वह कहा करते थे कि आजकल के शिक्षित लोग भी तो अङ्गरेजो की नक़ल करते हैं। हाँ, मुझमें और उनमें इतना भेद अवश्य है कि मैं

अङ्गरेजों की अच्छी बातें सीखने की चेष्टा करता हूँ और वे लोग उनके पाप और कुकर्म, सुरापान और व्यभिचार को अपनाते हैं।

शास्त्री जी योगिराज को लेकर भोजन करने के लिए मन्दिर के एक दूसरे कमरे में गए। उस कमरे में प्रवेश करते ही योगिराज के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। शास्त्री जी का भोजन टेबुल के ऊपर सजा हुआ है। उसमें चार-पाँच मुरगी के अण्डे भूने हुए रक्खे हैं। मटनचॉप का भी प्रबन्ध है, पूड़ियों का तो मानों पहाड़ ही लगा हुआ है।

योगिराज ने विस्मय के स्वर में पूछा—महाशय, शिव के मन्दिर में भी आपका यह सब चलता है? मैंने तो सुना था कि ताँतिया बड़ा कट्टर हिन्दू है। क्या उसी ने आपके लिए यह प्रबन्ध किया है? क्या बाजीराव की स्त्री यह सब बातें जानती हैं?

शास्त्री जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—बच्चा, बाजी-राव की स्त्री ही क्यों, बाजीराव की स्त्री के बाबा तक इन बातों को जानते हैं। और को कौन कहे, स्वयं बाजीराव त्र्यम्बक शास्त्री के साथ बैठकर भोजन किया करते थे।

योगिराज ने फिर पूछा—क्या ताँतिया इस विषय में कुछ आपत्ति नहीं करता? मैं तो समझता हूँ, यह सब देख कर आपके प्रति उसकी श्रद्धा घट जायगी। शिव के पवित्र मन्दिर में यह अत्याचार!

"इसमें अत्याचार क्या है? और ताँतिया की ही श्रद्धा क्यों कम हो जायगी? उसी ने तो मेरे लिए इन सब वस्तुओं का प्रबन्ध किया है। तीन दिनों तक ढूढ़ने पर भी जब कहीं एक अच्छा रसोइया न मिला, तो ताँतिया ने बीस रुपए मासिक देकर इस ब्राह्मण को हमारा भोजन बनाने के लिए रक्खा था।"

"सम्भव है, ताँतिया ने भद्रता के अनुरोध से ऐसा कर दिया हो।"

"इसमें अनुरोध की क्या बात है? तुम अपने विचार पर अटल रहोगे तो लोगों को बाध्य होकर तुम्हारे विचारों का आदर करना पड़ेगा, और ज़रा सी कठिनाई आते ही तुम अपने सङ्कल्प से डवाँडोल हो गए तो तुम्हारा नौकर भी तुम्हारे मतामत की परवा न करेगा।" यह कहते हुए शास्त्री जी अण्डो को छुरी से काट-काट कर योगिराज के सामने रखने लगे।

योगिराज अवाक् बैठे रहे। खाने के पदार्थों को छुआ तक नहीं। इधर शास्त्री जी गपागप मुँह में अण्डे डालते हुए योगिराज से अनुरोध करने लगे—खाओ, खाओ, बैठे क्यो हो? खाना आरम्भ करो।

योगिराज के मुँह मे बात नहीं थी। बेचारे बड़े विनीत भाव से बोले—महाशय, मै इन चीज़ों को आपके घर पर तो खाया करता था और इस समय भी इन्हें खाने में

मुझे कोई विशेष आपत्ति नहीं, किन्तु इस स्थल पर ये चीज़ें खाना नहीं चाहता। मेरा गैरिक वस्त्र देख कर हिन्दू लोग मुझे योगी समझते हैं मेरा सम्मान करते हैं। झाँसी की रानी हविष्यान्न-भोजी समझ कर मुझ पर अगाढ़ श्रद्धा रखती हैं। उन लोगों से छिपा कर इस समय ये चीजें खाऊँ तो मेरा ही आत्मा मुझे छली कह कर धिक्कारेगा। मुझे क्षमा कीजिए, इस समय मैं खाना नहीं चाहता।

शास्त्री जी बोले—मैं तो पहले से ही कहता आ रहा हूँ कि तुम्हारा यह गेरुआ वस्त्र ही तुम्हारा सर्वनाश करेगा। यह गेरुआ वस्त्र और यह आचार-विचार ही देश को चौपट कर रहा है। अच्छा, तुम नहीं खाओगे तो तुम्हारे लिए दूसरे घर में भोजन का प्रबन्ध करा दूँ?

"नहीं, मेरे लिए अधिक कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं कभी-कभी बिना खाए भी रह जाता हूँ। एक दिन उपवास ही सही। मिल गया तो थोड़े फल-मूल से काम चला लूँगा। आपके टेबुल पर ये आम और केले पड़े हुए हैं, मैं एक आम और केला खा लूँगा। और किसी चीज की आवश्यकता नहीं।"

"तुम बङ्गालियों के भाग्य में केला ही बदा है। तुम भगवान् की थाती नष्ट कर रहे हो। बाबू, गुमास्ते और मुनीम जब अङ्गरेजों के खज़ाने मे गड़बड़ी करते हैं तो उन्हें चौदह वर्ष तक जेल की हवा खानी पड़ती है। अमानत में

खयानत करने पर कालेपानी की सजा होती है, लेकिन तुम लोग रात-दिन ईश्वर की अमानत तहस-नहस कर रहे हो, क्या तुम्हारा कभी निस्तार हो सकता है ?"

योगिराज ने हँसते हुए पूछा—भला हम लोग भगवान की थाती किस तरह बिगाड़ रहे है ?

"कैसे नहीं बिगाड़ते हो ? तुम्हारा यह शरीर तुम्हें ईश्वर ने दिया है। यह तुम्हारी निज की सम्पत्ति नहीं—ईश्वर की सम्पत्ति है। इसे नष्ट करने का तुम्हे क्या अधिकार है ? तुम्हें इसकी रक्षा करनी चाहिए—मन, वचन और कर्म से इसकी रक्षा करनी चाहिए—क्योंकि यह तुम्हारे मालिक की सम्पत्ति है। तुम इसकी रक्षा नहीं करते हो, इसका अर्थ है कि तुम इसे नष्ट करते हो।"

"शरीर की चिन्ता छोड़ कर मन और आत्मा की उन्नति करना क्या अधिक अच्छा नहीं है ?"

"यह असम्भव है। शरीर के सवल और स्वस्थ न रहने पर मन और आत्मा का पतन होना अनिवार्य है।"

योगिराज ने कुछ उत्तर न दिया। वह चुपचाप वैठे रहे। शास्त्री जी उनकी ओर कुछ आम और केले बढ़ाते हुए वोले—इन्हें लो। चुपचाप वैठ कर क्या मेरा खाना देखोगे ?

योगिराज ने कहा—थोड़ा सा दीजिए। इतना क्या करूँगा ?

"भाई, क्या शरीर को नष्ट कर डालने का ही सङ्कल्प कर लिया है ?"

योगिराज हँसने लगे। फिर आम खाते हुए पूछा—महाशय, अज़ीमुल्ला इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ़्रान्स आदि देशों से घूम आया है। क्या वह सचमुच विश्वास करता है कि महादेव जी ने नाना साहब के साथ बातें की थीं, वह साँड़ पर चढ़कर इधर-उधर घूमते हैं और बिना दूध पिए उनका पेट साफ़ नहीं होता ?

"भाई, मुसलमान अहमक़ होते हैं। हो सकता है, विश्वास किया हो और न किया हो तो नाना साहब को धोखा देने के लिए ऐसा कहा होगा।"

"मै तो समझता हूँ, धोखा देने के लिए ही उसने ऐसा किया है। वह अङ्गरेज़ी जानता है, विलायत से घूम आया है। भला ऐसी बातों पर वह कब विश्वास करेगा ?"

"मुसलमानों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। सात बार इङ्गलैण्ड जाने पर भी उनके कुसंस्कार दूर नहीं होते। यह जाति इतनी इन्द्रियलोलुप है कि इसमें चिन्ताशीलता तो लेश-मात्र भी नहीं होती।"

"आपका तात्पर्य क्या यह है कि अज़ीमुल्ला के लिए इन बातों पर विश्वास करना असम्भव नहीं ?"

"यह तो मैं नहीं कहता कि अज़ीमुल्ला इन बातों पर विश्वास करता है या नहीं, लेकिन मुसलमान जैसे अक़्लमन्द

होते हैं, उससे तो यही जान पड़ता है कि इनके लिए कुछ भी असम्भव नही। ये जितने ही जाहिल होते है उतने ही विश्वासघाती और कृतघ्न भी। अजीमुल्ला को खाँ बहादुर या नवाब बहादुर की उपाधि दी जाय, तो अभी वह नाना साहब का साथ छोड़ कर अङ्गरेजों का पक्ष ग्रहण कर सकता है।"

"महाशय, इन बातों में अकेले मुसलमान ही निन्दा के पात्र नहीं, हमारे हिन्दू-भाई मुसलमानों के भी चचा हैं। क्या हिन्दू लोग रायबहादुर और राजा-बहादुर की उपाधि के लिए दीवाने नहीं हुए रहते हैं?"

"तुम्हारे बङ्गाली हिन्दू भी इन उपाधियों की इतनी प्रतिष्ठा करते हैं?"

"वे केवल प्रतिष्ठा ही नहीं करते—इन उपाधियों के लिए बङ्गाल के धनी और जमींदार अपनी जमींदारी तक गिरवी रख कर अङ्गरेजों की संस्थाओं में लाखों रुपए का दान देते हैं। अपने पड़ोस में एक आदमी को भूख से मरते हुए देख कर वे उसे एक मुट्ठी अन्न और एक चुल्लू पानी तक न देंगे। देशहित के कार्यों में एक पैसा देते हुए उनकी नानी मर जायगी। किन्तु अङ्गरेजो की चरण-सेवा के लिए उनके पास कभी द्रव्य का टोटा नहीं होता।"

त्र्यम्बक शास्त्री ने चकित होकर कहा—क्या बङ्गाली इतने नीच है?

"जी हाँ, बङ्गाली इतने नीच हैं, उनकी नीचता की कोई सीमा नहीं !"

"और बङ्गालियो के प्रति पहले मेरे क्या विचार थे और अब क्या होगए ! पहले मैं बङ्गालियों को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। राजा राममोहन राय का कार्य देख कर मैंने समझा था कि बङ्गाली जाति बड़ी उन्नतिशील है, किन्तु अब देखता हूँ कि राजा राममोहन राय का एक भी गुण उन्होने ग्रहण नही किया।"

"महाशय, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचार से बङ्गाल के सभी पुराने परिवार नष्ट होगए। इस समय जो वहाँ भद्र और कुलीन लोग देखने मे आते हैं—जो लोग राजा और महाराजा बने हुए बैठे हैं, उनके बाप-दादे कम्पनी की अधीनता में मुनीम और गुमाश्तो का काम करते थे। इन्हीं मुनीम और गुमाश्तो के लड़के आजकल रायबहादुर होते हैं। इन चोरो की सन्तान से उच्च व्यवहार की आशा ही क्या हो सकती है ?"

"ठीक यही बात मैंने उस दिन बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन साहब से कही थी।"

"आप बम्बई किस लिए गए ?"

"भाई, यह भी एक अजीब कहानी है। जिस समय माल-कम साहब बम्बई के गवर्नर थे, उसी समय वह अपना एक मन्तव्य लिख कर छोड़ गए थे कि यदि भविष्य में किसी को

सम्मान-सूचक कोई उपाधि दी जाय तो सबसे पहले वह उपाधि नारायण त्र्यम्बक शास्त्री को देनी होगी। मालकम साहब इस आशय का कोई मन्तव्य लिख गए हैं, यह पहले मैंने सुना भी न था। इस बार अकस्मात् मुझे एलफिन्स्टन साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी का एक पत्र पूना में मिला। उसमे लिखा हुआ था :—

"महोदय, बम्बई के गवर्नर ने आपको रायबहादुर की पदवी प्रदान करने की इच्छा प्रकट की है। इस पत्र को पाकर मैं बड़ी विपत्ति मे पड़ा। तुम्हें शायद मालूम होगा कि हाईकोर्ट ने इस अभिप्राय का एक नियम जारी किया है कि कोई हुक्म क्यों रद्द किया जाय, इसका कारण दिखलाना होगा। मै भी प्राइवेट सेक्रेटरी साहब का हुक्म क्यों रद्द किया जाय, इसका कारण दिखाने के लिए बम्बई चल पड़ा।"

"आपने क्या कारण दिखाया?"

"बम्बई जाकर मैने एलफिन्स्टन साहब से साक्षात् किया। बहुत देर तक बातचीत करने के बाद उन्होने अपना असली इरादा ज़ाहिर किया। वह बोले—गवर्नमेण्ट ने आपको रायबहादुर की उपाधि देने की इच्छा प्रकट की है।"

मैंने भी विनयपूर्वक उत्तर दिया—श्रीमान्, इसके लिए मुझे क्षमा करें। मै किसी उच्च उपाधि का इच्छुक नहीं हूँ।

"मेरा उत्तर सुन कर उन्होने पूछा—क्या सचमुच आप

रायबहादुर की उपाधि ग्रहण करने से अनिच्छा प्रकट कर रहे हैं ?

मैंने उत्तर दिया—हाँ श्रीमान्, मैं यह उपाधि ग्रहण करना नहीं चाहता। मेरी प्रार्थना सुन कर उन्होंने मुझे इस विपत्ति से छुटकारा दे दिया।



सत्रहवाँ परिच्छेद।

पश्चात्ताप



जन के उपरान्त त्र्यम्बक शास्त्री और योगिराज मन्दिर के बाहर वाले आँगन मे आ बैठे। उस समय रात डेढ़ पहर के लगभग बीत चुकी थी। चारों ओर चन्द्रदेव का विमल यश फैला हुआ था। मन्द-मन्द शीतल समीर बह रहा था। दोनों आदमी मन ही मन कुछ सोचते हुए वायु सेवन करने लगे।

योगिराज का हृदय व्यथित था। आज तीसरे पहर गङ्गा-किनारे अङ्गरेज़ रमणियो और बालकों का मृत-देह देख कर उन्हें मर्मान्तक वेदना हुई थी। जब तक वह शास्त्री जी से बाते कर रहे थे, तब तक उनका मन बँटा हुआ था, थोड़ी देर के लिए वह अपना दुख भूल गए थे। किन्तु इस समय

निश्चिन्त होते ही पुनः उनका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। वह हृदय-विदारक दृश्य उनकी आँखों के सामने नाचने लगा। रमणी का आर्त्त क्रन्दन इस समय भी उनके कानों में गूँज रहा था। वह चन्द्रमा की ओर टकटकी बाँधे सोचने लगे—"क्या संसार का शासन ईश्वरीय नियमों के अनुसार नहीं होता? नित्य इतना विश्वासघात, इतनी निर्दयता, इतना नर-संहार हो रहा है—क्या उस सर्वव्यापी, सर्वज्ञ की आँखें इसे देखने में असमर्थ हैं? जीवन भी एक रहस्य है। इसकी प्रत्येक घटना एक पहेली है। चिन्ता, बुद्धि ज्ञान, कोई इस पहेली को समझ नहीं पाता।" इन्हीं विचारों में वह इतने तल्लीन हो गए कि उन्हें अपनी सुध-बुध भी भूल गई। शास्त्री जी के पास एक दूसरा युवक कहीं से आकर बैठ गया, पर उन्हें इसका पता तक न चला।

नवागत व्यक्ति की सुदीर्घ आकृति, उन्नत ग्रीवा, प्रशस्त ललाट, विशाल वक्षस्थल और आजानु-विलम्बित बाहों को देख कर सहज ही यह अनुमान होता था कि यह कोई वीर पुरुष हैं। शास्त्री महाशय के पास बैठते ही उनकी दृष्टि योगिराज पर पड़ी। उन्होंने पूछा—यह कौन हैं?

"यह कौन हैं" इस शब्द ने योगिराज की चिन्ता में बाधा डाल दी। उन्होंने सिर उठा कर देखा तो सामने एक पहलवान बैठा हुआ था।

शास्त्री जी नवागन्तुक से कहने लगे—यह मेरे एक

परिचित व्यक्ति हैं। इनकी चर्चा तो मै तुमसे पहले कई बार कर चुका हूँ।

नवागन्तुक ने कहा—बङ्गाल के वही ब्राह्मण-समाजी ?

"ब्राह्मण-समाजी नही जी, ब्रह्म-समाजी।"

"इनका नाम क्या है ?"

"यह अपना असली नाम तो किसी को नहीं बताते, किन्तु लोग इन्हें आनन्दाश्रम स्वामी कहते हैं।"

नवागन्तुक ने हँसते हुए पूछा—यह स्वामी जी महाराज ज्योतिष तो अवश्य जानते होगे ? क्या इन्हे होलकर के पास नहीं भेजा जा सकता ?

त्र्यम्बक शास्त्री ने क्रोध से उत्तर दिया—ताँतिया, मै तुमसे बार-बार कहता हूँ, तुम कुटिलता और कपट का व्यवहार नही छोड़ते हो। असत्य के द्वारा कभी मङ्गल नहीं होगा, जब होगा तो अमङ्गल ही होगा।

"क्या अमङ्गल होगा ? यदि इस बार सींधिया और होलकर हमारे पक्ष में मिल जायँ तो हम निश्चय ही अङ्गरेजो को मार भगावेंगे। अजीमुल्ला, नाना साहब को दिल्ली के बादशाह और अवध की बेगम के साथ मिल जाने की सलाह दे रहा है। मै नहीं चाहता कि लूट के माल के हिस्सेदार और मन्नूखाँ की उपपत्नी के साथ मिल कर युद्ध करूँ। यदि सींधिया, और होलकर आदि महाराष्ट्र राजा हमारे पक्ष में हो जायँ, तो मै पेशवा का सेनापति बन कर लड़ाई के मैदान

में जाऊँगा। मुसलमानों के साथ मै अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। मैं सम्मुख संग्राम करूँगा, अजीमुल्ला की तरह छिप कर निर्दयता नहीं करूँगा। अगर नाना साहब दिल्ली के बादशाह और अवध की बेगम के साथ मिल गए, तो इन लोगो को निष्ठुरता करने से रोकना असम्भव हो जायगा।"

"बच्चा, बीसों होलकर और पचीसों सींधिया मिलकर भी इस समय अङ्गरेज़ों को नहीं हरा सकते। अङ्गरेज़ इस देश में सात समुद्र पार से बनियों के रूप में आए थे। न उनके पास एक बित्ता ज़मीन थी, न कोई धन था। किन्तु डेढ़-दो सौ वर्षों के भीतर ही इन लोगों ने तुम्हारे सब होलकर, सींधिया, पेशवा, टीपू, मीरजाफर और शुजाउद्दौला आदि सिंहासनासीन राजाओं को अपनी मुट्ठी में कर लिया, किसी का राज्य हड़प लिया तो किसी को अपना ग़ुलाम बना लिया। उस समय तुम लोग इन्हें देश से बाहर नहीं निकाल सके तो आज × × ×"

शास्त्री जी की बात अभी समाप्त भी न होने पाई थी कि नवागन्तुक बीच में ही बोल उठा—साहब, हमारे ही देश के सिपाहियों ने अङ्गरेज़ों के लिए राज्य जीता था और इस समय भी वही उस राज्य की रक्षा कर रहे हैं। जब सिपाही ही उनसे अलग हो जायँगे तो वे किसके बूते यहाँ ठहर सकते हैं?

"तुम हो निरे मूर्ख ! क्या अङ्गरेज़ लोग केवल बाहुबल से इस देश पर शासन कर रहे हैं ? हमारी नैतिक दुर्बलता उन्हें बलवान् नहीं बनाती ?"

"हमारी नैतिक दुर्बलता उन्हें बलवान् नहीं बनाती, इसका क्या अर्थ ?"

"तुम्हें तो हर एक बात समझाने के लिए एक महाभारत सुनाना पड़ता है। बच्चा, बात यह है कि हमारे पूर्वजों के पाप, हमारा अपना अज्ञान, हमारे देश की कुशिक्षा और हमारे समाज के कुव्यवहार, सबने मिल कर हमें दुर्बल और निस्तेज बना दिया है। हमारी अकर्मण्यता और नपुंसकता के कारण ही अङ्गरेज़ इतनी आसानी से हमारे देश में अपना एकाधिपत्य स्थापित कर सके थे। हममें थोड़ा सा भी मनुष्यत्व बाक़ी होता तो हम अपनी छाती पर विदेशी शासन की पताका फहराती हुई देखने के लिए जीवित न रहते। तुम क्या यह समझते हो कि कलकत्ते का फ़ोर्ट-विलियम और मद्रास का फ़ोर्ट सेण्ट जॉर्ज अङ्गरेज़ों की रक्षा कर रहा है ? हममें से प्रत्येक ने अपने ही हृदय में इनकी रक्षा के लिए एक दुर्जय दुर्ग बना रक्खा है।"

"इन बातों से आपका आशय क्या है ?"

"मेरा आशय क्या है ? सुनोगे ? जिस शिव के मन्दिर में हम लोग बैठे हुए हैं, यही अङ्गरेज़ों की रक्षा का सब से मज़बूत क़िला है। देवी-देवताओं के ऐसे सैकड़ों मन्दिर

यदि वे ऐसा न करते—हमारे देश को समुन्नत बनाने का प्रयत्न करते और हमें अपने साथ बराबरी का अधिकार देते तो निश्चय ही उनका राज्य स्थायी हो सकता था। किन्तु उन्होंने तो अपने को सुरक्षित बनाने की दुराशा से हमारे देश को हीन और पतित, दरिद्र और अशिक्षित बनाने की चेष्टा की है। अब उनका राज्य चिरस्थायी होना तो दूर रहा, दीर्घस्थायी भी नहीं हो सकता। और कहीं किसी का राज्य भी चिरस्थायी हुआ है ? इसी देश में आर्य, अनार्य, हिन्दू, मुसलमान, न जाने कितने लोगों ने राज्य किया। पर किसका राज्य चिरस्थायी हुआ है ?"

शास्त्री जी की बातें सुन कर ताँतिया टोपी कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा। ताँतिया अधिक पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं था। संसार में प्रवेश करने के पहले उसने केवल थोड़ी सी संस्कृत पढ़ी थी। ऐसा जान पड़ता था मानो ताँतिया ने शास्त्री जी की सब बातों का मर्म नहीं समझा। वास्तव में पश्चिमी इतिहास, विज्ञान, दर्शन, राजनीति और व्यवहार-शास्त्र का अध्ययन किए बिना इन बातों को समझना कठिन भी है। किन्तु ताँतिया की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वर्त्तमान विद्रोह के प्रारम्भ-काल से ही वह शास्त्री जी के मुँह से विविध प्रकार की ज्ञान-चर्चा सुनता आ रहा था। धीरे-धीरे उसके हृदय की आँख खुली। जब मनुष्य के प्रज्ञा-चक्षु खुलते हैं तो सबसे पहले उसकी दृष्टि अपने दोषों पर ही पड़ती है।

इस समय तौंतिया के जीवन की प्रत्येक भूतकालीन घटना उसके दोषों का उद्‌घाटन करने लगी। उसकी युवावस्था में शास्त्री जी ने उसे अनेक बार अङ्गरेज़ी पढ़ने की सम्मति दी थी, किन्तु बाल्यावस्था से ही अङ्गरेज़ों के प्रति उसके मन में ऐसी तीव्र घृणा थी कि वह अङ्गरेज़ी सीखने पर किसी प्रकार भी राज़ी न हुआ। वह अङ्गरेज़ी को म्लेच्छ-भाषा कह कर उसके प्रति अपनी घृणा प्रकट किया करता था।

इस समय जब उसने विद्रोह का नेतृत्व स्वीकार किया, तो अङ्गरेज़ों का रण-कौशल देख कर उसके यौवन का अभिमान चूर हो गया। तीन सौ अङ्गरेज पाँच हज़ार सिपाहियों के विरुद्ध तीन सप्ताह तक आत्म-रक्षा कर सकते हैं! उसने समझ लिया कि भीम की गदा और भीष्म के महास्त्र का युग अब बीत गया। अब तो अङ्गरेज़ों का रण-कौशल और पाश्चात्य गणित-विद्या सीखनी होगी, इसके विना युद्ध-भूमि में तोप और बन्दूक भी नहीं स्थापित किए जा सकते। उसने देखा कि विद्रोही लोग जब अपनी तोपों और बन्दूकों का अगला भाग कुछ ऊँचा रख कर चलाते थे, तो गोले शत्रुओं के बीच में गिरते थे, किन्तु उनका मुँह थोड़ा सा नीचा करते ही सभी गोले विपक्षियों के सामने पड़ने लगते थे, एक गोला भी उनके शरीर में न लगता था। इन सब बातों को याद करके तौंतिया अपने विगत जीवन की भूल पर पछताने लगा। वह सोचता था, शास्त्री जी की बात न मान कर मैंने

अपना जीवन नष्ट कर दिया। उनके उपदेशानुसार अङ्ग्रेज़ी भाषा और पाश्चात्य गणित-शास्त्र का अध्ययन किया होता, तो मैं आज गोलों के फेंकने (Projectile) का नियम अनायास समझ सकता था। अन्त में बहुत सोच-विचार कर उसने निश्चय किया कि इस जन्म में फिर कभी शास्त्री की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करूँगा। उनके प्रति प्रतिदिन उसकी श्रद्धा बढ़ने लगी। किन्तु वह उनकी सब बातें सरलतापूर्वक हृदयङ्गम कर लेने में असमर्थ था। इसलिए शास्त्री जी को प्रत्येक बात उसे उपमा-उपमेय और उदाहरणों के द्वारा समझानी पड़ती थी।

उसने शास्त्री जी से पुनः प्रश्न किया—महाशय, यदि होलकर और सींधिया हम लोगों की ओर मिल जायँ तो इसमें कौन सी बुराई है?

शास्त्री जी ने उत्तर दिया—इसमें बुराई कौन सी है? बुराई केवल यही है कि सींधिया और होलकर को भी राज्यच्युत होना पड़ेगा। इस समय देश में केवल दो यही मराठे राजा बाक़ी हैं। विद्रोह के कारण इन्हें भी अपने राज्य से हाथ धोना पड़ेगा।

"आपका क्या यह मतलब है कि अङ्गरेज़ों को कोई हरा ही नहीं सकता?"

"मेरा केवल यह मतलब ही नहीं है, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस विद्रोह में अङ्गरेज़ कभी पराजित

नहीं हो सकते। उन्हें इस समय कोई देश से बाहर नहीं निकाल सकता।"

"आप ऐसा कैसे कह सकते हैं?"

"दोनों पक्ष की दशा देख कर × × ×!"

"दोनों पक्ष की क्या दशा है?"

"प्रत्येक बात अङ्गरेजों के अनुकूल और तुम्हारे प्रतिकूल। अङ्गरेज़ों के ऊपर यह विपत्ति केवल इसलिए आई है कि वे अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर भारतवासियों को शिक्षा से वञ्चित रखना चाहते थे, उनकी आत्मा को उत्कर्ष का साधन नहीं देते थे।"

"आप विस्तार के साथ बताइए कौन-कौन सी अवस्थाएँ अङ्गरेज़ों के अनुकूल और हमारे प्रतिकूल हैं?"

"सभी अवस्थाएँ ऐसी ही हैं। पहली बात तो यह है कि अङ्गरेज़ हमसे ज्ञान में, नीति में, वीरता में, सभ्यता में, सब में आगे बढ़े हुए हैं। अवनत जाति उन्नत जाति को कभी पराजित नही कर सकती। दूसरी बात यह है कि हमारे देशवासियो में शासन की ज़रा भी योग्यता नहीं। अङ्गरेजों की शासन-क्षमता हमसे कहीं बढ़ी-चढ़ी है। जब तक इस कला से हम उनसे आगे नहीं बढ़ जाते, तब तक उनको राज्यच्युत नही कर सकते। तीसरे विद्रोही पद-पद पर भूलें कर रहे हैं। यद्यपि उन लोगों के विद्रोह करने के अनेक कारण मौजूद हैं, तथापि उन लोगों ने एक निराधार कारण बताकर विद्रोह

किया है। अङ्गरेज़ी सरकार कभी किसी का धर्म बिगाड़ना नहीं चाहती। अगर सिपाहियों ने यह कहा होता कि अङ्गरेज़ लोग हमारे देशवासियों को अशिक्षित रखना चाहते हैं, वे हम लोगों को सेना में उच्च पद नहीं देते, वे हमें युग-युगान्तर तक दीन और दरिद्र बनाकर रक्खेंगे, तो देश की साधारण जनता उनका साथ देती। किन्तु इन लोगों ने विद्रोह का कारण बताया है धर्म-नाश की आशङ्का, जो सर्वथा मिथ्या और कपोल-कल्पित है। इससे देश के बुद्धिमान् लोग कभी विद्रोहियों का पक्ष ग्रहण न करेंगे। चौथे अङ्गरेज़ सैनिक अविचल भाव से आत्म-रक्षा कर रहे हैं, किन्तु विद्रोही लोग ज़रा सी गड़बड़ी देखते ही प्राणों के भय से भाग खड़े होते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कारण हैं, जिन्हें देख कर स्पष्ट रूप से विदित हो जाता है कि विद्रोही लोग इस युद्ध में अवश्य पराजित होंगे और अङ्गरेज़ विजय प्राप्त करेंगे।"

"आपने हम लोगों की बुराइयाँ तो इतनी बता दीं, क्या उनके निराकरण का भी कोई उपाय है?"

"कोई उपाय नहीं। विद्रोहियों ने जिस 'भ्रमात्मक मार्ग' का अवलम्बन किया है, उससे बुराई छोड़ कर भलाई नहीं होगी।"

शास्त्री जी ने भ्रमात्मक मार्ग का ज्योंही उल्लेख किया, त्योंही योगिराज ने कहा—महाशय, मेरी राय भी यही है

कि इस समय देश के प्रधान सेनानायक ताँतिया टोपी ने नाना साहब और अजीमुल्ला का साथ देकर भयङ्कर भूल की है। इन लोगों से किसी भ्रम-शून्य कार्य की आशा कभी हो ही नहीं सकती। ये लोग पग-पग पर भूलें करेंगे।"

योगिराज की बात में परिहास और उपदेश दोनों का मिश्रण था। शास्त्री जी उनकी अन्तिम बात सुन कर ताँतिया से बोले—ताँतिया, मैं तुम्हारे लड़कपन से ही तुम्हें सन्तान की तरह चाहता हूँ। वर्तमान विद्रोह में मैं तुम्हें कभी लिप्त नहीं होने देता, सदा तुम्हें इससे दूर रखता, किन्तु बहुत सोच-विचार कर देखने के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वीर की नाईं इस युद्ध में प्राण विसर्जित करके ही तुम अपने गत जीवन के पापों का समुचित प्रायश्चित्त कर सकते हो। इस जीवन को सफल बनाने का तुम्हारे लिए इससे बढ़ कर श्रेष्ठ दूसरा कोई मार्ग नहीं। मैं तुम्हें युद्ध से विरत करने की चेष्टा कदापि नहीं करूँगा। किन्तु यदि तुम्हारे मन में राज्य और पद, ऐश्वर्य और विलास की आकांक्षा है, तो अभी इस मार्ग का परित्याग कर दो। युद्ध के उपलक्ष में मृत्यु को छोड़ कर तुम्हे और कोई पारितोषिक नहीं मिल सकता। वीरों की भाँति मरने में ही मैं तुम्हारा कल्याण देखता हूँ। ईश्वर ने अलौकिक चिन्ता-शक्ति और अद्वितीय वीरता देकर तुम्हें संसार की सेवा करने के लिए भेजा था, पर हमारे नारकीय समाज ने तुम्हारी शक्तियों

किया है। अङ्गरेजी सरकार कभी किसी का धर्म बिगाड़ना नहीं चाहती। अगर सिपाहियों ने यह कहा होता कि अङ्गरेज़ लोग हमारे देशवासियों को अशिक्षित रखना चाहते हैं, वे हम लोगों को सेना में उच्च पद नहीं देते, वे हमें युग-युगान्तर तक दीन और दरिद्र बनाकर रक्खेंगे, तो देश की साधारण जनता उनका साथ देती। किन्तु इन लोगों ने विद्रोह का कारण बताया है धर्म-नाश की आशङ्का, जो सर्वथा मिथ्या और कपोल-कल्पित है। इससे देश के बुद्धिमान् लोग कभी विद्रोहियों का पक्ष ग्रहण न करेंगे। चौथे अङ्गरेज़ सैनिक अविचल भाव से आत्म-रक्षा कर रहे हैं, किन्तु विद्रोही लोग ज़रा सी गड़बड़ी देखते ही प्राणों के भय से भाग खड़े होते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कारण हैं, जिन्हें देख कर स्पष्ट रूप से विदित हो जाता है कि विद्रोही लोग इस युद्ध में अवश्य पराजित होंगे और अङ्गरेज विजय प्राप्त करेंगे।"

"आपने हम लोगों की बुराइयाँ तो इतनी बता दीं, क्या उनके निराकरण का भी कोई उपाय है?"

"कोई उपाय नहीं। विद्रोहियों ने जिस 'भ्रमात्मक मार्ग' का अवलम्बन किया है, उससे बुराई छोड़ कर भलाई नहीं होगी।"

शास्त्री जी ने भ्रमात्मक मार्ग का ज्योंही उल्लेख किया, त्योंही योगिराज ने कहा—महाशय, मेरी राय भी यही है

कि इस समय देश के प्रधान सेनानायक ताँतिया टोपी ने नाना साहब और अज़ीमुल्ला का साथ देकर भयङ्कर भूल की है। इन लोगों से किसी भ्रम-शून्य कार्य की आशा कभी हो ही नहीं सकती। ये लोग पग-पग पर भूलें करेंगे।"

योगिराज की बात में परिहास और उपदेश दोनों का मिश्रण था। शास्त्री जी उनकी अन्तिम बात सुन कर ताँतिया से बोले—ताँतिया, मैं तुम्हारे लड़कपन से ही तुम्हें सन्तान की तरह चाहता हूँ। वर्तमान विद्रोह में मैं तुम्हें कभी लिप्त नहीं होने देता, सदा तुम्हें इससे दूर रखता, किन्तु बहुत सोच-विचार कर देखने के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वीर की नाईं इस युद्ध में प्राण विसर्जित करके ही तुम अपने गत जीवन के पापों का समुचित प्रायश्चित्त कर सकते हो। इस जीवन को सफल बनाने का तुम्हारे लिए इससे बढ़ कर श्रेष्ठ दूसरा कोई मार्ग नहीं। मैं तुम्हें युद्ध से विरत करने की चेष्टा कदापि नहीं करूँगा। किन्तु यदि तुम्हारे मन में राज्य और पद, ऐश्वर्य और विलास की आकांक्षा है, तो अभी इस मार्ग का परित्याग कर दो। युद्ध के उपलक्ष में मृत्यु को छोड़ कर तुम्हे और कोई पारि-तोषिक नहीं मिल सकता। वीरों की भाँति मरने में ही मैं तुम्हारा कल्याण देखता हूँ। ईश्वर ने अलौकिक चिन्ता-शक्ति और अद्वितीय वीरता देकर तुम्हें संसार की सेवा करने के लिए भेजा था, पर हमारे नारकीय समाज ने तुम्हारी शक्तियों

को विकसित और परिस्फुटित होने का अवसर ही न दिया। शक्ति का बीज अङ्कुरित होने के पहले ही मुरझा कर नष्ट हो गया। तुम्हारी मृत्यु तो कब की हो चुकी है। तुम शरीर धारण करके जीवन की विडम्बना-मात्र कर रहे हो। इस समय यदि प्रकृत वीरों की भाँति हँसते हुए, हृदय में अनन्त उल्लास का अथाह सागर भर कर, युद्ध-भूमि में अपना बलिदान कर दो, तो तुम्हारे देश का उद्धार हो जाय और तुम्हारे वंश का नाम सदा के लिए अमर हो जाय। सरकार हमारे देशवासियों को युद्ध-कला में प्रवीण होने का अवसर नहीं देती। इसीलिए तुम्हारी यह दुर्दशा हो रही है। तुम्हें इस सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का न्याय्य अधिकार प्राप्त है। होलकर और सींधिया को यही अधिकार नहीं है। वे यदि विद्रोह करें तो उनका ऐसा करना न्यायसङ्गत नहीं कहा जा सकता। इस सरकार की कुटिल नीति पर तुम्हारे जीवन की असफलता का सारा उत्तरदायित्व है। किसी स्वतन्त्र देश में जन्म लेने पर तुम सेनापति का पद सुशोभित करते। अब जीवन की आशा छोड़ कर, हृदय से मान और प्रभुत्व की कामना निकाल कर, निस्स्वार्थ भाव से सम्मुख संग्राम में आत्म-विसर्जन करने के लिए तैयार हो जाओ। किन्तु सावधान! अजीमुल्ला और नाना की बातों में आकर निर्दयता कभी न करना। सदा महाराष्ट्र-वीर शिवाजी का पवित्र आदर्श अपने सामने रखना। स्त्री, गाय और

कृषक, तीनों को अवध्य समझना। असहाय अथवा निःशस्त्र शत्रु पर कभी प्रहार न करना। सदा न्याय-मार्ग का अनुसरण करना। इस प्रकार युद्ध-भूमि में यदि पराक्रम दिखा कर तुम निहत होगे, तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा। तुम्हारा उज्ज्वल बलिदान पतित महाराष्ट्र में नव-जीवन का सञ्चार कर देगा।

शास्त्री जी का उपदेश सुन कर ताँतिया ने विनयपूर्वक कहा—पिता! मैं सदा आपके आदेशानुसार कार्य करने की चेष्टा करूँगा। युद्ध में मरने से भी मैं नहीं डरता, किन्तु एक बात की मुझे बड़ी आशङ्का होती है। अङ्गरेजों ने युद्ध में यदि जीता-पकड़ लिया तो फाँसी के काठ पर मुझे प्राण त्यागना होगा। इस शोचनीय मृत्यु से बचने के लिए मुझे भागने का कलङ्क सह कर भी अपने प्राणों की रक्षा करनी होगी।

शास्त्री जी बोले—हृदय के इन संस्कारों को दूर करो। फाँसी का काठ और बन्दूक़ की गोली दोनों एक ही समान तुम्हारे स्वर्ग का द्वार खोलेंगी।

बातचीत समाप्त होने पर ताँतिया टोपी घोड़े पर चढ़ कर अपने स्थान को चला गया। अब योगिराज और नारायण त्र्यम्बक शास्त्री मे बातें होने लगीं।

योगिराज ने कहा—महाशय, ताँतिया टोपी का मन कुसंस्कारों से पूर्ण है। आप जबरदस्ती उसके सिर पर स्वदेश-सेवा का भार लाद कर उसे संग्राम-क्षेत्र मे भेज रहे

हैं। देश-सेवा का अर्थ तक बेचारा समझता नहीं और आप उसके द्वारा देश के उद्धार की कल्पना कर रहे हैं।

"बच्चा, ताँतिया को तुमने अभी पहचाना नहीं। ताँतिया अशिक्षित होने पर भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा मेरी प्रत्येक बात समझ लेता है। अशिक्षा मनुष्य को उतना अयोग्य नहीं बनाती, जितना कुशिक्षा। अशिक्षित मनुष्य प्रयत्न करने पर सदुपदेश और सद्भाव ग्रहण कर सकता है, कुशिक्षित नहीं कर सकता।"

"मैं इसे अस्वीकार नहीं करता। निस्सन्देह कुशिक्षा की अपेक्षा अशिक्षा अच्छी है। बङ्गाल के शिक्षित कहलाने वाले कुशिक्षित लोग समाज-सुधार में जितनी बाधा पहुँचाते हैं, उतनी बाधा अशिक्षितों से नहीं पहुँचती। किन्तु ताँतिया जैसा मूर्ख आदमी क्या आपके सङ्कल्पित महदुद्देश्य की साधना में सफल हो सकेगा? मैंने ताँतिया के विषय में बहुत सी बातें सुनी हैं। उसका मन कुसंस्कारों से भरा हुआ है। देश-हित किस जानवर का नाम है, यह समझने की भी तो उसमें बुद्धि नहीं है।"

"देश के शिक्षित-अशिक्षित सभी का मन संस्कारों में डूबा हुआ है। बम्बई और मद्रास-प्रान्त के लोगों में तो कुसंस्कारों का जाल बिछा हुआ है। बङ्गाल में ब्रह्मसमाज की स्थापना से लोगों का कुसंस्कार बहुत अंशों में दूर हुआ है। किन्तु दक्षिण भारत में तो इस प्रकार का कोई प्रयत्न

आज तक नहीं हुआ। इसके लिए उन्हें दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता।"

"महाशय, जब तक उनके कुसंस्कार दूर न होंगे, वह किसी विषय की भलाई-बुराई नहीं सोच सकते। देशहितैषिता किसे कहते हैं, यह भी नहीं समझ सकेंगे। आपका उपदेश मानकर अगर उसने अपना प्राण भी दे दिया तो लोग उसका आदर्श हृदयङ्गम नहीं कर सकेंगे—ताँतिया की मृत्यु अकारथ जायगी। मैं समझता हूँ कि अगले ३० वर्षों में भी महाराष्ट्र लोग ताँतिया की मृत्यु का महत्व नहीं समझ सकेंगे। उसका बलिदान अरण्यरोदन के अतिरिक्त और कुछ न होगा। आप संसार का माया-मोह त्याग चुके हैं। आप ही महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में लोगों का कुसंस्कार दूर करने की चेष्टा क्यों नहीं करते? ताँतिया को युद्धस्थल में भेजने से क्या लाभ होगा?"

योगिराज के मुँह से "आप ही कुसंस्कार दूर करने की चेष्टा क्यों नहीं करते?" इतना सुनते ही त्र्यम्बक शास्त्री ने अपना सिर नीचा कर लिया। वह कुछ न बोले। उनकी आँखों से आँसुओं की अविरल धार बहने लगी। अकस्मात् शास्त्री जी की यह दशा देखकर योगिराज विस्मित रह गए। इस गूढ़ रहस्य का कुछ अर्थ उनको समझ में न आया। थोड़ी देर के बाद उन्होंने बड़े कोमल स्वर से पूछा—महाशय, एकाएक यह आपको क्या होगया? क्यो आप इतना उद्विग्न हो रहे हैं?

शास्त्री जी अब तक सिर नीचा किए हुए बैठे थे। उनके मुँह में कोई बात न थी। बहुत देर के बाद बोले—इस जीवन की पिछली घटनाएँ याद करके मेरा मन शोक और ग्लानि से भर जाता है। मुझे ऐसा मालूम होने लगता है मानो मेरे ही दोष से मेरी यह दुर्दशा हुई है, मेरे ही दोष से मेरे पुत्र और कन्या का जीवन नष्ट हुआ। बच्चा, मरे हुए का सन्ताप सह्य होता है, किन्तु जीवित का शोक हृदय को एकदम व्याकुल कर देता है। मरे हुए का दुख मनुष्य भूल जाता है, किन्तु जीवित की चिन्ता भीतर ही भीतर आग की तरह सुलगती रहती है।

शास्त्री जी इतना कह कर चुप हो गए। किन्तु योगिराज फिर भी कुछ न समझ सके।

उन्होंने पुनः पूछा—महाशय, आपकी बात मैंने कुछ भी नहीं समझी। अकस्मात् इस समय आपको यह दुख कैसे याद आ गया?

"तुमने देश का कुसंस्कार दूर करने की बात ज्योंही कही, त्योंही मेरा सारा अतीत जीवन मेरी आँखों के सामने आगया। वे घटनाएँ याद आते ही मैं अनुताप से जलने लगता हूँ। उस समय मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं अपनी माता का कुपुत्र, स्त्री का कुस्वामी, सन्तान का कुपिता, महाराष्ट्र-जाति का कुलाङ्गार और ईश्वर की सृष्टि का सबसे निकृष्ट प्राणी हूँ।"

"क्या इन घटनाओं को मुझे बताने में कुछ बाधा है ?"

"नहीं, कोई बाधा नहीं है। मैं अपने जीवन की किसी घटना को छिपा कर नहीं रखता। मैं तो पहले ही तुमसे कहना चाहता था।"

"तो बताइए न !"

"बच्चा, क्या कहूँ ? मैं वास्तव मे अधम हूँ। मैं पतित न होता तो मेरी क्या ऐसी दुर्दशा होती ? परमेश्वर ने मेरा जीवन सफल और आनन्दमय बनाने के लिए मुझे दिव्य चक्षु दिए थे—उज्ज्वल ज्ञान प्रदान किया था। किन्तु मैं उन दिव्य चक्षुओं के बताए मार्ग पर न चल सका। संसार के मोह में पड़ कर मैंने नरक का रास्ता पकड़ लिया। इस समय असह्य यन्त्रणा सहकर इस पापमय जीवन का भार वहन कर रहा हूँ।"

"जिस प्रकार बङ्गाल के निबिड़ अन्धकार में जन्म लेकर राजा राममोहन राय की आत्मा ने अपने देश के घृणित आचार-व्यवहारों और कलुषित कुसंस्कारों के मस्तक पर पाद प्रहार किया था, उसी प्रकार दक्षिण भारत के मत-मतान्तरों को दूर करने की भावना मेरे मन में उत्पन्न हुई थी। उनकी भाँति मैंने भी आज से चालीस वर्ष पहले बम्बई नगर में एकेश्वर की उपासना के लिए एक प्रार्थना-समाज खोलना चाहा था। जाति-भेद, बाल-विवाह, बहुविवाह आदि बुराइयों को भी दूर करने का प्रयत्न किया

था। देश के सब लोग मेरे विरुद्ध खड़े हो गए। मुझे समाज-च्युत करने के लिए आन्दोलन होने लगा। किन्तु मैं किसी प्रकार भी भयभीत नहीं हुआ। प्रति दिन नूतन उत्साह और नवीन स्फूर्ति के साथ अपने कार्यक्षेत्र में अवतरित होकर मैं अपने महान् योग की साधना करने लगा। अन्त में मेरी माता को इन बातों का पता लगा और वह बम्बई आकर मेरे कार्य में नाना प्रकार की विघ्न-बाधाएँ डालने लगी। मुझे इस उद्देश्य से विरत करने के लिए उसने कुछ भी उठा न रक्खा। मैं भी मूर्ख था। उसके क्रन्दन और आँसुओं की धार ने मुझे पिघला दिया—माता की हठधर्मी देखकर मैं अपनी तपस्या से विचलित हो गया।

"मेरे जीवन की यह प्रथम दुर्घटना थी—मेरे पतन का यहीं से श्रीगणेश हुआ। सर जॉन मालकम जब भारत से जाने लगे, तो उन्होंने अपने साथ मुझे विलायत ले जाना चाहा। उस समय मेरे परम हितैषी कर्नल आर्थर वेलेज्ली ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन की उपाधि से विभूषित होकर इङ्गलैण्ड के एक प्रसिद्ध पुरुष-रत्न हो गए थे। अगर मैं विलायत जाता तो विदेश-यात्रा से मेरी मानसिक उन्नति होती। मेरा पद भी बढ़ता। किन्तु दुर्बुद्धि ने मुझे पुनः माता का अनुरोध मानने पर विवश किया। जीवन में यदि ये दो भयङ्कर भूलें न हुई होतीं, तो क्या आज मेरी यह अवस्था होती? मेरे पुत्र और कन्या की यह दुर्दशा होती? राजा

राममोहन राय ने कलकत्ते मे ब्रह्मसमाज की स्थापना करके बङ्गालियों का जो उपकार किया है, मैं भी दक्षिण भारत के लोगों की वही सेवा कर सकता। बङ्गालियों की भाँति इस देश के लोगो की भी उन्नति का द्वार खुल जाता। किन्तु माता ने सब चौपट कर दिया, उसके कुसंस्कारो की अग्नि में पड़ कर मेरे जीवन की सारी उपयोगिता नष्ट हो गई।

"माता की बात मान कर मैंने अपना जीवन तो नष्ट किया ही, उसके कुसंस्कारो का पोषण कर उसे भी नरक मे पहुँचा दिया। मैंने अपने पुत्र और कन्या का अनिष्ट किया, अपनी सेवाओं से वञ्चित रख कर अपनी मातृभूमि का अहित किया। सच्चा ज्ञानी पुरुष कभी माता-पिता के कुसंस्कार के सामने सिर नहीं नवाता। रोगिणी माता यदि कुपथ्य की इच्छा करे तो क्या बुद्धिमान् सन्तान उसे कुपथ्य दे देती है? विक्षिप्त पिता यदि विष का प्याला पीना चाहता हो, तो क्या ज्ञानी पुत्र उसे विष पीकर आत्महत्या के पाप का भागी बनने देता है? माता-पिता के कुसंस्कारों को प्रश्रय देना उनकी आध्यात्मिक हत्या करना है। मैं मातृहन्ता, पितृघाती कुपुत्र हूँ।

"अगर उस समय मै माता के क्षणिक सन्ताप की उपेक्षा कर, प्रार्थना-समाज की स्थापना करता तो महाराष्ट्र लोग मुझे अवश्य ही जाति-च्युत कर देते। इस पतित हिन्दू-समाज से सम्बन्ध-विच्छेद होना क्या सौभाग्य की बात न

थी ? जिसके मन में थोड़ा भी आत्म-सम्मान का भाव है, जो थोड़ी सी भी उन्नति का अभिलाषी है, वह क्या इस अधम हिन्दू-समाज में एक दिन के लिए भी रहना पसन्द करेगा ? समाज-च्युत होने से मेरी मुक्ति हो जाती। मुझे जाति-हीन समझ कर न तो राजा गङ्गाधरराव के जैसा नर-पिशाच मेरी कन्या का पाणिग्रहण करने की इच्छा करता, न झाँसी का वह अभागा ब्राह्मण अर्थ-लोभ से मेरे पुत्र को अपनी कन्या समर्पित करता।

"इन बातों पर जिस समय विचार करता हूँ, उस समय मन में यही बात आती है कि मैंने अपने ही हाथों अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर दी। मुझ सा नीच संसार में शायद और कोई न होगा।"

इतना कह कर नारायण त्र्यम्बक शास्त्री मौन हो गए। योगिराज की आँखें भी डबडबा आईं। दोनों आदमी मुँह नीचा करके चुपचाप बैठ गए। कुछ देर बाद इस अद्भुत नीरवता को भङ्ग करते हुए योगिराज ने पूछा—क्या आपकी धर्मपत्नी भी आपको इस उद्देश्य से विचलित करने का प्रयत्न करती थीं ?

"कभी नहीं। वह बड़ी बुद्धिमती और पतिपरायणा थी। पुत्र का दुराचार देख कर उसे घोर मानसिक वेदना होती थी। दुःख के मारे वह कभी-कभी भोजन तक न करती थी। धीरे-धीरे मानसिक चिन्ता के कारण उसे क्षुधामान्द्य

का रोग होगया। बम्बई के एक बड़े डॉक्टर को उसे दिखाया। डॉक्टर ने यह राय दी कि मानसिक कष्ट के कारण इनकी भूख मन्द पड़ गई है। इन्हें लेकर आप सिंहलद्वीप की यात्रा कराइए। सामुद्रिक वायु के सेवन और विदेश-भ्रमण से इनका स्वास्थ्य सुधर जायगा। माता यहाँ भी मेरा विरोध करने लगी। उसने मेरी स्त्री की समुद्र-यात्रा का घोर प्रतिवाद किया। मेरी स्त्री अपनी सास की बड़ी आज्ञाकारिणी थी। वह सिंहलद्वीप जाने पर राजी न हुई। फल यह हुआ कि एक महीने के भीतर ही शरीर-पिञ्जर को छोड़कर उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।"

शास्त्री जी की बात सुन कर योगिराज ने कहा—पिता-माता की अनुचित भक्ति से लोगों का उपकार कम, अपकार ही अधिक होता है?

"इसे क्या तुम माता-पिता की भक्ति कहते हो? रोग-ग्रसित माता-पिता को कुपथ्य देने से जितना बड़ा पाप है, उनके संस्कारों को पुष्ट करना उससे भी बड़ा पाप है। एक छोटा सा बच्चा, जिसे अपने हिताहित का कुछ भी ज्ञान नहीं है, अगर आग मे हाथ डालने के लिए रोने लगे तो क्या बुद्धिमान् पिता उसे आग से खेलने देता है? हमारे देश के अधिकांश माता-पिता अभी छोटे से बच्चे हैं—हिताहित-ज्ञान-शून्य अबोध शिशु हैं। उन्हें ठीक रास्ते पर लाने के लिए उपयुक्त शासन की आवश्यकता है। आज से

उत्साह व साहस और प्रौढ़ावस्था का ओज मुझमें अब भी बाक़ी है ।"

बातचीत करने के बाद दोनों आदमी सो गए। रात दो घड़ी बाक़ी रहते ही योगिराज त्र्यम्बक शास्त्री से बिदा होकर झाँसी की ओर चल पड़े।



अठारहवाँ परिच्छेद

प्रेम और कर्त्तव्य



भात होने में अभी कुछ विलम्ब है। आकाश बादलो से घिरा हुआ है। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। गङ्गा किनारे वायु सो-सो करके बड़े वेग से बह रहा है। कलकल निनाद करती हुई नदी पूर्व की ओर प्रवाहित हो रही है। शिव-मन्दिर से लगभग दो कोस की दूरी पर नदी का तटवर्ती मार्ग पकड़े हुए योगिराज लगातार दक्षिण-पूर्व दिशा में बढ़ते चले जा रहे हैं। गगन-मण्डल अब भी अन्धकारावृत्त है। बीच-बीच में बिजली चमक कर नदी का वक्षस्थल प्रकाशित कर जाती है, किन्तु विद्युतालोक के तिरोहित होते ही तमोराशि पुनः दृष्टि का अवरोध कर लेती है। योगिराज मन ही मन सोचते जा रहे हैं—यह घोर तिमिर-मण्डल भी मानव-जीवन के मोहान्धकार की भाँति है। ईश्वरीय प्रकाश क्षणिक चपला-ज्योति के समान मनुष्य के अन्तरा-

काश को प्रकाशित कर देता है। उस समय मनुष्य की दृष्टि सतत प्रवाहिनी नदी की भाँति जीवन की अनन्तता को देख लेती है, किन्तु मोहान्धकार शीघ्र ही दृष्टि पर परदा डाल कर सबको अदृश्य कर देता है।

इस प्रकार सोचते-विचारते वह एक कोस और आगे निकल गए, इतने में प्रभात हुआ, किन्तु आकाश अब भी मेघाच्छन्न है। दूर की कोई वस्तु साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ती। तीन-चार कोस पैदल चलने के कारण वह कुछ थक से गए थे। विश्राम करने के अभिप्राय से नदी-पार्श्व-स्थित वृक्षराज की छाया में बैठ कर वह गङ्गा की लहरों का कल्लोल देखने लगे।

नदी के प्रवाह में चार-पाँच बड़ी-बड़ी नावें निर्वाध वही चली जा रही थीं, किन्तु नाविक का किसी पर भी पता न था। उद्देश्यहीन मानव-जीवन की भाँति ये नाविक-शून्य नौकाएँ भी तरङ्गो के थपेड़े खाकर कभी इधर और कभी उधर चली जाती थीं। देखते ही देखते एक नाव चट्टान से आ लगी। भूमि-खण्ड के ऊपर यह नौका इस मजबूती से बँध गई कि दुर्द्धर्ष तरङ्गो का आघात इसे टस से मस न कर सका। वारम्बार लहरों की चोट खाकर नाव फटने लगी। उस समय ऐसा मालूम होता था मानो कोई लक्ष्य-विहीन मानव-जीवन बहुत दिनों तक संसार में इधर-उधर भटकने के बाद आसक्ति के टीले से टकरा कर नष्ट हो रहा है।

योगिराज की दृष्टि इस डूबती हुई नौका पर पड़ी। वह जहाँ बैठे हुए थे वहाँ से केवल बीस-पच्चीस हाथ की ही दूरी पर यह नौका टीले से टकराई हुई अपने जीवन के दारुण अन्त की प्रतीक्षा कर रही थी। नौके पर कोई छज्जा नहीं थी। उसके भीतर दो-तीन अङ्गरेजो की लाश दिखाई पड़ी। योगिराज को उसी समय स्मरण हो आया कि इलाहाबाद जाने के अभिप्राय से अङ्गरेज लोग नावों पर सवार हुए थे और विद्रोहियों ने गोली चलाकर उनकी हत्या की थी। उनके मन मे विद्युद्वेग से यह विचार दौड़ गया कि शायद इसके भीतर कोई जीता हो। वह धीरे-धीरे नौका के पास जाकर उस पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगे। इतने में एक मेम ने बड़े जोरो से चिल्ला कर अपनी बन्दूक ऊपर उठा लिया। नाव पर का गोला-बारूद आदि सभी सामान वृष्टि से भीग कर नष्ट हो गए थे। मेम बन्दूक के अग्रभाग से बार-बार योगिराज के कन्धे पर प्रहार करने लगी। दो-तीन प्रहार सह चुकने के बाद योगिराज ने उक्त अङ्गरेज-रमणी को आश्वासन देते हुए अङ्गरेजी मे कहा—

"Madam, you need not be frightened, I am not a mutineer—can I help you in any way"—"मेम साहब, आप भयभीत न हों, मैं विद्रोही नहीं हूँ—कहिए, मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

यह सुन कर रमणी ने बड़े कर्कश स्वर में उत्तर दिया—

"Help—help from a nigger? You treacherous, villain, murderer!"—"सहायता, एक हब्शी से सहायता? विश्वासघाती, धूर्त, हत्यारे!"

रमणी ने पुनः बन्दूक़ की नाल से योगिराज के मस्तक पर प्रहार करना चाहा, किन्तु योगिराज ने तुरन्त उसकी बन्दूक़ पकड़ ली और करुण-स्वर मे कहा—"Madam, in the name of God, I assure you. I have no intention to do you any harm"—"मेम साहब, ईश्वर की शपथ खाकर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं किसी प्रकार आपका अनिष्ट करना नहीं चाहता।"

"In the name of God? You blasphemous race. Have you any God? You treacherer, Murderer!"—"ईश्वर की शपथ खाकर? ईश्वर की निन्दा करने वालो, तुम्हारा भी कोई ईश्वर है? विश्वास-घातक, हत्यारे!"

"Madam, have patience. Hear what I have to say. I am not your enemy"—"मेम साहब, धीरज धारण कीजिए। मेरी बात सुनिए! मैं आपका शत्रु नहीं हूँ।"

"To hear you—a murderer? I will kill you if you attempt to commit any outrage upon me. I will certainly avenge the blood of my

husband and child."—"तुम्हारी बात सुनूँ हत्यारे ! यदि तुमने मेरा अपमान करने की कोई चेष्टा की तो मैं तुम्हारा वध करूँगी। अपने पति और बच्चे का बदला मैं अवश्य चुकाऊँगी।"

इतना कहकर उस रमणी ने नाव में पड़ी हुई एक दूसरी बन्दूक़ उठा ली। उस नाव में सात-आठ बन्दूक़ें और रिवॉल्वर पड़े हुए थे। वह मेम योगिराज के मस्तक पर बन्दूक़ के अगले भाग से फिर प्रहार करना ही चाहती थी कि योगिराज ने उसकी बन्दूक पकड़ ली और कहा—"Madam, believe me, I will be friend you in your present distress."—"मेम साहब, मेरा विश्वास कीजिए। आपकी वर्तमान विपत्ति में मै आपकी सहायता करूँगा।"

रमणी नौका में मृतप्राय पड़ी हुई थी। उसका बायाँ हाथ गोली से घायल हो गया था। वह दाहिने हाथ से बन्दूक़ उठाकर योगिराज को मारने के लिए तैयार थी, इतने में बातचीत की उत्तजेना और जोर से अङ्ग सञ्चालन करने के कारण वह पुनः निस्तेज होकर कटे हुए वृक्ष की नाईं नौका पर गिर पड़ी और बेहोश हो गई। प्यास के मारे उस की जीभ और कण्ठ सूखे जा रहे थे। उसमें बोलने की भी शक्ति नहीं थी। नाव में अङ्गरेज़ों के पानी के बर्तन टूटे हुए पड़े थे। योगिराज एक टूटे हुए बर्तन में पानी लेकर रमणी के मस्तक पर बार-बार ठण्ढे जल का छींटा देने लगे।

वह कुछ देर के बाद होश में आई और उसने जल पीने की कुछ इच्छा प्रकट की। योगिराज धीरे-धीरे उसके मुँह में जल छोड़ने लगे। जल पीकर जब वह पूर्णतः चैतन्य हो गई तब उसने बड़े कातर स्वर में कहा—

"Kill me, if you like. But my honour—For God's sake don't attempt to violet my honour. If you are a sepoy act like a soldier"—"मुझे मार डालो, अगर तुम चाहते हो। किन्तु मेरा सम्मान—ईश्वर के लिए मेरा सम्मान नष्ट न करो। यदि तुम सिपाही हो तो वीर सैनिक की भाँति आचरण करो।"

"Madam, I again assure you, I am neither a sepoy nor a mutineer. I look upon you as my mother or sister. Please tell me, can I render you any help in your present distress?"—"मेम साहब, मैं फिर आपको विश्वास दिलाता हूँ, मैं सिपाही या विद्रोही नहीं हूँ। आपको अपनी माता अथवा बहिन की भाँति मानता हूँ। कहिए, इस विपत्ति में मै आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

"Excuse me, if I have injustly suspected your motive. But I can hardly believe what you say. Your words are very sweet indeed. But you are a native—a nigger—that treacherous race. Did

not Nana—that archvillain always treat us with great kindness and courtsey? Did he not swear that he would allow us to leave this place unmolested? Oh! Treachery—hideous treachery! For God's sake go away and leave me. I will die by the side of my husband and child."—"मुझे क्षमा करो, अगर मुझसे तुम्हारा अभिप्राय समझने में अन्याय हुआ है। किन्तु मैं तुम्हारी बातो पर विश्वास कदापि नहीं कर सकती। तुम्हारी बोली है तो बड़ी मीठी, किन्तु तुम इस देश के रहने वाले हो—हब्शी हो। तुम्हारी जाति विश्वासघाती है। क्या नाना—वह धूर्तों का सरदार नाना—हम लोगो के साथ सदा दया और सौजन्य का व्यवहार नहीं करता था? क्या उसने शपथ खाकर नहीं कहा था कि वह हम लोगो को निर्विघ्न इस स्थान से चले जाने देगा? ओह! विश्वासघात—भयानक विश्वासघात! ईश्वर के लिए तुम यहाँ से चले जाओ, मुझे अकेली छोड़ दो। मैं अपने स्वामी और सन्तान के बग़ल में मरूँगी।"

"Madam, I understand you very well. You are quite justified in suspecting me or my motive. But I assure you I have no other motive in this world, or in this life than to serve God and huminity. Please, tell me if I can help you

in any way. Have you any friend or relative in any part of this country? If you have, I will try to leave you under their protecion."—
"मेम साहब, मैं आपके भावों को अच्छी तरह समझता हूँ। मुझमें अथवा मेरे उद्देश्य में आपका शङ्का करना सर्वथा उचित है। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, इस संसार या इस जीवन में ईश्वर और मनुष्य-जाति की सेवा के अतिरिक्त मेरा और कोई उद्देश्य नही। कृपा कर बताइए, मैं किस प्रकार आपकी सेवा कर सकता हूँ? इस देश के किसी भाग में आपके कोई मित्र या आत्मीय हैं? मै आपको उनकी देख-रेख में पहुँचा देने का प्रयत्न करूँगा।"

"O, there is no hope for my life. I will die here—here in this boat by the side of my husband and child. *Would to God* I might die with my honour unsullied and undefiled"—
"ओह! मेरे बचने की कोई आशा नहीं। मैं इसी स्थान पर मरूँगी—इसी नाव में, अपने स्वामी और सन्तान के पास मरूँगी, ईश्वर मुझे शक्ति दे कि मैं अपने धर्म की रक्षा कर सकूँ।"

"Madam, you are an angel, pure in thought and words. But there is every danger to your life and honour here. The mutineers will soon

come up and search these boats. And before evening you will be a prisoner in their hands."—"मेम साहब, आप स्वर्ग की देवी हैं, मन और वचन से पवित्र है। किन्तु यहाँ रहने से आपके जीवन और सम्मान को हर क़िस्म का ख़तरा है। विद्रोही अभी यहाँ आ जायँगे और इन नावों को ढूँढ़ निकालेंगे। और सन्ध्या होने के पहले ही आप उनके हाथों बन्दी हो जायँगी।"

"Young man—there is no danger to my honour. I am a soldier's daughter and a soldier's wife. As soon as they will come up, I will throw myself into this river."—"युवक, मेरी इज्जत जाने का कोई भय नहीं। मैं वीर-कन्या और वीर-पत्नी हूँ। विद्रोहियो के यहाँ पहुँचते ही मै नदी में कूद कर अपनी जान दे दूंगी।"

"I doubt not, lady, your extraordinary courage. But why think of committing suicide, if God in his infinite mercy alloweth you an opportunity to avoid it?"—"देवी, मैं आपके अद्भुत साहस में अविश्वास नही करता। किन्तु उस करुणा-सागर परमात्मा ने जब आपको आत्म-रक्षा का एक अवसर दिया है तो आप आत्मघात की बात क्यों सोच रही हैं?"

"But is there any way to escape? Young

man, please don't deceive me. Tell me who you are and what on earth can induce you to do me any good?"—"किन्तु बचने का कोई उपाय भी है? युवक, मुझे धोखा न दो। बताओ, तुम कौन हो और किस इरादे से मेरा उपकार करना चाहते हो?"

"Madam, I don't recollect that I have ever deceived anybody in my life. In offering my assistance to you I have no other motive than to serve God and humanity. I am a Sanyasi—a recluse. The motto of my life is "Love and Duty." I can hardly leave you in your present distress without violating my duty to humanity."—"मेम साहब, मुझे याद नहीं आता कि मैंने इस जीवन में कभी किसी को धोखा दिया है। आपकी सहायता करने में मेरा एकमात्र अभिप्राय ईश्वर और मनुष्य-जाति की सेवा करना है। मैं संन्यासी हूँ—संसार में मेरा कोई स्वार्थ नहीं। 'प्रेम और कर्त्तव्य' ही मेरे जीवन का मन्त्र है। इस विपत्ति में यदि आपकी सहायता न करूँ तो मैं मनुष्य-जाति के प्रति अपने कर्त्तव्य से पतित होऊँगा।"

"Strange—very strange indeed! Has God the Almighty Father sent you for relief? It must be so—it must be so, otherwise is it possi-

ble that a nigger—that treacherous race should cherish in his black heart such noble thoughts as these?"—"आश्चर्य! महान् आश्चर्य!! क्या वास्तव में परमात्मा ने—उस सर्व-शक्तिमान् पिता ने तुम्हे मेरी रक्षा के लिए भेजा है? यही बात है—यही बात है, नहीं तो क्या यह कभी सम्भव है कि एक हब्शी—एक विश्वासघाती जाति—के काले हृदय मे ऐसे पवित्र विचारों का उद्भव हो?"

"Madam, excuse me, such erroneous notion which you English people generally entertain as regards the character of the people of this country has undoubtedly brought upon you this di aster."—"मेम साहब, मुझे क्षमा कीजिए। आप अङ्गरेज़ लोग इस देश के निवासियों के सम्बन्ध में ऐसा भ्रमपूर्ण विचार रखती है, इसी से आपके ऊपर यह विपत्ति आई है, इसमे मुझे कोई शङ्का नहीं!"

"Well, it is quite useless to talk upon that subject just now. But let me know what you propose to do for the safety of my life and honour."—"इस समय इस विषय पर विवाद करना बिलकुल व्यर्थ है। मुझे यह बताइए कि मेरा जीवन और सम्मान बचाने के लिए आप कौन सा उपाय काम मे लाना चाहते हैं?"

"Please change your dress and come along with me "—"आप अपने कपड़े बदल-डालिए और मेरे साथ चलिए।"

"Where are you going ?"—"आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"I was going to Indore. But I can hardly leave you here in your present distress without breaking the vow I have taken. So I am not going there untill I see you out of danger."—"मैं इन्दौर जा रहा था। किन्तु आपको इस विपत्ति में छोड़ कर चले जाने से मेरे जीवन का व्रत भङ्ग हो जायगा। इसलिए आपको किसी सुरक्षित स्थान में पहुँचाने के पहले मैं वहाँ नहीं जा सकता।"

" I will be quite safe either at Allahabad or at Lucknow."—"इलाहाबाद या लखनऊ पहुँच कर मैं बिलकुल निरापद हो सकती हूँ।"

" Madam, Allahabad is more than hundred miles distant from this place. You are utterly exhausted. You will not be able to undertake such a long journey."—" मेम साहब, इलाहाबाद यहाँ से सौ मील से भी अधिक दूर है। आप बहुत दुर्बल हैं, पैदल इतनी दूर की यात्रा नहीं कर सकतीं। "

"Then we may go to Lucknow"—"तब हम लोग लखनऊ जा सकते हैं ?"

"Yes, Lucknow is the nearest station. If you can walk fast, we may reach Lucknow within twenty-four hours."—"हाँ, लखनऊ सबसे नजदीक है। अगर आप तेज चलें तो हम लोग लखनऊ चौबीस घण्टे मे पहुँच सकते हैं।"

योगिराज की बात अभी समाप्त भी न होने पाई थी कि गङ्गा के उस पार विद्रोहियों का एक दल दिखाई पड़ा। वे गङ्गा का किनारा पकड़े हुए भागे हुए अङ्गरेज़ों की खोज में पूरब की ओर चले जा रहे थे। उन्हें देखते ही योगिराज ने घबरा कर कहा—

"Madam, take these two-coloured clothes and change your dress atonce, they are coming"—"मेम साहब, ये दोनों गेरुए वस्त्र लीजिए और जल्दी से अपने कपड़े बदल डालिए। विद्रोही इधर ही आ रहे है।"

योगिराज के पास पहने हुए वस्त्र के अतिरिक्त दो और वस्त्र रहते थे। एक से चादर की भाँति वह अपना शरीर ढकते थे और दूसरे को मद्रासी लोगो की भाँति सिर पर बाँधते थे। इस समय उन्होने शरीर और मस्तक पर के दोनो कपड़े उतार कर उस स्त्री को दे दिए। मेम इस देश की स्त्रियो की भाँति आसानी से अपने कपड़े न बदल सकी।

दूसरे आदमियों के सामने उसके लिए कपड़े बदलना ब
कठिन काम था। एक ओर वह कपड़े बदलने में अपनी अ
मर्थता प्रकट कर रही थी, दूसरी ओर योगिराज उस
शीघ्रता करने का अनुरोध कर रहे थे। वह इस देश
स्त्रियों की भाँति कमर में वस्त्र लपेटना जानती ही न थी
बहुत मुश्किल से किसी तरह वस्त्र बदल कर योगिनी
वेश मे नौका पर बैठी। योगिराज नाव खेकर गङ्गा के
पार ले गए। वहाँ से दोनो व्यक्ति रात-दिन लगातार पैद
चल कर दूसरे दिन दस बजे लखनऊ पहुँचे।





कर्म की उपासना



न मास के प्रारम्भ में ही अवध के भिन्न-भिन्न स्थानो के सिपाहियों ने विद्रोही बन कर अङ्गरेजों का संहार करना आरम्भ कर दिया था। सीतापुर, बेरुच, दरियाबाद, सिकरोर, गोंडा, सुलतानपुर, फैजाबाद आदि के धिकांश अङ्गरेज उनकी कोपाग्नि में पडकर अपनी जान से थ धो चुके थे। कुछ अङ्गरेज बाल-बच्चो के साथ भाग कर खनऊ चले गए थे। यद्यपि लखनऊ के भी दो-एक रेजिएटों के सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया था, तथापि यहाँ के ङ्गरेज अभी तक कानपुर की भाँति पिञ्जरबद्ध नहीं हुए । वे दल बाँध कर सशस्त्र शहर में घूमते-फिरते थे। जब ठ के सिपाहियों के विद्रोही होने की खबर लखनऊ हुँची तो वहाँ के अङ्गरेज भी आत्म-रक्षा का उपाय सोचने

लगे। मई मास से ही कई बङ्गाली कर्मचारी स्पेशल पुलिस में भर्त्ती होकर रात में शहर के स्थान-स्थान पर पहरा दिया करते थे। अङ्गरेज़-कर्मचारी रेज़िडेण्ट के निवास-स्थान और मछली-भवन की क़िलेबन्दी का प्रबन्ध कर रहे थे। विद्रोह हो जाने पर अङ्गरेज़ी सेना और शहर में रहने वाले अन्य अङ्गरेज़ों के लिए खाने-पीने के पदार्थों की कमी न होने पावे, इसके लिए मैदा, घी आदि अनेक आवश्यक पदार्थ इकट्ठे किए जा रहे थे। लम्बे क़द का, किन्तु रुग्ण शरीर वाला एक अङ्गरेज़-युवक रात-दिन लखनऊ शहर में चक्कर लगाया करता था। रात-दिन, सुबह-शाम, जिस समय देखिए, यह विचित्र पुरुष किसी न किसी प्रमुख स्थान पर कुछ आवश्यक कार्य करता हुआ दिखाई पड़ता था। कभी घोड़े की पीठ पर बैठकर लखनऊ शहर का चक्कर लगा रहा है, तो कभी मछली-भवन की क़िलेबन्दी का इन्तज़ाम कर रहा है। कभी छद्म-वेश धारण कर गलियों में घूम रहा है तो कभी रेज़िडेन्सी में बैठा हुआ ढेरों काग़ज़-पत्र देख रहा है। बेचारे युवक को मई की १५ वीं तारीख से जून के प्रथम सप्ताह तक दिन-रात में एक दिन की कौन कहे, कभी आध घड़ी के लिए भी सोने की फ़ुरसत न मिली। निरन्तर जागरण और अविश्रान्त परिश्रम से उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया था! बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें निस्तेज होकर भीतर की ओर धँस गई थीं। मुख म्लान हो गया

था। चेहरे पर रक्त-मांस का पता नहीं था। केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखाई पड़ती थीं। इस मृतप्राय रुग्णावस्था में भी वह युवक किस तत्परता और हृदय की लगन के साथ कार्य कर रहा था, इसे देख कर आश्चर्य-चकित होना पड़ता था। इस देश के किसी आदमी की यह हालत हो जाय तो वह चारपाई पर करवट भी न बदल सकेगा। किन्तु वह युवक बीसवीं शताब्दी का आर्य-वीर नहीं था—अपने बाप-दादों की गौरव-गाथा की आड़ में अपनी अकर्मण्यता छिपाने वाला वचन-शूर नहीं था, वह था कर्म की उपासना करने वाली अङ्गरेज़-जाति की सन्तान। अपने देश और जाति के कल्याण-साधन की शुभेच्छा से उसके क्षीण शरीर में हज़ार हाथी का बल आ गया था। यदि ऐसी बात न होती तो वह रुग्ण युवक लगातार इक्कीस दिनों तक आहार और निद्रा त्याग कर किस प्रकार सिर-तोड़ परिश्रम कर सकता था? उसकी आकृति इतनी क्षीण और शरीर इतना निर्बल हो गया था कि अकस्मात् देखने पर वह चीनाबाज़ार का कोई भिक्षुक या जहाज़ का कोई दरिद्र खलासी जान पड़ता था। किन्तु उसे देखते ही लखनऊ का बड़े से बड़ा अङ्गरेज खड़ा हो जाता था और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए अपनी टोपी उतार लेता था। कैसे आश्चर्य की बात है कि एक क़ुली के जैसे म्लान-मुख और क्षीण शरीर वाले अङ्गरेज़ को देख कर

लखनऊ का डिप्टी-कमिश्नर भी खड़ा होकर उसका सम्मान करता है ?

९ वीं जून को लगभग १० बजे दिन को यह रोगाक्रान्त अङ्गरेज़ घोड़े की पीठ पर सारे शहर का चक्कर लगाने के बाद रेज़िडेन्सी वाले बँगले के बरामदे में आकर बैठ गया। आज वह बिलकुल थक गया था। उसकी लम्बी दाढ़ी छाती तक लटक रही थी। अकस्मात् उनके नज़दीक एक मोटे-ताज़े और स्वस्थ अङ्गरेज़ ने आकर कहा—

"Sir Henry, at least forty-eight hours of complete rest is necessary to preserve your life. I see you are fainting—you are fainting."—"सर हेनरी, आपकी जीवन-रक्षा के लिए कम से कम अड़तालीस घण्टे के पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। मैं देख रहा हूँ, आप मूर्च्छित हो रहे हैं—आपकी चेतना लुप्त हो रही है।"

वह रोगाक्रान्त युवक यहाँ तक क्लान्त हो गया था कि उसमें उत्तर देने की शक्ति भी बाकी नहीं थी। "डॉक्टर फेरर" इतना कहते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा। लखनऊ के प्रधान-प्रधान अङ्गरेज़-कर्मचारियों ने मिलकर शीघ्र ही एक कार्यकारिणी काउन्सिल बनाने का प्रस्ताव किया। गॉबिन साहब, अमानी साहब, मेजर वैंक्स, कर्नल इंग्लिस और मेजर एण्डरसन उस काउन्सिल के मेम्बर चुने गए और

रोगाक्रान्त युवक के आरोग्य लाभ करने तक इसी काउन्सिल के ऊपर सब कामों के प्रबन्ध का भार दिया गया। काउन्सिल ने सबसे पहले सिपाहियों को निरस्त्र कर उन्हे विदा किया, किन्तु अड़तालीस घण्टा पूरा होने के पहले ही वह रोगी युवक उठ बैठा और उसने कार्य-भार अपने हाथ में ले लिया। वह रोग से जर्जर शरीर नए उत्साह और अथक उद्यम के साथ पुनः दिन-रात कार्य करने लगा। ऐसा जान पड़ता था मानो कर्म की एकान्त उपासना के लिए ही इस महापुरुष की सृष्टि हुई है।

कदाचित् पाठकगण इस कर्मवीर का परिचय प्राप्त करने के लिए अधीर हो रहे होंगे। अतः नीचे इस महापुरुष का परिचय दिया जाता है :—

रोगाक्रान्त अङ्गरेज़-युवक का नाम था सर हेनरी लॉरेन्स। यह विद्रोह आरम्भ होने के थोड़े ही दिन पहले अवध के चीफ कमिश्नर होकर लखनऊ आए थे। सरकारी नौकरी मे आने के पश्चात् अल्प काल में ही इन्होंने अपने प्रति भारतवासियो की श्रद्धा और भक्ति आकर्षित कर ली थी! इससे प्रसन्न होकर गवर्नर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग ने इन्हे उपयुक्त पद प्रदान किया था। स्वदेश की सेवा और स्वजाति की उन्नति के लिए मरते-मिटने मे ही वह अपना गौरव समझते थे। इनके पिता अलेक्ज़ेण्डर लॉरेन्स ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सैनिक विभाग में नौकर थे। टीपू सुल्तान के साथ अङ्गरेजों

का जो युद्ध हुआ था उसमें अलेक्ज़ेण्डर लॉरेन्स ने सेना के निराश दल *(Forlorn Hope) में शामिल होकर अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी थी, किन्तु उस युद्ध में वह मरे नहीं, केवल गोली लगने से बेहोश होकर पृथ्वी पर पड़े हुए थे। अङ्गरेज़ सैनिकों ने उन्हें मरा हुआ समझ कर वहीं छोड़ दिया, किन्तु एक हिन्दुस्तानी सिपाही उनके आहत शरीर को अपने कन्धे पर रख कर अङ्गरेज़ी शिविर तक ले आया। जब उन्हें कुछ होश हुआ तो सिपाही ने उनसे कहा—"भाई लॉरेन्स, तुम बड़े भाग्यवान् हो। मैंने यह समझ कर कि तुम्हारे शरीर को सियार और कुत्ते खा डालेंगे, मैं यहाँ तक अपने कन्धे पर रख कर लाया हूँ। मैं किसी और फिरङ्गी का मृतक शरीर थोड़े ही छू सकता था।" पाठक इसी से समझ सकते हैं कि हेनरी लॉरेन्स के पिता भी भारतवासियों के कितने प्रिय पात्र थे।

सर हेनरी का जन्म सिंहलद्वीप के मातुरा नगर में हुआ था। इनके पैदा होने के छः महीने बाद इनकी माता मद्रास चली आई थीं। उस समय मद्रास की एक अङ्गरेज़-महिला ने इनकी माता से पूछा था—"मातुरा में बहुत से हीरे पाए जाते हैं, आप कौन सा हीरा लाई हैं?" लॉरेन्स की माता ने गोद में लिए हुए लॉरेन्स को दिखाकर कहा—

---

* युद्धक्षेत्र में प्राण की आशा छोड़ कर जो सेना शत्रु के सामने बढ़ती है उसे निराश दल कहते हैं।

"मातुरा से केवल यही हीरा लाई हूँ।" इस घटना के बाद से हेनरी के आत्मीय लोग उन्हे "मातुरा का हीरा" (Matura Diamond) कहकर पुकारने लगे। वास्तव में सर हेनरी लॉरेन्स बुद्धि, विवेक, कर्तव्य और ज्ञान में हीरे की भाँति ही प्रखर थे।

जिस समय गवर्नर-जनरल लॉर्ड डलहौजी पञ्जाब को अङ्गरेजी राज्य में मिलाने लगे उस समय लॉरेन्स ने उनके इस अन्यायपूर्ण कार्य का घोर प्रतिवाद किया, इससे लॉर्ड डलहौजी इनसे नाराज़ हो गए। किन्तु पञ्जाब के निवासियों की इनमें अटल श्रद्धा और अविचल भक्ति थी। पञ्जाब में इन्हे रखे बिना शान्ति स्थापित करने का और कोई उपाय न था। अन्त में मजबूर होकर लॉर्ड डलहौजी ने इन्हे पञ्जाब-बोर्ड का प्रधान मेम्बर नियुक्त किया और इनके भाई जॉन लॉरेन्स तथा एक और अङ्गरेज़ को बोर्ड का अन्यतम मेम्बर बनाया।

हेनरी लॉरेन्स बड़े ही धार्मिक और न्याय-परायण व्यक्ति थे। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वार्थ-साधन के लिए पञ्जाबियो का अनिष्ट करने को तैयार न थे। इससे बोर्ड के अन्यतम मेम्बर जॉन लॉरेन्स के साथ उनका मतभेद दिन-दिन बढ़ने लगा। लॉर्ड डलहौजी जॉन लॉरेन्स के मत का समर्थन करने थे, इससे सर हेनरी के लिए पञ्जाब में रहकर काम करना कठिन हो गया। धीरे-धीरे दोनों भाइयों में घोर

विवाद उठ खड़ा हुआ। कहीं सदा के लिए दोनो आदमियो में भ्रातृ द्वेष न उत्पन्न हो जाय, इस आशङ्का का निवारण करने के लिए दोनो ने अलग-अलग गवर्नमेण्ट के पास पत्र लिख भेजा 'मुझे इस स्थान से बदल कर मेरे भाई के हाथों में पञ्जाब का शासन-भार रहने दिया जाय।' लॉर्ड डलहौजी जॉन के मत के समर्थक तो थे ही, उन्होने हेनरी को दूसरी जगह बदलने के अभिप्राय से पञ्जाब-बोर्ड को एकदम तोड़ दिया। जब हेनरी पञ्जाब से चले गए तो जॉन लॉरेन्स की आँखें खुलीं। उन्होने देखा कि हेनरी जिस नीति से पञ्जाब का शासन करते थे, उसी नीति का अवलम्बन किए बिना पञ्जाब में शान्ति स्थापित करना असम्भव है। उन्हें क्रमशः अनुभव होने लगा कि हेनरी का छोटा भाई समझ कर ही पञ्जाबी लोग मुझ पर इतनी श्रद्धा और भक्ति रखते थे। यदि पञ्जाबियो को यह मालूम होता कि मैं हेनरी का विरोधी हूँ तो वे कदापि मुझ पर इतनी श्रद्धा न रखते। यह सब अच्छी तरह देख-सुन लेने पर उनका माथा ठनका।' किन्तु वह बहुत चालाक थे। उन्होंने झटपट अपनी नीति बदल कर सभी बातो में सर हेनरी का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। जब लॉर्ड डलहौजी को कलकत्ते के गवर्नमेण्ट-हाउस में बैठे हुए जॉन लॉरेन्स की लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट मिली तो उसे पढ़ कर सर पीटते हुए बोले—हाय! हाय! जॉन तो एकदम हेनरी ही हो गया!

हेनरी के पञ्जाब छोड़ने से जॉन को बड़ा मानसिक कष्ट हुआ। साथ ही हेनरी के इस जीवन का सुख-सूर्य भी सदा के लिए अस्त हो गया। हीरे का हीरे और रत्न का रत्न से ही मेल खाता है। सर हेनरी जैसे न्याय-परायण, धर्म भीरु और उदार-हृदय थे, वैसे ही उनके भाग्य से उन्हे धर्मपत्नी भी मिली थी। बेचारे हेनरी सर्वे-विभाग में मामूली वेतन पर काम करते थे और उनकी सहधर्मिणी उनके साथ नाना प्रकार के कष्ट सहती हुई सती सीता की नाई जङ्गल-जङ्गल घूमती थी। सर हेनरी उनसे बराबर शिमला अथवा आगरे में रहने का अनुरोध किया करते थे। किन्तु पति-प्राणा अनरिया पति का साथ छोड़ कर किसी दूसरे स्थान पर जाने के लिए तैयार न थी।

बैलगाड़ी पर चढ़ कर स्वामी के साथ गोरखपुर, आजमगढ़ आदि जिलो में भ्रमण करने मे ही उन्हे आनन्द मिलता था। विवाह के पहले उन्होंने हेनरी की बड़ी वहिन से यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं हेनरी को सदा ईसाई-धर्म के मार्ग पर रक्खूँगी, उन्हे कभी महात्मा ईसा के पवित्र आदर्श से भ्रष्ट न होने दूँगी। इसलिए पति की कल्याण-कामना को हृदय मे वहन करते हुए उन्हें जङ्गल-जङ्गल भटकने में कोई कष्ट नहीं जान पड़ता था। पञ्जाब छोड़ने के बाद हेनरी राजपूताना के पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त हुए। वहाँ पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद उनकी

प्यारी अनरिया का स्वर्गवास हो गया। अब हेनरी को इस जीवन में पार्थिव सुख की आशा न रही। उन्होंने एक-मात्र कर्तव्य का मार्ग पकड़ा। कर्तव्य-पालन के अतिरिक्त उनका और कोई लक्ष्य नहीं रह गया। वह हाल ही में अवध के चीफ कमिश्नर नियुक्त होकर यहाँ आए थे। इसके पहले यह लिखा ही जा चुका है कि नवीं जून को शारीरिक दुर्बलता के कारण वह अकस्मात् अचेत हो गए थे। ग्यारहवी जून को उनकी तबीयत कुछ अच्छी हुई। ग्यारहवीं जून के पहले अवध के भिन्न-भिन्न ज़िलों के अङ्ग-रेजों को विद्रोहियों ने मार डाला था। इस समय लखनऊ को छोड़ कर अवध के और किसी स्थान मे अङ्गरेजों का अस्तित्व बाक़ी नहीं था। सारा अवध अङ्गरेजों के क़ब्ज़े से बाहर चला गया था। लखनऊ में भी एक रेजीमेण्ट के सिपाहियों ने विद्रोह किया और अङ्गरेज़ो की जान लेने लगे। लॉर्ड कैनिङ्ग ने हेनरी लॉरेन्स को लिखा कि अन्यान्य अङ्गरेजों के साथ लखनऊ छोड़ दो। इसके उत्तर मे हेनरी लॉरेन्स ने लॉर्ड कैनिङ्ग को जो वीरतापूर्ण उत्तर दिया था, उसे प्रत्येक मनुष्य को अपने हृदय पर अङ्कित कर लेना चाहिए—यदि इस समय हम लोग लखनऊ छोड़ दें तो अवध के समीप-वर्ती बुन्देलखण्ड आदि सभी स्थानों के राजा इसी समय विद्रोही हो जायँगे। उस हालत में अङ्गरेज़ी राज्य की रक्षा करना अत्यन्त कठिन हो जायगा। इसलिए जीवन

को ख़तरे में डाल कर भी हम लोगों का लखनऊ में रहना ही अच्छा है। इस देश को बाहुबल से हम लोग अपने क़ब्ज़े में नहीं रख सकते। अङ्गरेज़ों के नाम की मोहनी शक्ति के नष्ट होने के साथ ही साथ अङ्गरेज़ी राज्य भी निश्चय ही नष्ट हो जायगा।

ग्यारहवीं जून से उन्तीसवीं जून तक सर हेनरी लॉरेन्स आत्मरक्षा के लिए अनेक प्रकार के प्रबन्ध करने में व्यस्त रहे। उन्होंने सिपाहियों की संख्या बढ़ाने के लिए अवध प्रान्त से बहुत से पेन्शन-प्राप्त वृद्ध सिपाहियों को बुला कर सेना मे रक्खा। बङ्गाली कर्मचारियों ने अभी तक लखनऊ नहीं छोड़ा था। वे दिन में रेज़िडेन्सी में आकर ऑफ़िस का काम किया करते थे और रात में शहर में पहरा देते थे। अविनाशचन्द्र बन्द्योपाध्याय अङ्गरेजो के सब से अधिक विश्वासपात्र थे।

जून प्रायः समाप्त हो चला। आज उन्तीसवीं तारीख़ है। आज प्रातःकाल ही अङ्गरेजो के गुप्तचर ने घबरा कर अविनाश बाबू से कहा—फ़ैज़ाबाद के रास्ते के पास ही चिनहात नामक ग्राम में विद्रोही सिपाही इकट्ठा हो रहे हैं।

आठ बजते-बजते अविनाश बाबू ने डिप्टी-कमिश्नर गॉबिन साहब के पास यह ख़बर पहुँचा दी। इसे सुनते ही रेज़िडेन्सी के सब अङ्गरेज़ व्याकुल हो गए। सर लॉरेन्स उसी समय प्रधान अङ्गरेज़-कर्मचारियों के साथ परामर्श

करने लगे। थोड़ी देर तक बातचीत करने के बाद ये सभी रेज़िडेन्सी के चारों ओर की भूमि का निरीक्षण करने के लिए घर से बाहर निकले। रेज़िडेन्सी के उत्तरी दरवाज़े से बाहर होकर थोड़ी देर तक सीधे पूर्व की ओर चलने के बाद ये लोग बेलीगार्ड के पास आकर खड़े हो गए। वहाँ खड़े-खड़े ये लोग प्रायः आध घण्टे तक बातें करते रहे। फिर पश्चिम की ओर मुड़ कर फेरर साहब के घर के पास आए और वहाँ से दक्षिण की ओर चल कर नया पोस्ट ऑफ़िस पहुँचे। ये लोग वहाँ से भी आगे की ओर बढ़े और अन्त मे किलेबन्दी किए हुए स्थान के दक्षिणी छोर पर पहुँचे। इसी स्थान पर कानपुर-बैटरी (Cawnpore Battery) स्थापित हुई थी और यहीं कानपुर का रास्ता भी समाप्त होता था। इस स्थान पर पहुँचते ही इन लोगों ने देखा कि गेरुवा वस्त्रधारी नङ्गे शरीर वाले एक पुरुष का कन्धा पकड़े हुए एक श्वेतकाय रमणी बड़े कष्ट से धीरे-धीरे उनकी ओर अग्रसर हो रही है। रमणी का रङ्ग-रूप तो बताता था कि वह कोई अङ्गरेज महिला है, किन्तु उसका पहनावा भारतीय स्त्रियों के जैसा था। गेरुवा वस्त्रधारी युवक और वैष्णवी रूप मे उस श्वेताङ्गी के पास पहुँचते ही सर हेनरी लॉरेन्स के पीछे से कर्नल फ़्लेचर साहब बोल उठे :—

"Is it you? Is it you? O, my child—my dearest child, so miserable!—"क्या तुम हो?

मेरी प्यारी बच्ची, क्या तुम हो ? तुम्हारी यह दुर्दशा !" यह कहते हुए जल्दी से दौड़ कर उन्होंने उस रमणी को छाती से लगा लिया। फ्लेचर साहब इतने ज़ोर से दौड़े कि गेरुवा वस्त्रधारी बेचारा क्लान्त युवक उनके धक्के से गिर पड़ा। रमणी ने युवक को पृथ्वी पर गिरते हुए देख कर कहा :—

"Papa, Papa dear, raise him, raise him from the ground. He has saved my life"—"बाबा, बाबा, इन्हें पकड़ कर उठाइए। इन्होंने मेरी जान बचाई है।"

एक दूसरे अङ्गरेज़ ने युवक को पकड़ कर उठाया। यह विचित्र घटना देख कर सभी विस्मित रह गए और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। कई मिनट ठहर कर सर हेनरी लॉरेन्स ने रमणी से उसका समाचार तथा कानपुर की घटना का हाल पूछा। किन्तु वह रमणी उस समय सम्पूर्ण कहानी आद्योपान्त सुनाने में असमर्थ थी। तीस घण्टे पैदल चलने के बाद वह बहुत थक गई थी। इस पर पिता को देखते ही हर्ष और विषाद की घटनाओं ने एक साथ ही उच्छ्वसित होकर उसके हृदय को अस्थिर कर दिया था। अपना समाचार सुनाते हुए बार-बार उसका गला भर आता था, टूटे-फूटे शब्दों में कानपुर का थोड़ा सा ही हाल कहने पाई थी कि हेनरी लॉरेन्स ने उसे और बोलने से निषेध किया

और उसके पिता से उसे रेजिडेन्सी में ले जाने को कहा। हेनरी लॉरेन्स ने नवागन्तुक गैरिक वस्त्रधारी युवक से पूछा—तुम क्या कानपुर में ही थे?

युवक ने अङ्गरेजी भाषा मे विस्तार के साथ सब हाल कहना आरम्भ किया, किन्तु वह भी बिलकुल क्लान्त हो गया था। उसे बातचीत करने मे कष्ट होने लगा। यह रमणी प्रायः दो कोस से उसका कन्धा पकड़ कर आ रही थी। युवक को ऐसा थका हुआ देख कर सर हेनरी लॉरेन्स ने अविनाश बाबू को बुला कर कहा—

"Abinash, you take this man along with you. He is quite exhausted. Give him sufficient refreshment and bring him back to me at 5 p. m. I want to hear from him all about the Cawnpore disasters"—अविनाश, तुम इस आदमी को अपने साथ ले जाओ। बिलकुल थक गया है। जब कुछ खा-पीकर स्वस्थ हो जाय तो शाम को ५ बजे मेरे पास लाना। मैं इसके मुँह से कानपुर की दुर्घटना का सब समाचार सुनना चाहता हूँ।"

यह कह कर सर हेनरी लॉरेन्स और उनके साथी दूसरे अङ्गरेज अपने स्थान को चले गए।

तीसवाँ परिच्छेद

इसी का नाम तो हिन्दू-समाज है



पूर्व परिच्छेद मे वर्णित गेरुआ वस्त्रधारी युवक योगिराज ही है, इसे पाठकगण अवश्य समझ गए होगे। योगिराज अविनाश बाबू के साथ उनके घर पर आए। उन्हे उस समय अविनाश बाबू का आतिथ्य स्वीकार करने में कोई आपत्ति न हुई। वह बहुत ही क्लान्त हो गए थे। विश्राम किए बिना उनके लिए कहीं जाना अत्यन्त कठिन था। हालिस साहब के मकान के पास जिस स्थान पर कानपुर बैटरी स्थापित हुई थी, उसी स्थान पर पहले-पहल अविनाश बाबू का योगिराज से साक्षात् हुआ। यहाँ से उनका मकान प्रायः आध कोस की दूरी पर था। रास्ते मे जाते हुए वह बार-बार घूम कर योगिराज के मुँह की ओर निहारते जाते थे। घर पहुँचने के पहले उन्होंने कम से कम पाँच-छः बार योगिराज

का मुँह बड़े ध्यान से देखा, किन्तु वह कुछ भी स्थिर नहीं कर सके। वह मन ही मन सोचते जाते थे, मैं भूल तो नहीं कर रहा हूँ? इस व्यक्ति की आकृति मेरे बाल्य-सहचर योगेश से हूबहू मिलती है। सुना था, योगेश संन्यासी हो गया। कहीं योगेश यही तो नही है?

अविनाश बाबू को बार-बार अपने मुँह की ओर निहारते देख कर योगिराज के मन में सन्देह हुआ। यह आदमी मेरे मुँह की ओर इतने गौर से क्यों देख रहा है? इसके मन में मेरे सम्बन्ध मे कोई शङ्का तो नही है?

थोड़ी देर के बाद उन्होने अविनाश बाबू से पूछा—महाशय, मेरी धृष्टता क्षमा कीजिएगा। मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

अविनाश बाबू बोले—पूछिए, क्या पूछना चाहते हैं?

"कोई विशेष बात नहीं, मैं केवल आपका नाम जानना चाहता हूँ।"

"मेरा नाम अविनाशचन्द्र बन्योपाध्याय है।"

"आप बङ्गाली हैं?"

"जी हाँ, बङ्गाल में ही मेरा निवास-स्थान था। किन्तु लगभग बारह वर्ष हुए, मैंने बङ्गाल छोड़ दिया।"

"बङ्गाल में आपका स्थान कहाँ था?"

"आपने शान्तिपुर का नाम तो सुना ही होगा? नदिया जिले में शान्तिपुर मेरा जन्म-स्थान है।"

यह उत्तर सुन कर योगिराज पुनः अपने साथी की ओर देखने लगे। उन्हें बाल्यकाल की सभी बातें एक-एक करके याद आने लगीं। किन्तु उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मैं इन्हें अपना परिचय कदापि न दूँगा।

आध घण्टे के भीतर ही वे दोनों घर पहुँच गए। अविनाश बाबू ने नौकरों से योगिराज को स्नान कराने के लिए कहा। अभी तक अविनाश बाबू की दृष्टि योगिराज के पीछे की ओर नहीं पड़ी थी। आने के समय वह आगे-आगे आ रहे थे और योगिराज उनके पीछे-पीछे। रास्ते में वह केवल पीछे फिर कर योगिराज का मुँह देख लिया करते थे। घर पहुँचने पर उनकी दृष्टि योगिराज के पीछे की ओर पड़ी तो उन्होंने योगिराज के कान की जड़ मे एक मांस-पिण्ड देखा। उसे देखते ही वह योगिराज को सम्बोधन करके कहने लगे—महाशय, आपका मुँह मेरे एक सहपाठी तथा बाल्य-सखा से बिलकुल मिलता-जुलता है। मैंने जब से आपको देखा है तब से यही बात सोच रहा हूँ। किन्तु अब तक मुझे अपने मन का भाव प्रकट करने का साहस नहीं हुआ। सब से विचित्र बात तो यह है कि मेरे उस मित्र के कान की जड़ मे जैसा मांस-पिण्ड था, ठीक वैसा ही मांस-पिण्ड आपके कान की जड़ मे भी देख रहा हूँ। सुना था, मेरा वह मित्र संन्यासी होगया।

अविनाश जब इतना कह कर रुके तो योगिराज ने

अपने मन का भाव दबाकर कृत्रिम उदासीनता दिखाते हुए कहा—क्या पृथ्वी में एक आकृति के दो मनुष्य नहीं हो सकते ?

"हो क्यों नहीं सकते ? किन्तु आपके कान की जड़ का मांस-पिण्ड देख कर मेरे मन में बड़ा सन्देह हो रहा है। आप कृपा कर मुझे अपना परिचय दें, तो मैं बड़ा अनुगृहीत होऊँगा। मैं अपने जिस मित्र की बात कह रहा हूँ, वह बड़ा ही सदाचारी, न्यायपरायण और सच्चरित्र था। बाल्यावस्था से ही वह अपनी महानता का परिचय देने लगा था। उसकी बुद्धि भी बड़ी तीक्ष्ण थी। उसके समान चरित्रवान् मनुष्य मैंने और नहीं देखा। मैं उसके साथ हिन्दू-कॉलेज में पढ़ता था। वह सदा मुझे सन्मार्ग पर चलाने की चेष्टा किया करता था। उसके उपदेशानुसार चलने से मुझे इस जीवन मे अनेक कामों में सफलता मिली है और जहाँ कहीं मैंने उसकी शिक्षाओं का उल्लङ्घन किया है वहीं मुझे असफलता मिली है। उसके संन्यासी होने का समाचार सुन कर मैं बड़ा दुखी हुआ था। वह मुझे सहोदर भाई की तरह चाहता था। उसके पिता कलकत्ते के एक प्रतिष्ठित धनी व्यक्ति थे। वह धन से भी सदा मेरी सहायता किया करता था। उसकी सहायता मुझे प्राप्त न होती तो शायद मैं कलकत्ते में रह कर विद्याभ्यास न कर पाता।"

अविनाश जिस समय यह बातें कह रहे थे, उस समय

उनकी आँखें डबडबा आई थीं। उनकी प्रेमार्द्र अवस्था देख कर योगिराज सोचने लगे—इनको अपना परिचय देने में कोई हानि तो है नहीं, उलटे अपने को छिपाने में ही दो-एक झूठ बोलना पड़ेगा।

यह सोच कर वह मुस्कराते हुए बोले—आप कुलीन ब्राह्मण की सन्तान हैं। बाल्यकाल में आपका लालन-पालन माता के घर पर हुआ था। आपको याद है, आपके उसी मित्र ने आपको नदिया ज़िले के टुला ग्राम के छागलदास मुखोपाध्याय की कन्या से विवाह करने से मना किया था।

योगिराज के इतना कहते ही अविनाश बाबू दौड़ कर उनके गले से लिपट गए और आँखों में आँसू भर कर कहने लगे—योगेश, योगेश, तुम्हारे साथ इस जीवन में फिर कभी मुलाकात होगी, इसकी मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। तुम्हीं तो हँसी में चिढ़ाने के लिए मेरे ससुर को छागल-दास मुखोपाध्याय कहा करते थे।

इतना कहकर अविनाश पुनः अपने आसन पर बैठ गए और सतृष्ण नेत्रों से योगिराज का मुख देखने लगे। दोनों की आँखों से बूँद-बूँद करके आनन्दाश्रु निकल रहे थे। कुछ देर के बाद अविनाश फिर बोले—भाई, अब तुम्हें इस त्यागी वेश में देश-विदेश न घूमने दूँगा। तुम धनी और प्रतिष्ठित पिता-माता की सन्तान हो, गार्हस्थ्य धर्म में प्रवेश

करो और सुख से जीवन व्यतीत करो। तुम्हें यह दुर्बुद्धि कैसे सवार हुई ?

-अविनाश बाबू इतना ही कहने पाए थे कि नौकर ने आकर कहा—हुज़ूर, संन्यासी महाराज के नहाने के लिए पानी तैयार है।

अब अविनाश बाबू पहले की बात छोड़ कर बोले—जाओ, जाओ, स्नान करो। तुम बिलकुल थक गए हो। कानपुर से लगातार चले आ रहे हो। खाने-पीने के बाद तुमसे बातें होंगी—बहुत सी बातें करनी हैं।

नौकर ने पूछा—हुज़ूर, संन्यासी महाराज के लिए क्या अलग प्रबन्ध करना होगा ?

अविनाश बाबू ने कहा—नहीं, रसोई का प्रबन्ध अलग नहीं करना पड़ेगा। वह हमारे साथ ही भोजन करेंगे।

स्नान करने के बाद योगिराज और अविनाश ने एक ही साथ बैठ कर भोजन किया। फिर अविनाश योगिराज से विश्राम करने का अनुरोध कर स्वयं ऑफिस का कागज-पत्र खोल कर बैठ गए। योगिराज बहुत ही परिश्रान्त होगए थे। चारपाई पर लेटते ही उन्हें नींद आगई।

सोकर योगिराज तीसरे पहर दो बजे उठे। अविनाश बाबू के ऑफ़िस का काम बहुत-कुछ निबट चुका था। आजकल ऑफ़िस का काम नाम-मात्र को ही है। ऑफ़िस के अतिरिक्त उन्होंने समाचार-संग्रह का भार अपने ऊपर

लिया है। इसके लिए उन्हे दो-चार पत्रों की नक़ल करनी पड़ती है। आज वह जब से योगिराज से मिले हैं, तभी से उनके मन में यह जानने के लिए कुतूहल हो रहा है कि योगिराज ने संसार क्यों त्याग दिया। दो-चार इधर-उधर की बातें करने के बाद वह एकाएक पूछ बैठे—भाई, तुमने संन्यास क्यों ले लिया ? इसे हमें बताने में कोई आपत्ति तो नही है ?

"नहीं तुम्हें बताने में कोई आपत्ति तो नही है, किन्तु उन सब बातो को सुन कर तुम करोगे क्या ? खास कर वे सब बातें जिस समय याद आती हैं, उस समय मै सन्ताप से जलने लगता हूँ।"

अविनाश बाबू बोले—शोक और दुख की बातें मित्र से ही कही जाती है। संसार मे केवल मित्र ही शोक और सन्ताप का भागी होता है।

अविनाश के बार-बार अनुरोध करने पर योगिराज इस प्रकार अपनी आपबीती सुनाने लगे :—

"भाई, हमारे हिन्दू-समाज का आचार-व्यवहार मेरे लिए सर्वथा असह्य हो गया था। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा था कि मनुष्य जब तक पूर्णरूपेण पतित न हो जाय—आत्म-सम्मान को सदा के लिए तिलाञ्जलि न दे दे—तब तक वह हिन्दू-समाज में रहने के योग्य नही हो सकता। मेरे लिए समाज हिंस्र-जन्तुओ से परिपूर्ण था। इसीलिए मैंने समाज

हो। यह न समझो कि धन-सम्पत्ति नष्ट हो जाने से ही मैंने संन्यास ले लिया है।

"तो क्यों संन्यास लिया है? यही तो मैं सुनना चाहता हूँ।"

तुम धैर्यपूर्वक सुनो भी तो! बीच ही में बाधा देकर अपना पचड़ा आरम्भ कर दोगे तो मैं कैसे कह सकूँगा?"

"अच्छा, क़सम खाता हूँ, अब कभी बीच में न बोलूँगा, तुम कहना शुरू करो।"

योगिराज पुनः कहने लगे—"तुम्हारे बङ्गाल छोड़ने के लगभग एक वर्ष बाद मेरे पिता और चाचा में विवाद आरम्भ हुआ। पिता और चाचा के घर के बीच केवल एक हाथ ज़मीन के लिए झगड़े का सूत्रपात हुआ था और उसी एक हाथ ज़मीन के लिए मेरी सारी सम्पत्ति बिक गई। पिता ने यह कह कर अपना दावा ज़ाहिर किया कि ज़मीन मेरे घर से लगी हुई है। और चाचा ज़मीन पर से अपना क़ब्ज़ा छोड़ने के लिए तैयार न थे। अन्त में सुप्रीम-कोर्ट में मुकद्दमा दायर हुआ। पिता की ओर से एडवोकेट जनरल और एक दूसरे बैरिस्टर रक्खे गए। चाचा ने भी तीन बैरिस्टर किए। पूरे दो वर्ष तक मुकद्दमा चलता रहा। मुकद्दमे में पिता जी की डिग्री हुई। किन्तु बैरिस्टर और अटर्नी की फ़ीस में लगभग पचास हज़ार रुपए ख़र्च हुए। पिता जी इतने अपव्ययी थे कि उनके हाथ में नक़द रुपया आने पर सब

तक वह सब का सब खर्च नहीं कर देते थे, तब तक उन्हें चैन नहीं मिलता था। मुकदमे के लिए मेरी माता के गहने गिरवी रख कर रुपया क़र्ज़ लेना पड़ा।

"पिता की डिग्री हो जाने पर चाचा ने अपील दायर की। उस समय पिता केवल मुक़दमे के पीछे हैरान रहते थे। उन्हें कारबार का हिसाब तक देखने की फुरसत नहीं मिलती थी। नतीजा यह हुआ कि कर्मचारियों ने एकदम दस हज़ार रुपए हड़प कर कारबार चौपट कर दिया। अपील में चाचा की डिग्री हुई। उनके लगभग साठ हज़ार रुपए ख़र्च हुए। वह भी क़र्ज़दार हो गए। किन्तु अधिक दिनों तक संसार में कष्ट भोगना न पड़ा। ऋण की चिन्ता ने शीघ्र ही उन्हें पर-लोक का रास्ता बता दिया और वह क्षणभङ्गुर संसार के सभी दुःखों से छुटकारा पा गए। उनकी मृत्यु के बाद उनकी सारी सम्पत्ति नीलाम हुई। मेरी चाची अन्न-कष्ट से पीड़ित होकर अपने पिता के घर चली गई। चाचा की कोई सन्तान न थी, इसलिए उनकी मृत्यु के बाद उनके कर्मों का क़ुफल देखने मे न आया।

"पिता को अपील के ख़र्च के लिए अपना पैतृक मकान गिरवी रख कर तीस हज़ार रुपए और उधार लेने पड़े थे। इस तरह उनके ऊपर कुल साठ हज़ार रुपयों का कर्ज़ हो गया। कारबार पहले ही चौपट हो चुका था। अब हम लोगों की आमदनी का कोई ज़रिया न बचा। बड़ाबाज़ार

में कुछ तालुक़ा बच गया था, उसी की आय से जीविका चलाने लगे। किन्तु ऋणशोध का कोई उपाय न रहा। एक वर्ष के बाद ऋण-दाताओं ने सुप्रीम-कोर्ट में नालिश करके हम लोगों के रहने के घर तथा बड़ेबाजार का तालुक़ा नीलाम करा लिया। किन्तु इतने से भी सारा ऋण न चुका तो सुप्रीम-कोर्ट से पिता जी की गिरफ्तारी का परवाना जारी हुआ। इस पर पिता जी भाग कर चन्द्रनगर चले गए।

"कुछ दिनो के बाद महाजनो ने हम लोगो के घर पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया। उस समय मुझे कॉलेज छोड़ कर चालीस रुपए वेतन पर एक जगह अध्यापकी करनी पड़ी। परिवार के पालन-पोषण का सारा भार मेरे ही कन्धों पर आ पड़ा। किन्तु मैं इससे घबराया नहीं। एक छोटा सा मकान किराए पर लेकर माता और बहिन के साथ उसी में रहने लगा। संसार छोड़ने का असली कारण इसके बाद उपस्थित हुआ। तुमने मेरी दोनों बहिनों को तो देखा ही था। उनका स्वभाव, प्रकृति तुमसे कुछ भी छिपी नहीं है। जो एक वार उन्हें देख लेता था, वह कभी भूलता न था।"

इतना सुनते ही अविनाश योगिराज की बात काट कर बोल उठे—ठीक कहते हो, तुम्हारी बहिनों को एक बार देख लेने पर उन्हें भूलना असम्भव था। दोनों बहिनें स्नेह और ममता की जीवित प्रतिमा थीं। ये अपने हैं वे पराए, इसका तो उन्हें ज्ञान ही न था। बड़ी का नाम बसन्तकुमारी था न?

"हाँ, बड़ी का नाम था बसन्तकुमारी और छोटी का हेमन्तकुमारी। हम लोगों के कङ्गाल होने के पहले ही उनकी शादी हो चुकी थी। पिता ने तीस हज़ार रुपए खर्च करके बसन्तकुमारी का विवाह किया था। वह कुलीन ब्राह्मण के घर ब्याही गई थी, किन्तु उसके भाग्य मे सुख नहीं बदा था। उसका पति बड़ा मूर्ख था। कुलीन लड़कों की भाँति वह भी शराब-गाँजा आदि मादक पदार्थों का सेवन करता था। उसके साथ शादी नही हुई—शादी का नाम हुआ। उसने बसन्तकुमारी का कभी मुँह तक न देखा। उसका पिता दूसरे ही दिन उसे साथ लेकर घर चला गया। पिता ने बहुत चाहा कि वह हमारे घर रहेगा तो हम उसे पढ़ाने-लिखाने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु उसका पिता किसी तरह इस बात पर राज़ी न हुआ। विवाह के पाँच-छः दिन बाद उसने अपने लड़के की शादी एक कुलीन ब्राह्मण की तीन लड़कियों के साथ एक साथ ही कर दी। मेरा अनुमान है, वह इसी इरादे से अपने लड़के को हम लोगों के घर पर छोड़ने को तैयार न हुआ। बसन्तकुमारी के साथ इस जीवन मे उसका फिर कभी साक्षात् नही हुआ। एक वर्ष के भीतर ही भीतर उसने बीस-पच्चीस कुलीन ब्राह्मणों की कन्याओं का पाणिग्रहण किया। एक वर्ष के बाद एक दिन वह पूर्व-बङ्गाल के एक ब्राह्मण को कन्यादान से मुक्त करने जा रहा था कि पद्मा नदी में डूब कर उसकी मृत्यु

होगई। बसन्तकुमारी केवल नौ वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो गई।

"उसकी यह दुर्दशा देख कर हेमन्तकुमारी को किसी कुलीन घर में ब्याहने की मेरी इच्छा नहीं थी, किन्तु क्या कहा जाय हिन्दू-समाज की कुशिक्षा को! सामाजिक कुसंस्कारों ने हमें कहाँ तक पतित बना दिया है, हमारा हृदय कहाँ तक पाषाण हो गया है, इसे एक बार याद करते ही हृदय मुँह को आने लगता है। बसन्तकुमारी की यह दुर्दशा देखते हुए भी पिता की अन्धी आँखें न खुलीं, उन्होंने कुछ भी न सोचा—वात्सल्य से उनका हृदय न पसीजा। वह हेमन्त को भी कुलीन परिवार की अग्नि में झोंकने पर तैयार हुए। मैंने शक्ति भर उनका विरोध किया। नित्य उनसे घण्टों मेरा विवाद हुआ करता। किन्तु अन्त में उन्हीं का हठ रहा। हेमन्त का विवाह एक कुलीन परिवार में स्थिर हुआ। मैंने और कोई उपाय न देख कर वर के पिता से यह कहा कि हम लोग आपको हर साल दो हज़ार रुपए दिया करेंगे और आप हम लोगों से प्रतिज्ञा कीजिए कि हेमन्त के रहते हुए आप अपने लड़के की दूसरी शादी न करेंगे। खैर, किसी तरह वर का पिता इस बात पर राज़ी हुआ और हेमन्त की शादी हो गई। वादे के मुताबिक़ हम लोग हर साल उसे दो हज़ार रुपए देने लगे। विवाह के तीन वर्ष बाद हम लोगों का दिवाला निकल

गया। हमारी धन-सम्पत्ति नष्ट हो गई। अब हम लोगों मे इतनी शक्ति न रही कि हेमन्त के ससुर की राक्षसी अर्थ-पिपासा तृप्त कर सके। वह नर-पिशाच भी इतना पतित निकला कि अपने पुत्र की दूसरी शादी करने की हम लोगो को धमकी देने लगा। उस समय हम लोग राह के भिखारी हो रहे थे। हममें बात करने की भी शक्ति न थी। हृदय मसोस कर चुपचाप रह गए।

"उस समय हेमन्त की अवस्था बारह वर्ष और उसके स्वामी की अवस्था अठारह वर्ष से अधिक न थी। इसी अल्पवयस्क अवस्था में हेमन्त गर्भवती हुई। दुर्भाग्य से सन्तान पैदा होने के पहले ही उसके स्वामी की मृत्यु हो गई। गर्भिणी स्त्रियों के आहारादि के नियमों का उल्लङ्घन होने से उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। हमारे देश की विधवाओं पर आहारादि के सम्बन्ध मे कितना अत्याचार होता है, यह तो तुम जानते ही हो, हेमन्त को गर्भिणी की अवस्था मे भी एकादशी का उपवास रखना पड़ता था। उसे प्रतिदिन तीसरे पहर केवल एक बार भोजन करने को मिलता था। वैधव्य के दो मास बाद उसके प्रसव का समय उपस्थित हुआ। बेचारी लगातार छः सात दिनों तक असह्य मृत्यु-यन्त्रणा भोग करती रही, किन्तु उसे प्रसव न हुआ। किसी तरह मुझे उसकी बीमारी की खबर मिली। मैं दौड़ा हुआ उसकी ससुराल गया। वहाँ जाकर देखता क्या हूँ, बेचारी

गीली फर्श पर प्रसव-वेदना के मारे अधमरी-सी पड़ी हुई है। कोई उसकी बात तक नहीं पूछता। उसके ससुर से मुलाक़ात होने पर उसने हेमन्त के सम्बन्ध में मुझसे एक शब्द भी न कहा। उलटे मुझ ही पर क्रोधित होकर कहने लगा—तुमने हमारा सर्वनाश कर दिया। न जाने किस दुर्भाग्य के कारण मैंने तुमसे यह प्रतिज्ञा कर दी कि मैं अपने पुत्र की दूसरी शादी न करूँगा। उसके बाद मेरे पुत्र की शादी के तीसों प्रस्ताव आए और मैंने उन्हें स्वीकार न किया। यदि मुझसे यह भयङ्कर भूल न हुई होती, तो गत चार वर्षों मे मुझे कम से कम तीस हज़ार रुपयो का मुनाफा होता।

"भाई, मैं अपने दुर्भाग्य की बात तुमसे क्या कहूँ? उस नर-पिशाच के मुँह से अपनी भर्त्सना सुनते ही मैं सिर से पैर तक जल गया। उसके पास एक क्षण के लिए ठहरने की भी मेरी इच्छा न हुई। मैं दौड़ कर हेमन्त के प्रसव-गृह के दरवाज़े पर चला गया। हेमन्त आँखें खोल कर करुण-दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी। मैं बहुत रात रहते ही कलकत्ते से चला था और प्रातःकाल होते-होते वहाँ पहुँच गया था। मेरे जाने के तीन-चार घण्टे बाद उसे एक मरा हुआ बालक पैदा हुआ। छोटी उम्र में गर्भ रहने से उसे इतनी वेदना हुई थी कि प्रसव के समय वह घोर चीत्कार करने लगी। चिल्लाते-चिल्लाते उसका गला सूख गया। प्रसव के बाद घरघराते कण्ठ से "थोड़ा जल दो, थोड़ा जल दो" कह कर

वह अपनी व्यग्रता प्रकट कर रही थी। उसका अभागा ससुर चीत्कार सुन कर प्रसव-गृह के पास ही आ खड़ा हुआ था। "जल दो, जल दो" का शब्द सुनते ही उस क्रूर, हृदयहीन नर-पिशाच ने सबको यह कह कर मना कर दिया कि आज एकादशी का दिन है, बहू को कोई जल न देना।

"उस राक्षस के डर से किसी ने भी हेमन्त को एक बूँद जल न दिया। उधर हेमन्त प्रत्येक क्षण "थोड़ा जल, थोड़ा जल" "मेरे प्राण गए, मेरे प्राण गए" की रट लगा रही थी। कण्ठ सूख जाने के कारण कभी-कभी तो उसके मुँह से शब्द तक न निकलता था। वह प्यास के मारे छटपटा कर अपना माथा पटकने लगती थी। फिर कुछ देर के बाद थोड़ी शक्ति हो जाने पर रटने लगती—"जल, जल, जान गई," "जान गई," "जल, जल !"

इतना कहकर योगिराज रोने लगे, फिर बड़े कष्ट से अपने को सँभाल कर पुनः कहना आरम्भ किया :—

"भाई, हेमन्त की वह दुर्दशा याद आते ही मेरी छाती फटने लगती है। उसका वह "जल, जल" "प्राण गए, प्राण गए" आदि शब्द आज भी मेरे हृदय में तीर की भाँति चुभ जाते हैं। प्रायः दो घण्टे तक उसका निरन्तर रटन सुनकर जब मुझसे न रहा गया, तो मैं उसके घर की एक दासी के पैरों पर गिर कर बोला—तुम मेरी माता हो, छिपाकर हेमन्त को थोड़ा सा जल पिला दो। इसमें कोई पाप

न होगा। देखती हो न, प्यास के मारे उसका गला सूखा जा रहा है।

"यह दासी हेमन्त के ससुर की उपपत्नी थी। मेरी कातरोक्ति सुन कर उस भ्रष्टा व्यभिचारिणी के हृदय मे दया उत्पन्न हो गई। उसने चुपके से हेमन्त के मुँह मे थोड़ा सा जल डाल दिया। किन्तु उस जल से उसकी प्यास न बुझी। बेचारी की जिह्वा भी अच्छी तरह न भीग पाई, उसका कण्ठ इतना सूख गया था कि उसके मुँह से शब्द तक न निकलता था। "और थोड़ा ज—और थोड़ा—ज—मरी—जान गई—ज" इस प्रकार के टूटे-फूटे शब्द कह कर वह प्रलाप करने लगी। उसके मुँह से "और थोड़ा जल" यह शब्द सुनते ही उसका ससुर आग-बबूला हो गया। हाथ में खड़ाऊँ लेकर क्रोध से फड़कती हुई होठों से उसने कहा—हरामजादी, सूअर की बच्ची, तूने उस राक्षसी को जल पिला दिया। आज एकादशी है। तूने हमारा धर्म नष्ट कर दिया! गर्जते और चिल्लाते हुए वह दासी के पास दौड़ गया और उसके हाथ में जलपात्र देख कर उसकी पीठ पर जोर-जोर से तीन खड़ाऊँ मारे। दासी भी भोकास बाँध कर रोने लगी। यह हल्ला-गुल्ला सुन कर गाँव के स्त्री-पुरुष सभी आँगन में जमा हो गए।

"उसका वह नृशंस व्यवहार देख कर मेरा धैर्य छूट गया। मैंने क्रोध से लाल होकर कहा—तुम ब्राह्मण नहीं,

चाण्डाल हो, मैं अपनी बहिन को ख़ुद पानी पिलाऊँगा। देखूँ मुझे कौन रोकने वाला है ?

"इतना सुनते ही गाँव के तीन-चार ब्राह्मण मेरे ऊपर बिगड़ खड़े हुए। एक ने कहा—'इस क्रिस्तान को अभी घर से बाहर करो।' दूसरे ने हेमन्त के ससुर को पुकार कर कहा—'महाशय, आप इस विधर्मी के साथ खाएँ-पिएँगे तो हम लोग आपके साथ खान-पान का व्यवहार नहीं रख सकते।' हेमन्त का ससुर उसी समय मुझे घर से बाहर निकालने लगा। उसने कहा—'चले जाओ मेरे घर से, अभी चले जाओ।' गाँव की स्त्रियाँ हेमन्त की निन्दा करने लगीं। एक ने कहा—'बहिन, इस बहू से थोड़ा सा भी कष्ट सहन नहीं होता। एक दिन पानी न पीती तो क्या होता ?'

"हेमन्त के ससुर तथा गाँव वालों से इस प्रकार अपमानित और लाञ्छित होकर मैं अपराधी की भाँति प्रसव-गृह के द्वार पर खड़ा था। हेमन्त को ऐसी अवस्था में छोड़ कर कलकत्ते जाने की मेरी इच्छा न हुई। वह क्रमशः निस्तेज पड़ने लगी। उसके मुख से अत्यन्त क्षीण स्वर में—"जल—ज—ज—ज—ज—प्राण गए—प्रा—" इस प्रकार की कातरोक्ति निकल रही थी। बार-बार मेरी इच्छा होती थी कि मैं उसे जल पिला दूँ, किन्तु अपनी असमर्थता देख कर मैं हाथ मल कर रह जाता था। मैं जानता था कि जल पिलाने की चेष्टा करूँगा तो उसके

ससुर तथा अन्य लोग मुझे ज़बरदस्ती रोक देंगे। मैं शर-विद्ध व्याघ्र की नाईं ऐंठ कर रह जाता था।

"दो घण्टे के बाद प्रसव-गृह से और कोई शब्द आना बन्द हो गया। मैंने अनुमान किया कि शायद हेमन्त प्यास से मूर्च्छित हो गई है। मैंने धीरे-धीरे उसके पास जाकर देखा, तो उसके दाँत लगे हुए थे। एक धाय उसके मुँह में उँगली डाल कर परीक्षा करने लगी कि हेमन्त जीवित है या मर गई। थोड़ी देर के बाद उसने घर से निकल कर कहा—'सर्वनाश! सर्वनाश हो गया!! बेचारी प्यास के मारे गला सूख जाने के कारण मर गई।' उसके मुँह से वह दारुण समाचार सुनते ही मैं × × ×!!"

इतना कह कर योगिराज का गला रुक गया। वह 'हेमन्त' कह कर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। अविनाश बाबू ने जल्दी से जल मँगाया और उनके माथे पर छिड़कने लगे। पास बैठे हुए नौकर हवा करने लगे। जब योगिराज को होश आया तो कहने लगे:—

"भाई, यही तुम्हारा हिन्दू-समाज है। हेमन्त के ससुर जैसे लाखों नर-पिशाचों के क्रूर सङ्गठन को ही हिन्दू-समाज कहते हैं। ऐसे ही पापी नराधमों के इशारे पर तुम्हारा समाज ताण्डव-नृत्य करता है। बारह वर्ष की बालिका और उसके साथ ऐसा घोर अत्याचार! हा! मनुष्य के पतन की भी कोई सीमा होती है? जिसके हृदय में थोड़ा भी मनुष्यत्व

है, वह कभी इस घृणित समाज में नहीं रह सकता। हेमन्त के ससुर हिन्दू-समाज के अगुआ समझे जाते हैं। किन्तु इस वृद्धावस्था में भी उनकी दो रखेलियाँ है। उनकी एक विवाहिता स्त्री है, जिसकी दो कन्याएँ विधवा होकर व्यभिचारिणी हो गई हैं। इससे हिन्दू-धर्म के पवित्र नाम पर कलङ्क नहीं लगता, हिन्दुओं को भगवान के न्यायालय में उत्तरदायी नहीं होना पड़ता। किन्तु मुमूर्ष हेमन्त को एकादशी के दिन थोड़ा सा जल पिला देने से उनके सात वंश के पूर्वज नरक में चले जाते—उनका धर्म सदा के लिए मटियामेट हो जाता। हाय! हाय! मेरी प्यारी हेमन्त, तुम्हारे भाग्य में ऐसी ही मृत्यु बदी थी। जल के विना तुम्हारी मृत्यु हुई।"

यह कह कर योगिराज पुनः मूर्च्छित हो गए। इस बार अविनाश बाबू उनकी अवस्था देख कर बहुत घबराए। कुछ होश आने पर योगिराज विक्षिप्त की भाँति अङ्गरेज़ी में बकने लगे :—

"Tell me Abinash, are not these Hindus the most unreasonable brutes? Do you call them men? The Kukis, the Garrows and the Santhals are not so utterly destitute of humanity as these Hindus are"—"अविनाश, तुम्ही कहो, क्या हिन्दू पशुओं की भाँति विवेक-शून्य नहीं हैं? इन्हें तुम मनुष्य कहते हो?

-को सम्बोधित करते हुए कहा—मुकर्जी महाशय, श्मशान घाट पर एक ही को ले जाना होगा या दोनों को ?

"हेमन्त के नर-पिशाच ससुर ने इसका उत्तर दिया—इसे श्मशान घाट के दर्शन न होंगे। मैं इस छोकरे को बहुत पहले से जानता हूँ, इसके भाग्य में अग्नि नहीं वदी है। यह क़ब्र में गाड़ा जायगा। यह ब्राह्मण नहीं—ब्राह्मण-कुलाङ्गार है।

"उन लोगों की यह बातचीत सुन कर मैं मानो नींद से जग पड़ा। उठकर देखता हूँ, तो हेमन्त का मृतक शरीर बाहर पड़ा हुआ है। हेमन्त का वह रूप! उसका प्रतिभा-पूर्ण वह मुख उस समय भी विकृत नहीं हुआ था। उसकी बालिका-सुलभ सरलता, उसका मुस्कराता हुआ चेहरा देख कर मेरा शोक और भी सौगुना बढ़ गया। हाय, मेरी प्यारी हेमन्त तृष्णा से मर गई! गाँव वाले मृतक-शरीर लेकर श्मशान की ओर चले तो मैं कलकत्ते की ओर रवाना हुआ। रात में दस बजते-बजते घर पहुँचा। वसन्तकुमारी हेमन्त को प्राणों से भी अधिक चाहती थी। तुम सोच सकते हो हेमन्त की मृत्यु का समाचार सुन कर उसकी क्या अवस्था हुई होगी। मैं, मेरी माँ और वसन्त—तीनों रात भर विलाप करते रहे। हेमन्त ने जल न पीकर अपने प्राण दिए हैं, यह सुन कर वसन्त रात-दिन रोने लगी। उसने चार दिन तक एक विन्दु जल न ग्रहण किया। जब देखिए वह बिलख

रही है। उसके होठों पर सदा यही शब्द थे—हेमन्त ने जल के बिना प्राण दिए हैं! मैं भी कभी मुँह में जल न डालूँगी।

"काल की ऐसी विचित्र महिमा है कि समय बीत जाने पर मनुष्य भयङ्कर से भयङ्कर दुख—भीषण से भीषण आपत्ति भूल जाता है। मेरा भी वह शोक धीरे-धीरे अनन्त-शून्य मे विलीन हो गया। हेमन्त की मृत्यु के दस-पन्द्रह दिन बाद मुझे माता के अनुरोध करने पर पिता के श्राद्ध के लिए डेढ़ सौ रुपए क़र्ज लेने पड़े। हेमन्त की मृत्यु से मेरा सारा उत्साह भग्न हो गया था। मेरे शरीर में शक्ति न रही थी। किन्तु काम छोड़ देने की सुविधा न थी। बड़े कष्ट मे कुछ दिनों तक स्कूल का काम चलाता रहा। यह भी अधिक दिनो तक न चला। एक महीने के भीतर ही मुझे चारपाई की शरण लेनी पड़ी। उधर स्कूल के प्रबन्धकों ने मेरे स्थान पर दूसरा आदमी नियुक्त कर लिया।

"हेमन्त की मृत्यु के एक वर्ष पहले कलकत्ते के संस्कृत-कॉलेज के एक अध्यापक ने अपनी सम्मति देते हुए विधवा-विवाह को शास्त्र-सम्मत ठहराया था। इससे हिन्दू-समाज में उथल-पुथल मच गया—घोर आन्दोलन होने लगा। उस समय तक विधवा-विवाह का क़ानून जारी नहीं हुआ था। मैंने उस अध्यापक के पास आना-जाना शुरू कर दिया और मन ही मन यह निश्चित कर लिया कि उनकी सम्मति

और भी दुःखी होता था। किन्तु कोई उपाय न था। हम दोनों माँ-बेटे बीमार थे। ऐसी अवस्था में तुम्हीं अनुमान करो, बसन्त को कितना काम करना पड़ता होगा।

"एक दिन बसन्त को जल लेने के लिए जाने में कुछ देर हो गई। रात लगभग बीत गई थी। सवेरा होने में थोड़ी ही देर थी। वह ताबड़तोड़ घड़ा बग़ल में दबा कर गङ्गाघाट की ओर चली। किन्तु उसके लौटने के पहले ही सवेरा हो गया। आते समय उसे पास-पड़ोस की दासियाँ, जो गङ्गाघाट पानी लाने जा रही थीं, देख कर आपस में कानाफूसी करने लगीं। उसी दिन से बसन्त के विरुद्ध हज़ारों अपवाद फैलाए जाने लगे। जिन्हें आत्मीय और कुटुम्बी कहना चाहिए, उन लोगों ने भी उसके चरित्र पर कीच उछालना शुरू किया।

"हिन्दू-समाज की आत्मा कितनी कलुषित होगई है, हमारे हृदय किस हद तक घृणा और द्वेष से भर गए हैं, इसका पता इसी बात से लग जाता है कि किसी के चरित्र के विरुद्ध कोई अफ़वाह सुनते ही हम उसे वेद-वाक्य समझ लेते हैं। वह समाचार झूठ, निराधार और मनगढ़न्त हो सकता है, यह बात एक क्षण के लिए भी हमारे पापी मन में नहीं आती। जो लोग मेरी बीमारी का समाचार सुन कर कभी भूल कर भी मेरे दरवाज़े के पास से नहीं गुज़रे थे, वही लोग बसन्त की निन्दा सुन कर दल के दल मेरे आँगन में

आने लगे। वे मेरे परम हितैषी लोग मेरी शय्या के पास बैठ कर चुपके से मेरे कान में कहते थे—बसन्तकुमारी के भ्रष्ट होने की बात चारों ओर फैल गई है। यह अब छिपाए नहीं छिप सकती। अगर तुम उसे घर से नहीं निकाल दोगे तो तुम्हें समाज-च्युत होना पड़ेगा।

"उन दग़ाबाज़, परनिन्दक, दुष्ट, बदमाशों की बात सुन कर मैं क्रोध से जलने लगता था। उस समय मेरे मुँह में जो कुछ आ जाता, मैं वही बकने लगता था। वे भी नाराज़ होकर अपना रास्ता लेते थे।

"पड़ोस की स्त्रियाँ सदा घर में आकर बसन्त का तिरस्कार करने के लिए उस पर वचन-बाण छोड़ा करतीं थीं। उसके प्राणों को रुलाने में ही उन्हें आनन्द आता था। कोई कहती—"अच्छे घर की लड़कियाँ ऐसी होती हैं? मैंने तो कभी ऐसा सुना भी नहीं।" दूसरी कहती—"तुमसे नहीं सहा जाता तो घर के अन्दर छिप कर क्यों नहीं बैठ जातीं? दिन-रात गली-गली क्यों घूमती हो?" जिन स्त्रियों ने विधवा होने के बाद व्यभिचार को ही अपना व्यवसाय बना लिया था, वे भी अपनी प्रशंसा करती हुई कहतीं—"मैं भी तो इसी उमर में विधवा हुई थी, किन्तु मेरा तो आज तक किसी ने नाम भी नहीं लिया।" वे कुटिल व्यभिचारिणी स्त्रियाँ यह समझती थीं कि बसन्त की निन्दा करने से लोग हमें सती सीता और साध्वी सावित्री समझने लग

जायँगे। उनमे, जिनका स्वभाव कुछ नम्र था, वे कहती, "अरे अभागिनी, तेरे लिए तेरे भाई को समाज-च्युत होना पड़ेगा। उसकी शादी न होगी और तू इसे सुख से न देखेगी?" इन बौछारों से बसन्त अकुला गई।

"मेरे लिए भाई को समाज-च्युत होना पड़ेगा! उसकी शादी न होगी!—इस चिन्ता ने सरल-हृदया बसन्त को अधमरो बना दिया। एक तो हम लोग योही अर्थाभाव से दाने दाने को मुहताज हो रहे थे, ऊपर से यह मिथ्या अपवाद—मनुष्य का धैर्य कहाँ तक सहन कर सकता है? तुम्हीं बताओ, हिन्दू-समाज के मन मे दया, स्नेह और ममता के लिए कही थोड़ा भी स्थान है? क्या हिन्दू-समाज हिसक जन्तुओ से भरा हुआ घोर जङ्गल नही है?

"इतनी लोक-निन्दा सहन करते हुए भी कर्त्तव्य-परायणा बसन्त ने हम लोगों की सेवा मे कोई त्रुटि नही की। मानसिक वेदना से उसका मलिन मुख जभी मेरी आँखों के सामने आ जाता था, मै रो पड़ता था।

"मेरे कुछ अच्छे हो जाने पर एक दिन वह आँखो मे आँसू भर कहने लगी—मेरे लिए लोक-निन्दा अब असह्य हो गई है। मै एक क्षण भी और जीना नही चाहती। मैं बहुत पहले ही आत्म-हत्या करके इस जीवन के समस्त दुःखो से छुटकारा पा गई होती, किन्तु रोगी भाई और माता की

सेवा करने वाला और किसी को न देख कर अब तक इस कलुषित जीवन को धारण किए हुए हूँ।

"इतना कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसके मुह से और कोई बात न निकल सकी। अन्त में बहुत कष्ट के साथ रोती हुई बोली—भैया, मुझे अब विदा दो—मेरे जीते जी तुम्हारी शादी नही हो सकती।

"उसकी बात मेरे हृदय मे तीर की तरह चुभ गई। मै शोक से विह्वल होकर बोला—तुम्हे छोड़ कर विवाह? विवाह न होगा। बला से न हो। मै सारा कुटुम्ब छोड़ सकता हूँ, इन पापी ब्राह्मणो के समाज मे नहीं रहूँगा, पतित हिन्दू-समाज की छाती पर पदाघात कर सकता हूँ, नरक-तुल्य बङ्ग देश को छोड़ दूँगा, किन्तु तुम्हे न छोड़ूँगा। ससार में और कही जगह न मिलेगी तो जङ्गलों मे रहेंगे। भीलो और सन्तालो के साथ निवास करेंगे। किन्तु तुम्हारा परित्याग न करेंगे।

"मुझे इस प्रकार उत्तेजित देख कर वसन्त उस दिन और कुछ न बोली। कई दिन के बाद फिर कहने लगी—भैया, तुम मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि मेरे मर जाने पर शादी करके पिता का वंश चलाओगे। मेरा जीवन धारण करना अब व्यर्थ है। मेरे लिए तुम्हें लोक-निन्दा सहन करनी पड़ती है। चार आदमियो के सामने सिर नीचा करना पड़ता है।

"वसन्तकुमारी की इस प्रकार की कातरोक्ति सुन कर

मेरा हृदय टूक-टूक हो जाता था। मैं उसे बहुत समझाता था कि तुम अपना विचार छोड़ दो। तुम आत्महत्या कर लोगी तो मेरे जीवन का रहा-सहा आनन्द भी नष्ट हो जायगा। यह भी सम्भव है कि इस शोक से विक्षिप्त होकर मैं भी आत्महत्या कर लूँ।

"थोड़ा स्वस्थ हो जाने पर मैं नौकरी की तलाश में इधर-उधर घूमने लगा। थोड़े ही प्रयत्न से एक अङ्गरेज-सौदागर के ऑफिस में साठ रुपए की एक जगह मिल गई। मैंने एक महीना ही काम किया था कि ऑफिस का अङ्गरेज-अफसर मेरे कार्य से बहुत प्रसन्न होगया और कुछ समय के बाद मुझे डेढ़ सौ रुपए मासिक वेतन पर हेड-क्लार्क नियुक्त कर दिया। मेरी वेतन-वृद्धि का समाचार सुन कर वसन्त-कुमारी बहुत खुश हुई। उसकी खुशी का एकमात्र कारण यही था कि मैं भविष्य में सुखी हो सकूँगा। अपने सुख की आशा तो वह पहले ही छोड़ बैठी थी। इस संसार मे उसे मृत्यु का आसरा रह गया था। उसका मुँह देखने से स्पष्ट मालूम होता था कि अपना जीवन उसके लिए भार हो गया है।

"मेरी डेढ़ सौ रुपए तनख्वाह सुन कर एक दिन वह मुझसे विवाह करने का अनुरोध करने लगी। मैंने उसे हँसते-हँसते उत्तर दिया—'पहले तुम्हारा विवाह हो जायगा, तब मैं विवाह करूँगा।' इतना सुनते ही उसका मुँह म्लान

होगया। वह जानती थी कि मेडिकल कॉलेज के जिस विद्यार्थी के साथ उसकी शादी पहले तय हो चुकी थी, उसने अब तक उसकी आशा में अपनी शादी नहीं की है। आँखों में आँसू भर कर कहने लगी—भैया, उनसे कह दो वह और कहीं अपनी शादी कर लें। मेरे लिए क्यो व्यर्थ प्रतीक्षा कर रहे हैं? मेरे साथ विवाह होने से उनके सुखी होने की कोई सम्भावना नहीं। स्त्री को स्वामी के सुख में सुखी होना पड़ता है—स्वामी को हँसते देख कर दिल खोल कर हँसना पड़ता है, रोते देख कर दिल से ही रोना भी पड़ता है। सब बातों मे सरल हृदय से और शुद्ध भाव से स्वामी का पदानुसरण करना पड़ता है। किन्तु मै क्या अपने हृदय पर जो शोक का बोझ लदा हुआ है, उसे इस जीवन में उतार कर कभी फेंक सकूँगी? मुझे तो रोती और बिलखती हुई अपनी जिन्दगी के दिन गिन-गिन कर काटना है। मैं उन्हे कैसे सुखी बना सकूँगी? मैं उनके सुख-दुःख मे समान रूप से भागिनी नहीं हो सकती।

"बसन्तकुमारी की बातो से स्पष्ट जान पड़ता था कि उसने आत्महत्या करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है। अपने दुःख की उसको तनिक भी परवा न थी। उसको चिन्ता तो यह थी कि उसके मिथ्या कलङ्क के कारण मुझे समाजच्युत होना पड़ेगा। मै उसे जितना ही अधिक सान्त्वना देता था—जितना ही अधिक स्नेह करता था, वह अपना निश्चय छोड़ने

के बदले उस पर उतना ही अधिक दृढ़ होती जाती थी।× × ×

"अकस्मात् एक दिन मैंने ऑफिस से आकर देखा कि बसन्तकुमारी गले से फाँसी लगा कर लटकी हुई है। यह क्रूर दृश्य देख कर मेरी संसार मे और रहने की इच्छा न हुई। किन्तु वृद्धा माता को छोड़ कर संसार-त्याग करने का भी कोई उपाय न था। केवल माता के लिए मुझे कुछ दिनों तक और संसार में रहना पड़ा। बसन्तकुमारी की मृत्यु के बाद माँ मुझसे बार-बार शादी करने का अनुरोध करने लगी, किन्तु माता का वह अनुरोध मै स्वीकार नहीं कर सका। उसकी बातें मानो जले पर नमक छिड़कती थी। दोनों बहिनो की मृत्यु पर मै जितना ही विचार करता हूँ, हिन्दू-समाज के प्रति मेरी घृणा उतनी ही बढ़ती है। मेरा वेतन डेढ़ सौ रुपया हो जाने पर कितने ही स्वजन मुझसे घनिष्टता का व्यवहार दिखाने लगे। उनके संसर्ग से मेरा शरीर जलने लगता था। सांसारिक कष्टों के कारण माता की आधी मृत्यु तो पहले ही हो चुकी थी, बसन्तकुमारी की आत्महत्या ने उसके शेप दिन भी पूरे कर दिए। छः मास के बाद उनका स्वर्गवास हो गया। अब मैं सब प्रकार के बन्धनों से छुटकारा पाकर देश-विदेश घूमने लगा। संसार छोड़ते समय प्रतिज्ञा की थी कि पेट भरने के लिए कभी किसी से भिक्षा न माँगूँगा। मेरे पास उस समय पाँच सौ रुपए थे।

उन्हीं को लेकर सन् १८४७ में कलकत्ते से निकल पड़ा और तब से आज तक संन्यासी-वेश में भ्रमण कर रहा हूँ।"

अविनाश ने पूछा—तुम कलकत्ता छोड़ कर इधर ही आए थे क्या ?

"नहीं, पहले मैंने बङ्गाल के ही भिन्न-भिन्न भागों मे भ्रमण किया। एक वर्ष के बाद फिर कलकत्ता वापस आया और जहाज पर चढ़ कर मद्रास गया। दो-तीन वर्ष तक मद्रास की ओर घूमता रहा। वहाँ से मैसूर, पूना, बम्बई, इन्दौर, झाँसी, सिन्ध पञ्जाब, राजपूताना, पश्चिमोत्तर प्रान्त आदि होते हुए सारे भारतवर्ष की यात्रा की।"

बातचीत करते-करते चार बज गए। अविनाश ने कहा—तुम्हे लेकर सर हेनरी लॉरेन्स के पास जाने का समय हो गया।

अविनाश यह कह कर अपने काग़ज़-पत्रों का बण्डल बाँधने लगे। अकस्मात् एक बण्डल पर योगिराज की दृष्टि पड़ गई। उस पर लिखा हुआ था, "Jhansi Massacre—झाँसी का हत्याकाण्ड।"

उस बण्डल पर दृष्टि पड़ते ही योगिराज का सारा शरीर काँप उठा। वह अत्यन्त त्रस्त होकर अविनाश से पूछने लगे—तुम्हारे इस बण्डल पर "झाँसी का हत्याकाण्ड" लिखा हुआ है। इसका क्या अर्थ ? क्या झाँसी मे कोई हत्या हुई है ?

अविनाश बाबू बोले—इन बातों को किसी पर प्रगट करना मेरे अधिकार के बाहर की बात है। ये सब गुप्त चिट्ठियाँ और काग़ज़-पत्र हैं।

योगिराज की उत्कण्ठा और भी बढ़ी। वह विस्मित होकर अविनाश की ओर देखने लगे। उनकी वह अवस्था देखकर अविनाश ने पूछा—तुम इतने उत्सुक क्यों हो रहे हो ?

योगिराज बोले—भाई, मेरा मन अत्यन्त चिन्तित हो रहा है। झाँसी की रानी मुझ पर पिता की भाँति स्नेह रखती है। उसके असङ्गल की कोई शङ्का हो तो मैं शीघ्र ही यहाँ से झाँसी जाऊँगा।

अविनाश बोले—इस सम्बन्ध में कुछ बतलाना मेरे अधिकार के बाहर है। तुम लॉरेन्स साहब से बातचीत करने के समय झाँसी के सम्बन्ध में पूछ सकते हो।

इसके बाद अविनाश योगिराज को साथ लेकर रेज़ि-डेन्सी की ओर सर हेनरी लॉरेन्स के पास चले।



इक्कीसवाँ परिच्छेद

भारत में अंग्रेज़ी राज्य

"In many respects, the Mohammedans surpassed our rule.XXXOur policy has been cold, selfish and unfeeling XXXthe iron hand of power on the one side, monopoly and exclusion on the other."

—*Lord William Bentinc.*



"कई दृष्टियों से मुसलमानी शासन हमारे शासन से कहीं अच्छा था। × × × हमारी नीति उत्साह-शून्य, स्वार्थपूर्ण और हृदयहीन रही है। × × × अधिकार का इस्पाती पञ्जा एक ओर और एकाधिपत्य तथा निषेध दूसरी ओर।"

—*लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क*

संसार परिवर्त्तनशील है, इसमें कुछ भी चिरस्थायी नहीं। इसका प्रत्येक कण परिवर्तन के प्रवाह में प्रवाहित होता रहता है। परिवर्तन के स्रोत को रोकने की शक्ति किस में है?

दो ही तीन वर्ष पहले लखनऊ की क्या अवस्था थ और अब क्या हो गई है! आज से केवल दो वर्ष पहले मछली-भवन, छत्रमञ्ज़िल, मोतीमञ्ज़िल, सानजिफ, कैसर-बाग़, फ़रहाद बख़्श आदि नवाबी महलो से हज़ारों चिर-वृद्धा अभागिनियो की सुललित कण्ठ-ध्वनि समुत्थित होकर नवाब के कानों में सुधा वर्षण करती थी, किन्तु इस समय वे ही महल नवाब से शून्य है! प्रासाद के जिन स्थानों से पहले रमणी-कण्ठ का मधुर कलरव समुच्छ्वसित होता था, आज उन्ही स्थानों में अङ्गरेज़ी तोपों की गडम-गड़म-धायँ और तलवारो की खनखनाहट निकल रही है। तोपो और तलवारों का यह वीर-घोप भी चिरस्थायी नहीं। अप्सरा-सङ्गीत के मोहक माधुर्य की भाँति तोप-तलवारो की कर्कश ध्वनि भी काल-प्रवाह के प्रलयङ्कर झञ्झावात में विलीन हो जायगी।

परिवर्तन के आघात का जितना प्रभाव लखनऊ के रेजिडेन्सी-भवन पर पड़ा है, उतना शायद ही और कहीं पड़ा होगा। जिस सुविशाल और सुसज्जित भवन में केवल दो मास पहले अङ्गरेजी रेजिडेण्ट अमीर-उमरा और राजाओ का स्वागत करते थे, आज उसी भवन मे स्थान-स्थान पर कुर्सियाँ, कौच, टेबुल, घी के वर्तन, मैदे के बोरे, चावल की ढेर और सैकड़ों स्त्री-पुरुप एवं बालक-बालि-काओं के आहत शरीर रोग-शय्या पर पड़े हुए हैं। उस

वंशोद्भूत सुशिक्षिता अङ्गरेज़-महिलाएँ, अपनी वर्तमान विपत्ति मे पीड़ित हृदय और सन्तप्त चित्त से परमेश्वर का नाम स्मरण कर रही है। किन्तु सूर्पणखा के समान दङ्गा-फसाद करने वाली अङ्गरेज-कन्याओ की भी यहाँ कमी नहीं है। अभी कुछ ही दिन पहले राइडिङ्ग मास्टर एलड्रिज (Riding Master Eldrige) और सर्जेण्ट मेजर किओग (Sergent Major Keogh) की पत्नियो मे तुमुल युद्ध हो गया था। एलड्रिज और किओग अपनी-अपनी पत्नियो की ओर से सेनापति नियुक्त हुए थे। किओग के अस्त्र से आहत होकर एलड्रिज को न्यायालय की शरण मे जाना पड़ा। इसी से सर हेनरी लॉरेन्स ने किओग को अब तक क़ैद करके रक्खा था। किन्तु इस समय लखनऊ के पास चिनहात मे विद्रोहियो के आगमन का हाल सुन कर किओग को क़ैदखाने से छुड़ा कर सेना मे भर्ती कर लिया है।

आज सर हेनरी लॉरेन्स का सारा दिन सिविल और सेना-विभाग के प्रधान कर्मचारियो के साथ परामर्श करने मे व्यतीत हुआ है। कोई कहता था, "सेना लेकर चिनहात में विद्रोहियों पर आक्रमण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त आत्मरक्षा का और कोई उपाय नहीं हो सकता। काले लोग डरपोक होते है—भय दिखाते ही भाग जायेंगे।" कोई कहता था—"इतनी थोड़ी सेना लेकर विद्रोहियो पर

आक्रमण करना अपने को खतरे में डालना है। इससे तो हमीं लोगों के पराजित होने की सम्भावना अधिक है। अन्त में अधिकांश लोगों के मतानुसार चिनहात में जाकर विद्रोहियो पर आक्रमण करना ही स्थिर हुआ है स्वयं सर हेनरी लॉरेन्स ने सेनापतित्व का भार स्वीकार किया है।

सब बातें निश्चित हो जाने पर अन्यान्य अङ्गरेज़ दोपहर का भोजन करने चले गए, किन्तु सर हेनरी लॉरेन्स को भोजन करने की फ़ुरसत कहाँ? सभा भङ्ग होते ही उनका खानसामा उनके कमरे मे आकर बोला—हुजूर, अविनाश बाबू आए हुए है।

सर हेनरी लॉरेन्स ने उत्तर दिया—उन्हे आने के लिए कह दो।

अविनाश बाबू के कमरे में प्रवेश करते ही सर हेनरी लॉरेन्स ने पूछा—"Abinash, have you brought that Cawnpore man?"—"अविनाश, तुम उस कानपुर वाले आदमी को साथ लाए हो?"

"Yes, Sir. He is there, in the verandah."—"हाँ हुजूर, वह बरामदे में खड़े हैं।"

"What do you think of this man, Abinash? He must be a peculiar sort of man. He can speak very fluently in English. But he calls himself

a Jogi, a devotee. What is the matter with this man? Have you been able to ascertain anything about him?"—"अविनाश, तुम इस आदमी के सम्बन्ध में क्या विचार रखते हो? यह एक विचित्र मनुष्य जान पड़ता है। बड़ी धड़ल्ले से अङ्गरेजी बोलता है। किन्तु अपने को योगी—भक्त—बतलाता है। बात क्या है? तुम कुछ निश्चित कर सके हो?"

अविनाश बाबू सर हेनरी लॉरेन्स को संक्षेप में योगिराज का सारा वृत्तान्त सुना गए। योगिराज को प्रायः पन्द्रह मिनट तक बाहर बरामदे में खड़ा रहना पड़ा। इसके बाद अविनाश बाबू बाहर आए और योगिराज को साथ लेकर पुनः साहब के कमरे में चले गए। योगिराज को देखते ही सर हेनरी लॉरेन्स अङ्गरेजी में कहने लगे—"O, I see, you are a Bengalee. You have been educated in the Hindu College at Calcutta. The Bengalees are very loyal to the Government. Please tell me freely what you have seen at Cawnpore."—"ओ, मैंने अब जाना आप बङ्गाली हैं! कलकत्ता हिन्दू-कॉलेज में आपकी शिक्षा हुई है। बङ्गाली लोग गवर्नमेण्ट के बड़े ख़ैरख़्वाह हैं। आपने कानपुर में जो कुछ देखा है, उसे कृपा कर मुझसे निस्सङ्कोच होकर कहिए।"

योगिराज कानपुर की घटना का समाचार सुनाने लगे।

उन्होंने एक-एक करके सब बता दिया कि अजीमुल्ला ही इस हत्याकाण्ड का प्रधान कारण है। उसी की निष्ठुरता से कानपुर के बहुसंख्यक स्त्री-पुरुष और बच्चों का बध हुआ है। सब बातें सुन लेने पर सर हेनरी लॉरेन्स ने योगिराज से अङ्गरेजी में पूछा—"Why are the people so much disaffected with our Government? You know very well that since our occupation of this country, the religion of your countrymen has never been interfered with. You know, that Aurangzeb in former times, and Hyder Ali in latter days, forcibly converted thousand and thousands of Hindus, desecrated their fanes and demolished their temples. Ranjit Singh never permitted a Muezzin to sound from the lofty Minarets of Lahore. The year before last a Hindu could not have dared to build a temple in Lucknow. But all this is changed. You know also that there is no Government on earth, which may stand comparison with us, not only in power and wealth but also in its liberal policy."—"इस देश के लोग हमारी गवर्नमेण्ट के साथ इतना असन्तुष्ट क्यों हैं? आप अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे

राजत्व के आरम्भ से ही इस देश के लोगों के धर्म-सम्बन्धी मामलों में कभी हस्तक्षेप नहीं किया गया। आप जानते हैं कि कुछ दिन पहले औरङ्गज़ेब और हाल ही में हैदरअली ने हज़ारों हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया, उनके धर्म-स्थानों को अपवित्र किया, उनके मन्दिरों को मिट्टी में मिला दिया, रणजीतसिंह मुसलमान मौलवियों को लाहौर की मसजिदों मे कभी प्रात काल का अजान नहीं करने देते थे। गत वर्ष के पहले इसी लखनऊ मे कोई हिन्दू देव-मन्दिर बनवाने का साहस नहीं कर सकता था। किन्तु अब ये सब बातें बदल गई हैं। आप यह भी जानते है कि अङ्गरेज गवर्नमेण्ट संसार की और किसी भी गवर्नमेण्ट से न केवल शक्ति एवं समृद्धि मे ही बढ़ी-चढ़ी है, किन्तु इसकी राजनीति भी बड़ी उदार है।"

सर हेनरी लॉरेन्स की बात सुन कर योगिराज बोले—"Sir, that liberal policy of the English Government is not followed in India."—"महाशय, अङ्गरेज-गवर्नमेण्ट की वह उदार राजनीति भारतवर्ष में नहीं बर्ती जाती।"

"But did we ever interfere with your religion?"—"किन्तु क्या कभी हम लोगों ने आपके धर्म में हस्तक्षेप किया?"

"Sir Henry Lawrence, the real cause of

this mutiny is not a panic terror for religion. Its causes should be sought elsewhere—in the voluminous minutes and correspondence of the East India Company."—"सर हेनरी लॉरेन्स, धर्म-विनाश की आकस्मिक आशङ्का इस विद्रोह का मूल कारण नहीं है। इसका मूल कारण अन्यत्र ढूँढ़ना पड़ेगा—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खरीतों और पत्र-व्यवहार के पोथों में इसका मूल कारण मिलेगा।"

"What do you think then, are the real causes of this sudden outbreak of mutiny."—"तब आपके विचार से इस आकस्मिक विद्रोह के मूल कारण क्या है?"

"Sir, this is not a sudden outbreak It has its origion in the selfish policy of the East India Company. The policy of exclusion and monopoly has been the cause of great disaffection since your first occupation of the country, and the present break, though apparantly sudden, is the inevitable consequence of that wide spread disaffection."—"महाशय, इस विद्रोह को आकस्मिक न समझिए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्वार्थपूर्ण नीति से इसका जन्म हुआ है। आपके शासन-काल के आरम्भ से

ही इस देश के लोग शासन-कार्य के उच्च-पदों से वञ्चित रक्खे गए हैं और इस कारण इस देश के लोगों में घोर असन्तोष फैल गया है। वर्तमान विद्रोह यद्यपि आकस्मिक प्रतीत हो रहा है, तथापि यह उसी देशव्यापी असन्तोष का अनिवार्य फल है।"

"Do you think, that the natives in their present state of intellect and morals can be allowed to take a part in the administration of their country. Are they not steeped in ignorance, and imbued with all sorts of superstitious and wild notions? I have just been told by Abinash that some of the existing evils of the Hindu society had become so unbearable to you that you thought it proper to forsake the society of your countrymen You should, therefore at present, direct your entire attention and energy solely to the works of social and religious reforms and leave politics in the hands of the trained politicians of England"—"क्या आप समझते हैं कि इस देश के लोगों की वर्तमान मानसिक और नैतिक अवस्थाओं को देखते हुए उन्हें देश के शासन-कार्य में भाग लेने दिया जा सकता है? क्या वे अज्ञान में डूबे और अनेक प्रकार के

अन्ध-विश्वासो से जकड़े हुए नहीं हैं ? मैंने अभी अविनाश के मुँह से सुना कि हिन्दू-समाज की कई प्रचलित कुरीतियाँ आपको यहाँ तक असह्य हो गई थीं कि आपने अपने देश वासियो की सङ्गति छोड़ देना ही उचित समझा। अतः आप लोगों को इस समय अपना सारा मनोयोग और शक्ति समाज-सुधार और धर्म-संस्कार के कामों मे लगा देनी चाहिए और राजनीति की बातें इङ्गलैण्ड के शिक्षित नीति-विशारदों के हाथ में छोड़ देनी चाहिए।"

"Sir, it is true, very true indeed, that Indians are in a very degraded condition. But has there not been a systematic attempt, on the part of the ruling classes, to perpetuate their degradation? Is not the absurdity and the inconsistency of your pretending to deplore their want of moral worth quite apparent, when you studiously place them in a position in which honesty and moral courage would be a miracle? You advice us to employ our sole energy and attention to the works of social, moral and religious reforms. But in a country, in which dishonesty and treachery are rewarded, sycophancy, hypocrisy, meanness and cringe are applauded; cowardice

and timidity are lauded; patriotism and public spirit are interdicted, all honourable feelings of independence are restrained and annihilated any reforms, any progress, whether social, moral or religious, is utterly impossible"—"महाशय, मै स्वीकार करता हूँ—पूर्णत: स्वीकार करता हूँ—कि भारत-वासी बड़े पतित हैं। किन्तु क्या शासक-वर्ग की ओर से उनकी हीनावस्था को चिरस्थायी बनाने का निरन्तर प्रयत्न नही हुआ है ? उनके नैतिक पतन पर आपके दिखावटी पश्चात्ताप की व्यर्थता और निस्सारता क्या इस बात से स्वत: प्रमाणित नहीं हो जाती कि आप लोग खोज-खोज कर उन्हें ऐसी परिस्थितियां में रखते हैं, जिनमे ईमानदार और सच्चरित्र होना जादू का काम हो ? आप हमें उपदेश देते हैं कि हम अपनी सारी शक्ति और मनोबल, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक सुधार के काम में लगा दें। किन्तु जिस देश में बेईमानी और विश्वासघातकता पुरस्कृत होते है, जिस देश मे खुशामद, कपटाचार, नीचता और आत्म-हनन की प्रशंसा की जाती है, जिस देश में कपुरुषता और भीरुता समादृत होते है, जिस देश मे स्वदेशानुराग और सर्वसाधारण की कल्याण-कामना का दमन किया जाता है, जिस देश मे स्वाधीनता के सभी आत्मसम्मानयुक्त भाव अङ्कुरित होते ही समूल उखाड़ कर

फेंक दिए जाते हैं, उस देश में सामाजिक, नैतिक, या धार्मिक, किसी भी प्रकार का सुधार, किसी भी प्रकार की उन्नति सर्वथा असम्भव है।"

"I am quite surprised to hear you say so. You say that the patriotism and public spirit of your countrymen are interdicted by our government. Do you know that twice I interceded on behalf of Sher Singh Attariwala, and saved his life when Lord Dalhousie had determined to put him to death? Did I not defend him on the ground that those fighting for the liberty of their country should not be hanged like a common culprit by a civilized Government? Did we not, in his case; reward the patriotism of our enemy, who aimed at our destruction? Would a Hindu or a Mohammedan Government treat their enemy with such leniency and respect? What are your countrymen doing? Does not their present conduct betray cruelty and cowardice only? What has been done by Nana Saheb and his disreputable counsellor Azimoollah? They have murdered even women and children. They have paid no regard

even to age or sex. I am sorry to find that you Bengalees though very loyal at heart, are always finding fault with our Government."—"आपके मुँह से इस तरह की बातें सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप कहते हैं कि हमारी सरकार आपके देश-वासियों में स्वदेश-प्रेम और सार्वजनिक सेवा का भाव पनपने नहीं देती। क्या आप जानते हैं कि मैंने दो बार शेरसिंह अटारी वाले का पक्ष लिया था और उनकी प्राण-रक्षा की थी, जब कि लॉर्ड डलहौज़ी ने उन्हें प्राण-दण्ड देने का निश्चय कर लिया था? क्या मैंने इसी युक्ति के आधार पर उनकी रक्षा नहीं की थी कि कोई भी सभ्य सरकार स्वदेश की स्वाधीनता के लिए युद्ध करने वालों को साधारण चोर और डाकुओं की भाँति फाँसी पर नहीं लटका देती? क्या इस घटना के द्वारा हमने अपने शत्रु को, जिसने हमारे नाश का प्रयत्न किया था, उसके स्वदेशा-नुराग का पुरस्कार नहीं दिया? क्या कोई भी हिन्दू या मुसलमान-शासक अपने शत्रु के प्रति ऐसी उदारता और सम्मान प्रदर्शित करेगा? आपके देशवासी इस समय क्या कर रहे हैं? क्या उनके आधुनिक चरित्र से केवल निष्ठुरता और भीरुता की दुर्गन्धि नहीं निकलती? नाना साहब और उनके बदनाम सलाहकार अजीमुल्ला ने क्या किया? उन लोगों ने स्त्रियों और बच्चों तक की जान ली है। उन्होंने बालक-

वृद्ध और स्त्री-पुरुष के भेद का कुछ भी विचार नहीं किया। सब को एक समान क़त्ल किया है। हमें यह जान कर बड़ा दुःख हुआ है कि आप बङ्गाली लोग हृदय से राजभक्त होते हुए भी सदा हमारी सरकार का छिद्रान्वेषण किया करते हैं।"

"Excuse me Sir Henry if I have given you any offence. I tell you all these things in order to let you know the feelings of my countrymen towards your Government. There are good grounds for their entertaining such feelings towards the Englishmen in India. Your reputation as a genuine Englishman and a true Christian is not unknown to me. But unfortunately all Englishmen in India are not like Sir Henry Lawernce. England has not sent even two Henry lawrences in India. Freedom, Liberty and Independence, which are the shibboleth of the Englishmen, have lost their meaning with your countrymen here. The vast majority of your countrymen in India not only belie their religion but also belie their birth, belie their national character, when they endeavour to restrain the slightest show of independence in a native.

"Is it not true that the vast majority of your countrymen are deadly opposed to all national progress in India? Is it not true that the vast majority of the Englishmen in India try to keep us for ever in the most degraded condition? But this is not all that can be said against your Government.

"The East India Company's Government exercise a most demoralizing influence which is calculated to make this nation mean, cowardly and utterly destitute of moral courage or public spirit.

"I am a Bengalee and have a greater experience of Bengal than that of any other part of the country. Almost in every district in Bengal, I found that the greatest scoundrels, the most detestable sycophants, and the most dishonest men are alone the favourites and confidential ministers of the European district officers. Does not this state of things tend to breed meanness in a nation?

"You stigmatise the whole nation as a race of cowards for the most detestable and heinous

crime committed by Azimoollah and Nana. But Nana is a mere tool in the hands of Azimoollah. And Azimoollah is not an indigenous product of our country. Azimoollah is what your Government has made him. Men like Azimoollah generally enjoy the confidence and patronage of the Englishmen in India. These are the men whom you are very frequently making Rai Bahadurs, Nawab Bahadurs or members of the Legislative Council. The worst crimes, committed during this outbreak of mutiny, and the indiscriminate massacre of men, women and children are being perpetrated by those men alone, who, ere this outbreak had enjoyed the greatest confidence of your countrymen in India. You are now met by the foulest treachery in the very class you had been so long patronizing. Your trusted weapons have proved worthless or turned against you.

Three years ago, I met a man at Jhansi. His name is Syed Ahmmak. He is the brother-in-law of one Ahmad Hossein, Tahsildar of Jhansi. These two brother-in-laws, though very

treacherous, have been enjoying the full confidence and patronage of the English people at Jhansi. I can assure you that, if any mutiny ever break out at Jhansi, these brother-in-laws will be the first to raise their arms against you"—"सर हेनरी, यदि मैंने आपका जी दुखाया तो आप मुझे क्षमा करें। ये बात मैं आपसे केवल इसलिए कह रहा हूँ कि आपको पता चल जाय कि आपकी सरकार के प्रति हमारे देशवासियो के क्या भाव है। भारत में रहने वाले अङ्गरेजों के प्रति भारतवासियों के मन में इस प्रकार के भाव के उदय होने के अनेक कारण हैं। आप स्वयं एक सच्चे अङ्गरेज और धार्मिक ईसाई हैं—यह बात मुझसे छिपी नहीं है। किन्तु दुर्भाग्यवश भारत मे रहने वाले सभी अङ्गरेज सर हेनरी लॉरेन्स के समान नहीं हैं। इङ्गलैण्ड ने इस देश में केवल एक ही हेनरी लॉरेन्स भेजा है, दो भी नहीं। स्वराज्य, स्वाधीनता और स्वातन्त्र्य, जो अङ्गरेज जाति के मूलमन्त्र हैं, उनका भारतीय अङ्गरेजो के पास कोई अर्थ नहीं। भारत में रहने वाले आपके अधिकांश देश-वासी, भारतवर्ष के नागरिको मे स्वतन्त्र-प्रकृति का थोड़ा सा आभास पाते ही उसके दमन के लिए जो घोर प्रयत्न करते हैं, इसके द्वारा वे न केवल अपने धर्म को कलङ्कित करते हैं, वरन् अपनी वंश-मर्यादा और राष्ट्रीय चरित्र को भी तिलाञ्जलि देते हैं।

"क्या यह बात सच नहीं है कि आपके अधिकांश देशवासी भारतवर्ष की सब प्रकार की राष्ट्रीय उन्नति के विरोधी हैं ? क्या यह बात सच नहीं है कि भारत में रहने वाले अधिकांश अङ्गरेज़ इस देश के लोगों को चिरकाल तक पतितावस्था में रखने की चेष्टा करते हैं ? किन्तु आपके शासन के दोषों की संख्या इतनी ही नहीं—इससे कहीं अधिक है।

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का इस देश पर इतना पतनकारी प्रभाव पड़ता है कि इसमें कोई शङ्का नहीं कि इस शासन के अधीन भारतीय राष्ट्र नीच, कायर और नैतिक साहस या सार्वजनिक जीवन से सर्वथा शून्य हो जायगा।

"मैं बङ्गाली हूँ, और देश के किसी भी अन्य भाग की अपेक्षा बङ्गाल के विषय में मेरा अनुभव अधिक है। बङ्गाल के प्रायः प्रत्येक ज़िले में मैंने देखा है कि सबसे बड़े बदमाश, सबसे बड़े खुशामदी और पक्के बेईमान आदमी ही वहाँ के यूरोपियन ज़िलाधीशों के प्रियपात्र और विश्वसनीय मन्त्री होते हैं। क्या ये बातें एक राष्ट्र को पतित बनाने में सहायक नहीं होतीं ?

"आपने अज़ीमुल्ला और नाना के घृणित तथा निन्द्य अपराधों का उल्लेख करके ही सारी जाति को कायर करार दे दिया। किन्तु नाना साहब अज़ीमुल्ला के हाथों के खिलौना मात्र हैं। और अज़ीमुल्ला पर हमारे देश की उपज

नहीं—उसे पैदा करने का श्रेय आपकी सरकार को प्राप्त है। भारत में रहने वाले अङ्गरेज अधिकतर अजीमुल्ला जैसे लोगो पर ही विश्वास करते हैं, उन्हीं को बढ़ावा देते हैं। आप लोग ऐसे ही आदमियों को रायबहादुर और नवाब-बहादुर की उपाधि से विभूषित करते है। ऐसे ही लोग आप की व्यवस्थापक सभाओं के मेम्बर बनाए जाते हैं। इस विद्रोह मे दृष्टिगोचर होने वाले सबसे नीच अपराध और सबसे अधिक हृदय-हीन हत्याएँ उन लोगो द्वारा हुई हैं, जो विद्रोह के पहले भारत में रहने वाले आपके देशवासियों के सबसे बड़े विश्वासपात्र थे। जिस श्रेणी के मनुष्यों को आप बढ़ावा देते थे, उसी श्रेणी ने आपके साथ सब से अधिक जघन्य विश्वासघात किया है। आपका ही शस्त्र आपकी रक्षा करने में असमर्थ होगया है अथवा आपके संहार का कारण हो रहा है।

"आज से तीन साल पहले की बात है। मुझे झाँसी में सैयद अहमद नामक एक आदमी से मुलाक़ात हुई थी। वह झाँसी के तहसीलदार अहमदहुसेन का साला है। ये दोनो साले-बहनोई पक्के विश्वासघातक होते हुए भी झाँसी के अङ्गरेजों के पूर्ण विश्वासपात्र हैं? मै आपको विश्वास दिलाता हूँ, यदि झाँसी में कभी कोई विद्रोह उठ खड़ा हुआ तो ये ही दोनों साले बहनोई सबसे पहले आपके विरुद्ध हथियार उठाएँगे।"

योगिराज अभी बोलते ही जा रहे थे कि सर हेनरी लॉरेन्स ने उनकी बात बीच ही में काट कर कहा—"Wait, wait Abinash, please bring the Jhansi correspondence from Mr. Gubbin. I think I met there in the name 'Ahmad' Hossen"—"ठहरिए, ठहरिए। अविनाश! जरा गबिन साहब के पास से झाँसी का फ़ाइल तो उठा लाओ। मुझे ख़याल आता है, मैंने उसमें कहीं 'अहमदहुसेन' नाम देखा था।"

पाठकों को याद होगा कि झाँसी के पत्र-व्यवहार का बण्डल अविनाश बाबू के साथ ही था। उन्होंने झटपट वह फ़ाइल लॉरेन्स साहब के हाथ में ला रक्खी। सर हेनरी लॉरेन्स कप्तान स्कॉट का पत्र पढ़ कर बोले—

"Yes, the name of Ahmad Hossen, Tahsildar of Jhansi is distinctly mentioned in Captain Scott's letter. He says—Ahmad Hossen Tahsildar of Jhansi took a leading part in the massacre of Jhansi. But I do not find any mention of the name of Syed Ahmmak."—"ठीक है, कप्तान स्कॉट के पत्र में झाँसी के तहसीलदार अहमदहुसेन का नाम स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। वह लिखते हैं, झाँसी के तहसीलदार अहमदहुसेन ने हत्याकाण्ड के नेतृत्व में एक प्रधान भाग लिया था, किन्तु सैयद अहमक़ का नाम तो हमें कहीं नहीं मिलता।"

सर हेनरी की बात सुन कर योगिराज पुनः बोले—

"Sir, I was not aware that mutiny had broken out at Jhansi. But this is what I expected long ago, Ahmad Hossen, rewarded for his treachery to his former masters by the Company's Government, and now your own trusted weapon has turned against you".—"झाँसी में बगावत शुरू हो गई है, यह बात पहले मुझे मालूम नहीं थी। बहुत दिनों से जिस बात की आशङ्का कर रहा था, वही बात हुई। अहमद-हुसेन अपने विश्वासघातकतापूर्ण कर्मों के लिए कम्पनी की सरकार से पुरस्कृत हुआ था, किन्तु इस समय आपका वही विश्वस्त साथी आपका दुश्मन हो गया है।"

"But I cannot understand why the name of the other man whom you have mentioned, has been ommitted in Captain Scott's letter, if he also participated in the massacre of Jhansi, in connection with his brother-in-law?" हेनरी लॉरेन्स बोले—"किन्तु मैं नहीं समझता कि आपने जिस दूसरे व्यक्ति का नाम लिया है, उसने यदि सचमुच अपने बहनोई के साथ मिल कर इस हत्याकाण्ड मे भाग लिया है, तो उसका नाम कप्तान स्कॉट के पत्र में क्यो नहीं आया?"

"Syed Ahmmak is a greater villain than his

brother-in-law Ahmad Hossen. I think if he had been at all at the bottom of the Jhansi conspiracy, he had been pulling the wire from behind the screen during the seige of Jhansi. He is so cunning that it would be extremely difficult either to connect his name with the murder of Jhansi or to bring his conduct to light. And I fear when you will succeed to quell this mutiny, and when these disaffected sepoys will be again rallied together, under the English banner, Syed Ahmmak will come over to the English camp, with a Koran in his hand, and preach to the Musalmans that it is written in the Koran that the English are the only friends of the Musalmans.

"Sir Henry, I was going to tell you when you interrupted me, that your countrymen are doing incalculable mischief to the English Government in India by trying to suppress freedom of speech, and by finding fault with the Bengalees for their candid expression of opinion, and try their best to create among us a number Syed

Ahmmaks. No doubt your Government has already produced a very large number of such Ahmmaks, both amongst the Hindus as well as amongst the Musalmans of our country. In the course of a few years, many of these Ahmmaks might be made Nawabs, Rajahs or C. I. E.; or they might be selected to represent the interests of their country in the Supreme Legislative Council. But I assure you, a Syed Ahmmak, or even if he is made Nawab Syed Ahmmak, or Sir Syed Ahmmak, will prove a veritable Azimoollah when the English are in distress and Azimoollah, whom you now call a most detestable coward, is nothing more or less than these Syed Ahmmaks metamorphosed by the sight of your present distress.

"An educated Indian, be he a Hindu, a Musalman, a Sikh or a Mahratta will always look upon an English woman as his sister. He can easily appreciate, and he will never cease to admire and adore, the very high character generally displayed by the educated English

ladies in India. He can never, never raise his arms against an English woman. But what more can you expect than indiscriminate massacre of men women and children like the massacre of Cawnpore, from an uneducated Musalman like Azimoollah or Syed Ahmmak, who believes that women have no soul and who looks upon the English women as the vilest creatures on earth in consequence of their freely associating with the opposite sex. These men who have no respect for English women can very easily murder them.

" Sir Henry, the people of India, however degraded be their present condition, are not to be judged by the character and conduct of Azimoollah, who, I have no doubt, is the most legitimate offspring and a necessary and inevitable fruit of the most misguided policy of the Company's Government in India." योगिराज बोले—"सैयद अहमक अपने बहनोई अहमदहुसेन से भी बढ़ कर लुच्चा है। मैं समझता हूँ कि अगर सैयद अहमक झाँसी-षड्यन्त्र में शामिल रहा है तो उसने जरूर टट्टी की आड़ में

शिकार किया होगा। वह इतना धूर्त है कि उसे झाँसी के हत्याकाण्ड के लिए अपराधी कहकर पकड़ना और उसका अपराध साबित करना बहुत मुश्किल है। मुझे भय है कि जिस समय आप लोग विद्रोह को शान्त कर लेंगे और जिस समय ये असन्तुष्ट सिपाही पुनः अङ्गरेज़ी झण्डे के नीचे एकत्रित होंगे, उस समय यही सैयद अहमक हाथ में क़ुरान लेकर अङ्गरेज़ों के खेमे मे आएगा और मुसलमानों से कहेगा कि केवल अङ्गरेज़ लोग ही मुसलमानों के मित्र हैं, ऐसा तो क़ुरान में साफ़ लिखा है।

"सर हेनरी, उस समय मैं आपसे यही कहने जा रहा था, जब आपने मुझे बीच ही में टोक दिया था, कि आप लोग इस देश के लोगो का भाषण-स्वातन्त्र्य छीन कर और बङ्गालियों को अपना स्वतन्त्र विचार प्रकाशित करने के कारण दोषी बता कर भारत में अङ्गरेज़ी राज्य का घोर अनिष्ट कर रहे हैं। शिक्षित बङ्गाली आपकी गवर्नमेण्ट की समालोचना अवश्य करते हैं, किन्तु राजभक्ति के भावो से प्रेरित होकर। उनकी नस-नस में राजभक्ति भरी हुई है। इस विचार-स्वातन्त्र्य और भाषण-स्वातन्त्र्य को दमन करके आप लोगो ने हिन्दू और मुसलमान दोनो मे न जाने कितने सैयद अहमक़ो की सृष्टि कर दी है। कुछ वर्षों के बाद आप ही लोग इन अहमक़ों में से किसी को नवाब, किसी को राजा और किसी को सी० आई० ई० बना देंगे और किसी

को इस देश का प्रतिनिधित्व करने के लिए बड़ी व्यवस्थापिका सभा का सदस्य नियुक्त करेंगे। किन्तु विश्वास रखिए कि सैयद अहमक़ को आप नवाब सैयद अहमक़ या सर सैयद अहमक़ क्यों न बना दीजिए, वह आपकी विपत्ति के समय सोलह आने अज़ीमुल्ला का रूप धारण कर लेगा। और अज़ीमुल्ला, जिसे आप इस समय सबसे अधिक नीच और कायर समझ रहे हैं, वह सैयद अहमक़ का ही रूपान्तर है। जो शक्ति आपकी उन्नति के समय सैयद अहमक़ बन कर आपकी ख़ुशामद कर रही थी, वह शक्ति आपकी विपत्ति देखकर खुल्लमखुल्ला आपका विनाश-साधन कर रही है।

"एक शिक्षित भारतवासी, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो अथवा महाराष्ट्र हो, एक अङ्गरेज़-रमणी को सदा अपनी बहिन की भाँति समझेगा, वह अङ्गरेज-रमणी के, जैसा कि भारतवर्ष में प्राय: देखने में आता है, विशाल चरित्र की प्रशंसा और सत्कार करने में कभी पीछे न रहेगा। वह किसी अङ्गरेज-महिला के विरुद्ध शस्त्र कभी नहीं उठा सकता। किन्तु आप अज़ीमुल्ला अथवा सैयद अहमक़ जैसे अशिक्षित मुसलमान से कानपुर के हत्याकाण्ड की भाँति स्त्री, पुरुष और बच्चों की विवेकहीन हत्या के अतिरिक्त और क्या आशा कर सकते हैं? इन लोगों का विश्वास है कि स्त्री-जाति के आत्मा नहीं होती और अङ्गरेज-स्त्रियों को तो संसार का सब से अधिक कलुषित जीव और

व्यभिचारिणी समझते हैं, क्योंकि वे परदे में नहीं रहतीं और निर्भीकभाव से पुरुषों से मिलती-जुलती हैं। अङ्गरेज़-स्त्रियों के प्रति उनके मन मे लेशमात्र भी श्रद्धा का भाव नही और इसीलिए वे उन्हें मार डालने में लज्जा या सङ्कोच नहीं करते।

सर हेनरी, भारतवर्ष की प्रजा आज कितनी ही गिरी हुई दशा मे क्यों न हो, किन्तु अज़ीमुल्ला का चरित देखकर उनकी दशा का पता नहीं लगाया जा सकता; क्योंकि अज़ी-मुल्ला ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार की महाभ्रष्ट राजनीति का एक अनिवार्य और अवश्यम्भावी कुफल है।

योगिराज की तेजस्विनी उक्ति सुनकर सर हेनरी लॉरेन्स बोले—"O, I see you are very much offended at my rating your countrymen by the blackest deeds committed by Azimoollah. Please, excuse me. I know very well the character of the people of your country. When my brother Captain George Lawrence and his wife were taken prisoner by the Sikhs, they were treated with great kindness and courtesy in the camp of our enemy."—"ओ! मै देखता हूँ कि अज़ीमुल्ला के कुकर्मों को देख कर मैंने आपके देशवासियो पर जो दोष लगाए हैं उससे आपको बड़ा कष्ट पहुँचा है—कृपा कर मुझे क्षमा

कीजिए। मैं आपके देशवासियों के चरित्र से भली-भाँति परिचित हूँ। जिस समय हमारे भाई कप्तान जॉर्ज लॉरेन्स और उनकी पत्नी को सिखों ने क़ैद कर लिया था उस समय उन लोगों ने हमारे साथ बड़ी ही उदारता और सुजनता का व्यवहार किया था।

सर हेनरी लॉरेन्स की बात अभी समाप्त भी न होने पाई थी कि मेजर पिलचर उनके कमरे मे घुस आए और बोले—"Sir Henry, this man has saved the life of my daughter. He should be amply rewarded, what amount do you propose to reward him? I will add to it a thousand rupees more from my own pocket."—"सर हेनरी, इस आदमी ने मेरी लड़की की जान बचाई है—इसे काफी इनाम देना चाहिए। आप इसे कितना देना चाहते हैं? मैं अपनी ओर से इसे एक हजार रुपया और दूँगा।"

सर हेनरी लॉरेन्स बोले—"I offered him two thousand rupees. But he declined to accept my reward. He says he is a Jogi, and has no need of money."—"मैंने इन्हे दो हजार रुपए देना चाहा था, किन्तु इन्होंने मुझसे पुरस्कार लेना स्वीकार नहीं किया। यह कहते हैं कि मैं योगी हूँ, मुझे रुपए-पैसे से कोई काम नहीं।"

इसके बाद सर हेनरी लॉरेन्स और मेजर पिलचर ने

योगिराज को बारम्बार धन्यवाद दिया। सर हेनरी लॉरेन्स योगिराज के इन्दौर जाने की बात अविनाश बाबू के मुँह से पहले ही सुन चुके थे। सर हेनरी ने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि इन्दौर में योगिराज के जाने पर वहाँ के अङ्गरेज़ इन्हे विद्रोहियो का गुप्तचर समझ लें अथवा अङ्गरेजी सेना इन्हे रास्ते ही मे मार डाले। उन्होंने एक काग़ज़ पर अपने हाथ से लिखा—"Anandashram Swami is a very great friend of the English"

—H. M. Lawrence.

अर्थात्—"आनन्दाश्रम स्वामी अङ्गरेजो के अनन्य मित्र हैं।"

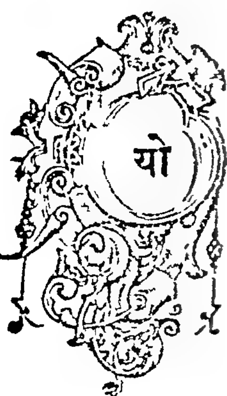
—एच० एम० लॉरेन्स

और उसे योगिराज के हाथ मे देकर उन्होंने पुनः अनेक बार धन्यवाद दिया। योगिराज सर हेनरी से विदा होकर अविनाश बाबू के साथ उनके मकान पर चले गए।



बाईसवाँ परिच्छेद

हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता



गिराज को लिए हुए अविनाश बाबू जब अपने घर की ओर जा रहे थे तो रास्ते में योगिराज ने अविनाश बाबू से पूछा—लखनऊ शहर में ब्रह्मसमाज भी है ?

"यहाँ ब्रह्मसमाज ? यहाँ ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई थी, किन्तु वह स्थायी न हो सका।"

"तुम लोग यहाँ ब्रह्मसमाज चलाने के लिए कुछ प्रयत्न क्यों नहीं करते ?"

"भाई, मैंने इन गोलमाल के कामों से एकदम हाथ खींच लिया है। इनसे कोई लाभ तो होता नहीं, उलटे दल-बन्दी और हिंसा-द्वेष बढ़ते हैं। मैंने जहाँ-जहाँ ब्रह्मसमाज की स्थापना की चेष्टा की है, वहीं दलबन्दी हो गई और सब काम चौपट हो गया।"

"दलबन्दी हो जाने से क्या शुभ-कर्म करना छोड़ दोगे ?"

"भाई, पश्चिमोत्तर भारतवर्ष में अभी भी ब्रह्मसमाज की स्थापना का समय नहीं आया—इधर के लोगों ने ब्रह्म-समाज का नाम भी नहीं सुना है। आगामी तीस वर्षों में इधर ब्रह्मसमाज स्थापित हो सकेगा—इसमें मुझे सन्देह है।"

"समय नहीं आया"—कह कर बैठ रहने से तो तीस वर्षों में क्या, सौ वर्षों में समय नहीं आएगा। समय अपने आप नहीं आता—उसे लाना होता है। पश्चिमोत्तर भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक स्थान में मैं बङ्गालियों को पाता हूँ। बङ्गाली लोग यदि चाहें तो इन स्थानों में आसानी से ब्रह्मसमाज का प्रचार कर सकते हैं।"

"मालूम होता है कि तुमने अभी तक पश्चिमोत्तर भारत में रहने वाले बङ्गालियों का स्वभाव नहीं जाना। इधर के बङ्गाली भी यहाँ के निवासियों की तरह केवल रुपया बटोरना जानते हैं—देश-हित के कार्यों की ओर उनकी अभिरुचि कहाँ है ?"

"अर्थ-सञ्चय की चेष्टा तो सभी देश के निवासी करते हैं। बङ्गाल के बङ्गाली क्या धन बटोरना नहीं जानते ? उन्होंने क्या अपने को केवल देश-सेवा के लिए ही समर्पित कर दिया है ? मैं तुमसे यह सुनना नहीं चाहता कि दूसरे

लोग क्या करते है और क्या नही करते। मै तो यह जानना चाहता हूँ कि ब्रह्मसमाज की स्थापना के लिए तुमने क्या किया है?"

"मैने चेष्टा तो की, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। उससे केवल मेरा ही अनिष्ट हुआ है।"

"शुभ-कर्म की साधना मे भी कभी किसी का अनिष्ट हो सकता है, इस बात पर मै विश्वास नहीं कर सकता, तुम्हारा क्या अनिष्ट हुआ है?"

"लखनऊ मे ब्रह्मसमाज की स्थापना करने का प्रयत्न कर के न केवल मैंने अपनी हानि की है, प्रत्युत उससे अन्य लोगो का भी अपकार हुआ है।"

"इस देश की अवस्था तुम कुछ भी नहीं जानते। पश्चिमोत्तर भारतवर्ष के बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ इन तीन शहरो मे बङ्गालियो की संख्या खासी बढ़ी है। किन्तु ब्रह्मसमाज का नाम लेते ही यहाँ के अधिकांश बङ्गाली एकत्र होकर और नहीं तो एक हरिसभा अथवा हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा अवश्य क़ायम कर लेते हैं। यहाँ के लिए ब्रह्मसमाज एक ऐसी हौआ है कि उसकी स्थापना का समाचार सुनते ही उसकी प्रतिद्वन्द्विता के लिए न जाने कहाँ से अनेक सभा-समितियाँ बिना बाप के बच्चों की तरह कूद पड़ती हैं। इससे आपस में क्रमश. दलबन्दी, कलह और विवाद बढ़ने लगता है।"

"बङ्गाल की दशा भी यही है। एक ओर कलकत्ते में राजा राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, उधर दूसरी ओर राजा राधाकान्त आदि लोगों ने हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा की नीव डाल दी। किन्तु प्रतिद्वन्द्विता और कलह के भय से ब्रह्मसमाज की स्थापना का शुभ-कार्य क्यो छोड़ देते हो ?"

"भाई, कलकत्ते के ब्रह्मसमाज और उसकी विरोधिनी सभाओ में इतना कटु-विवाद तो नही होता, किन्तु यहाँ तो दोनों सभाओ में मार-पीट और हाथापाई तक की नौबत आ जाती है।"

"मार-पीट कैसे आरम्भ होती है भाई ?"

"मार-पीट कैसे आरम्भ होती है, सुनोगे ? पिछले साल गोपाल बाबू, यहाँ के सब असिस्टेण्ट सर्जन, श्यामलाल बाबू और मैंने मिल कर ब्रह्मसमाज स्थापित करने की चेष्टा की थी। प्रति सप्ताह शनिवार के सायङ्काल हम तीनो आदमी और तीन-चार बङ्गाली श्यामलाल बाबू के घर पर इकट्ठे होते थे। वहाँ मैं उपासना की पुस्तक से उपासना और तत्व-बोधिनी से किसी उपदेश अथवा प्रबन्ध का पाठ किया करता। बाद में दो-एक गाना गाने के बाद सभा भङ्ग हो जाती थी। हम सब लोग अपने-अपने घर चले जाते थे। किन्तु गोपाल बाबू को पहले से शराब पीने का अभ्यास था। वे दोनो आदमी और उनके दस-पाँच और मित्र समाज की

उपासना के बाद श्यामलाल बाबू के उसी बैठकखाने में बैठ कर सुरापान तथा अन्य आमोद-प्रमोद किया करते। ब्रह्म-समाज की स्थापना के तीन-चार सप्ताह के बाद ही श्यामलाल बाबू के सुरापायी मित्रों मे कुछ विरक्ति का भाव पैदा हुआ। वे लोग हम लोगों की चुटकी लेने लगे। बात यह थी कि समाज की स्थापना के पहले वे लोग प्रत्येक शनिवार को सन्ध्या होते ही सुरापान तथा उसके साथ अन्य कुत्सित आमोद-प्रमोद आरम्भ कर देते थे। अब समाज की सभा के कारण उनके आमोद में थोड़ी सी बाधा पड़ने लगी। उपासना समाप्त होते-होते रात में आठ साढ़े आठ बज जाते। इसके पहले उन्हे व्यसन में लीन होने का अवसर न मिलता। इससे समाज के प्रति उनके मन मे विद्वेष का सञ्चार हो गया। धीरे-धीरे उनमें से किसी-किसी के साथ हम लोगों में विवाद भी हो जाने लगा। हम लोगों में राजकृष्ण मित्र नामक एक युवक था। वह बड़ा सच्चरित्र था, किन्तु उतना ही बड़ा बकवादी था। एक दिन ब्रह्मसमाज की उपासना समाप्त हो जाने पर उसके साथ श्यामलाल बाबू के दो-तीन सुरा-भक्त मित्रों से गहरा विवाद होगया। उसने एक को जोर से एक लात जमा दिया। इससे श्यामलाल बाबू और गोपाल बाबू दोनों उस पर बहुत बिगड़े और उन लोगों ने ब्रह्मसमाज को तोड़ देने का प्रस्ताव किया। मगर राजकृष्ण इस प्रस्ताव में सहमत होने वाला व्यक्ति न था। उसने अपने साथियों को

लेकर मेरे घर पर समाज का काम आरम्भ कर दिया। इससे श्यामलाल बाबू मन ही मन मेरे ऊपर नाराज़ रहने लगे। उनका किसी धर्म पर विश्वास न था। सब के ऊपर प्रभुत्व जमा कर रहना ही उनका धर्म था। इससे वह सभी तरह के कामों मे सबसे पहले उत्साह दिखाया करते थे, सब प्रकार के समाजो का नेता बनकर स्थानीय लोगो को अपने वश में रखने की चेष्टा किया करते थे। जब राजकृष्ण ने उनकी बात टालकर मेरे घर पर समाज की स्थापना कर दी तो श्यामलाल मुझे और राजकृष्ण—दोनो को नीचा दिखाने का मौका ढूँढ़ने लगे। कुछ दिनो के बाद उन्होने अपने मद्यप मित्रो को लेकर हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा की संस्थापना की। वह खुद उस सभा के सभापति हुए। लखनऊ के प्रायः सभी लोग उनकी हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के सभ्य बनने लगे। इससे उनकी डॉक्टरी भी खूब चली। अब वह ब्रह्मसमाज के कट्टर शत्रु बन गए। हिन्दू लोग उनके भक्ष्याभक्ष्य खाने से उनसे असन्तुष्ट रहा करते थे। किन्तु हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा का सभापति होते ही सभी अशिक्षित हिन्दू उनकी प्रशंसा करने लगे। इस तरह थोड़े ही दिनों में श्यामलाल बाबू एक बड़े भारी देश-हितैषी समझे जाने लगे।

"कुछ दिनों के बाद लखनऊ में हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के कायम होने की बात सुनकर रामप्रसन्न सेन नाम का एक आदमी बनारस से आया। वह बड़ा ही धूर्त्त था।

सुनने मे आया था कि वह पहले कलकत्ते के ब्रह्मसमाज मे आया-जाया करता था। बाद मे एक घटना के कारण ब्रह्मसमाज के लोगों से उसका बिगाड़ हो गया। तब वह ब्रह्मसमाज छोड़ कर हिन्दू-धर्म का प्रचारक बन बैठा और बङ्गाल, विहार और पश्चिमोत्तर भारत के लोगो से चन्दे वसूल कर के खूब धन बटोरने लगा। प्रायः सत्तर-पचहत्तर हज़ार रुपए इकट्ठा करके उसने हिन्दू-धर्म-संरक्षिणी सभा क़ायम की थी।

"गत वर्ष वह यहाँ आया था और यहाँ की हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा को ख़ूब मज़बूत कर गया। इधर राजकृष्ण फ़ैज़ाबाद के डिप्टी कमिश्नर का हेड क्लर्क होकर यहाँ से चला गया। उसके जाने के साथ ही साथ हम लोगों का ब्रह्म-समाज भी नाम शेष होगया। मैंने पीछे से विचार कर के देखा कि ब्रह्मसमाज को स्थापित कर के हम लोगों ने ब्रह्म धर्म के प्रचार में कोई सहायता न की। हाँ, केवल लखनऊ में एक हिन्दू-धर्म-संरक्षिणी सभा की स्थापना का मार्ग खोल दिया। इसके परिणाम-स्वरूप यहाँ नाना प्रकार की दल-बन्दियाँ आरम्भ हो गई है।

"भाई, इस समय इधर ब्रह्मसमाज की स्थापना से कोई लाभ न होगा। केवल मार-पीट झगड़ा-तकरार और दल-बन्दियाँ होगी। इसीसे उकता कर मैंने इन कामों को एक-दम छोड़ दिया है।

"इसी ब्रह्मसमाज के पीछे क्या-क्या गुल खिले, सो देख लो। श्यामलाल बाबू ने पहले तो ख़ूब उत्साह दिखाया, उन्हीं के घर पर ब्रह्मसमाज की स्थापना भी हुई। किन्तु उन्हीं के द्वारा स्थापित और पोषित ब्रह्मसमाज जब मेरे घर पर चला आया तो वह अलग एक हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के सभापति बन कर मुझे समाज-च्युत की चेष्टा करने लगे।"

"तुम समाज-च्युत क्यों न हो गए? मैं तो समाज-च्युत होना बड़े सौभाग्य की बात समझता हूँ। जिसमे थोड़ा सा भी मनुष्यत्व है, वह हिन्दू-समाज मे नहीं रह सकता।"

"भाई, मैं तुम्हारी तरह एकबारगी गृह-त्यागी तो नहीं हो सकता। जब श्यामलाल बाबू मुझे समाज-च्युत करने का प्रयत्न करने लगे, तो मेरे ससुर ये सब बाते सुन कर तुरन्त बनारस से यहाँ आए। उनके अनुरोध से मुझे फिर श्यामलाल बाबू के साथ मेल करना पड़ा। अन्त मे ब्रह्म-धर्म को तिलाञ्जलि दे श्यामलाल की हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा का सभ्य हो गया।

योगिराज अविनाश की अन्तिम बात सुन कर एकदम स्तब्ध हो गए। वह मन ही मन सोचने लगे—देश की कैसी भयङ्कर अवस्था है! इस देश के एक आदमी में भी मनुष्यत्व का आभास नहीं मिलता। किसी में भी आत्मा नहीं, सत्यानुराग नहीं, तेज नहीं, उत्साह नहीं। यह मूढ़ आदमी

ब्रह्मसमाज की स्थापना करने के बाद समाज-च्युत होने के भय से हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा का सभ्य हो गया।"

योगिराज को अन्यमनस्क देख कर अविनाश ने पूछा—क्या सोच रहे हो? मैं हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा का सभ्य हो गया हूँ, इससे क्या तुम्हारे मन को कष्ट हो रहा है?

योगिराज ने अविनाश की बातों का कुछ उत्तर नहीं दिया।

अविनाश ने फिर कहा—एकदम चुप्पी क्यों साध ली?

योगिराज ने इस बार भी कुछ उत्तर न दिया। अविनाश की कायरता देख कर उनका हृदय बहुत ही व्यथित हुआ था। अन्यमनस्क होकर इस समय भी वह यही बात सोच रहे थे।

अविनाश बाबू उनकी यह अवस्था देखकर उनकी देह पर हाथ रखते हुए कहा—क्यों जी क्या बात है? तुम बोलते क्यों नहीं?

योगिराज अभी तक यह स्थिर न कर सके थे कि अविनाश के साथ क्या बातचीत करूँ। इसलिए उन्होंने अन्यमनस्क होकर पूछा—तुम्हारे ससुर क्या इस समय भी बनारस में रहते हैं? नदिया जिले का टुलो ग्राम छोड़ दिया?

"तुम मेरे किस ससुर की बात कहते हो? टुलो गाँव वाले ससुर के साथ मेरा अब कोई सम्पर्क नहीं रहा।"

"तुमने क्या दुबारा शादी की है? तुम्हारी पहली स्त्री कहाँ है?"

"शादी न करता तो क्या करता ? तुम क्या पहले की सभी बातें भूल गए ? तुम्हीं ने तो मेरे सुसर का नाम छागलदास रक्खा था। उनकी बातें क्या तुमसे छिपी हुई हैं ?"

"तुम्हारी स्त्री किसी तरह अपने पिता के घर से आने के लिए तैयार नहीं हुई ?"

"उस समय उसकी अवस्था केवल दस वर्ष की थी। स्वेच्छा से उसके आने न आने का उस समय कोई सवाल ही न था। उस घटना के लिए मैं अपनी स्त्री को दोष नहीं दे सकता। उसके पिता और दादा ही उसके सर्वनाश के मूल कारण हुए थे। टुलो के मुकर्जी अपनी लड़कियों को कभी ससुराल में नहीं भेजते। कन्या की शादी के बाद दामाद को ही अपने घर पर रखते हैं। उनके दामादों को यावज्जीवन श्वसुर के घर पर रहना पड़ता है। किन्तु मैं स्त्री को लेकर ससुर के घर पर रहने के लिए तैयार न था। इस लिए मुझे उस स्त्री की आशा बिलकुल छोड़ देनी पड़ी।"

"तुम्हारी स्त्री बड़ी होने पर अपने पिता तथा आत्मीय लोगों की निषेधाज्ञा का पालन न करती—बुद्धि हो जाने पर वह पिता के आदेश का उल्लङ्घन करके भी तुम्हारा साथ अवश्य देती।"

"गँवार स्त्रियों में इतनी बुद्धि कहाँ ! विशेषतः जमींदारों की लड़कियाँ अपने दरिद्र स्वामी के प्रति इतना प्रेम कैसे रख सकती हैं ?"

"तो क्या तुमने उसको एकदम छोड़ दिया है? तुम उसे अब ग्रहण नहीं करोगे?"

"हाँ, मैंने उसे छोड़ तो दिया है—छोड़े बिना विवाह कैसे करता?"

"तुमने भारी अन्याय किया है। तुम्हारी स्त्री का क्या अपराध है? उसके कुसंस्कार-ग्रसित माता-पिता ने उसे तुम्हारे घर नहीं भेजा। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद वह तुम्हारे घर आना चाहे तो तुम क्या कह कर उसका परित्याग करोगे?"

"भाई, तुम्हारा पाण्डित्य शास्त्रों तक ही परिमित है। सांसारिक व्यवहार के सम्बन्ध मे तुम पूरे गँवार हो। तुम स्वयं जैसे बाल्यावस्था से जितेन्द्रिय हो, वैसे ही दूसरो को दूध का धोया हुआ समझते हो। मेरी वह स्त्री क्या मेरे भरोसे बैठी होगी?"

"बस, चुप रहो। मै तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता। एक भद्र महिला के चरित्र पर निरर्थक दोषारोप करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? बङ्गालियों का दृष्टिकोण और विचार एक तो योंही दूषित है, उस पर तुमने दूसरी शादी कर ली! अब पहली स्त्री के चरित्र पर कलङ्क मढ़े बिना आत्म-समर्थन का और उपाय ही क्या हो सकता है?"

"तुम मुझे इतना नीच समझते हो कि मै केवल अपने दोषों पर पर्दा डालने के लिए अपनी पहली स्त्री के नाम को झूठमूठ बदनाम कर रहा हूँ?"

"इसमें सन्देह ही क्या है ? केवल तुम्हीं क्यों, समस्त बङ्गाली जाति की प्रकृति ऐसी जघन्य हो गई है कि किसी स्त्री की निन्दा सुनकर वे लोग अनायास उसे वेद-वाक्य समझ लेते हैं। मेरी सहोदरा बहिन वसन्तकुमारी सीता के समान चरित्रवती थीं। उसकी सर्वथा निराधार निन्दा सुनकर लोगों ने झटपट उस पर विश्वास कर लिया।"

अविनाश योगिराज की अन्तिम बात सुनकर बोले—मैं इससे इनकार नहीं करता कि हिन्दू-समाज के लोग सच्चरित्र स्त्रियों के विरुद्ध मिथ्यावाद सुनकर उस पर फौरन विश्वास कर लेते है। किन्तु मेरा मन वास्तव में यह जानकर बहुत दुखी हुआ है कि तुम मुझे नीच और मिथ्यावादी समझ रहे हो !

"मै ऐसा नहीं समझता कि तुम जान-बूझ कर झूठ बोल रहे हो, किन्तु अपनी पहली स्त्री के सम्बन्ध में तुम्हारे मन में अवश्य भ्रम उत्पन्न होगया है।"

"भाई, गृहस्थ-जीवन में पदार्पण करने के लिए पहले जिस समय हम लोग एक साथ पढ़ते थे उस समय में अपने मन की एक भी बात तुम से नहीं छिपाता था—हम दोनो अपने-अपने मन की सभी बातें, छल-कपट छोड़ कर, एक दूसरे से कह दिया करते थे। किन्तु संसार में प्रवेश करने पर अवस्था की वृद्धि के साथ ही साथ मनुष्य में छल-कपट की भी वृद्धि होने लगती है। उस समय अपने मित्रों

से भी मन की सब बातें कहने की इच्छा नही होती। उसी वयोवृद्ध सुलभ-कपटता ने मुझे अब तक सब बातें तुमसे कहने से रोक रक्खा था। अपनी पहली स्त्री के सम्बन्ध की सभी बातें तुमसे कहने की इच्छा नहीं होती थी, किन्तु अब, जब कि तुम मुझे झूठा समझ रहे हो, मेरे मन को बड़ा कष्ट हो रहा है। इस समय मुझे बाध्य होकर तुम से सभी बातें कहनी पड़ रही हैं। बङ्गाल छोड़ने के बाद से, आज १२ वर्ष हुए, मैं फिर कभी बङ्गाल नहीं गया। आज सोलह वर्षों से उस स्त्री से मुझे देखा-देखी तक नहीं हुई। इस जीवन मे केवल एक बार विवाह के समय उसे देखा था।"

* * *

"मेरे श्वसुर ने मेरी उस स्त्री की गर्भजात बड़ी कन्या के विवाह का सम्बन्ध स्थिर करके मुझे विवाह के अवसर पर उपस्थित होने के लिए वारम्वार लिखा। तुम्हीं देखो, कैसा जघन्य व्यवहार है! क्या मैंने अपनी साध से कुल-मर्यादा खोकर वनारस के ब्राह्मण की कन्या से शादी की है? तुम यह समझ रहे हो कि मैंने प्रथम स्त्री के चरित्र मे व्यर्थ दोप लगाकर दूसरी स्त्री का पाणिग्रहण किया है। टुलो के मुकर्जी और शान्तिपुर के × × × घर की वातें सुन शरीर काँप जाता है।"

योगिराज अविनाश की वात सुनकर एकवारगी स्तब्ध हो गए। उनके मुँह से वात न निकली। कुछ समय

तक निर्वाक् रह कर बोले—शान्तिपुर और दुलोग्राम के लोग क्या जानते नहीं कि तुम गत १२ वर्ष से लखनऊ में रहते हो ? तुम्हारे ससुर धनाढ्य व्यक्ति हैं, इससे उन्हें कोई समाज-च्युत नहीं कर सकता। किन्तु लोक-लज्जा से बचने के लिए उन्होंने किस बहाने का आश्रय लिया ?

"भाई कुलीन ब्राह्मण इससे कुछ भी लज्जा नहीं अनुभव करते। लज्जा ही मालूम होती तो मेरे ससुर उस स्त्री के गर्भजात कन्या के विवाह के समय मुझे स्वदेश आने के लिए निमन्त्रण भेजते ? कुलीन ब्राह्मणों के घर में ऐसे कुकर्म नित्य हुआ करते हैं। व्यभिचार उनके यहाँ लज्जा की बात नहीं समझी जाती और न ऐसी भ्रष्टता के लिए कोई किसी को समाज-च्युत ही करता है।"

योगिराज अविनाश बाबू की बात सुन कर दीर्घनिश्वास लेकर बोले—हिन्दू-समाज के मुखिया ऐसे व्यभिचारों को बन्द करने के लिए तो कुछ करते-धरते नहीं। हाँ, वे लोग निरपराधिनी बसन्तकुमारी के सदृश असहाय अबलाओं के लिए काल-स्वरूप अवश्य होते हैं।

अविनाश बोले, भाई—बसन्तकुमारी के प्रति उन लोगों के मन में वैसे भ्रमात्मक विचार उत्पन्न होने के जो कारण हैं वे तो और भी भयानक हैं। तुम जो कहते हो कि हिन्दू-समाज के लोगों की दृष्टि कलुषित हो गई है, यही ठीक है। हिन्दू-समाज के बीच जैसे भयानक व्यभिचार का

स्रोत प्रवाहित हो रहा है, उसे देखते हुए उनके लिए किसी भी निर्दोष स्त्री के सम्बन्ध में किसी मिथ्यापवाद पर विश्वास कर लेना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। निरपराधिनी वसन्तकुमारी के प्रति उन लोगों ने अपने पतन की हृदयस्थ भावना के कारण ही वैसा निष्ठुर व्यवहार किया था। विशेषतः उन लोगों ने, जो वसन्तकुमारी को आम रास्ते पर जाते देख लिया था। हिन्दू-समाज अपनी विधवाओं और विवाहिता और अविवाहिता कन्याओं से इस समय गला फाड़ कर और स्पष्ट शब्दों में कह रहा है—जो कुछ होता है, होने दो, किन्तु परदे की आड़ में। लोगों को ख़बर न लगने पावे।

योगिराज बोले—लोगों को खबर लगने से बाकी रहता है? तुम्हारे लखनऊ में रहने के समय तुम्हारी पहली स्त्री को पाँच-छः सन्तान पैदा हुईं। इसे क्या शान्तिपुर, नवद्वीप और टुलोगाँव के लोग नहीं जानते?

"लोगों की आँखों में धूल डालने के लिए कुलीन ब्राह्मणों ने आश्चर्यजनक कौशलों का अवलम्बन किया है। किन्तु वे कौशल अपने मन को धोखा देने के लिए हैं, लोगों से वे कुछ भी नहीं छिपा सकते।"

अविनाश बाबू की बातों से योगिराज का हृदय अत्यन्त व्यथित हो गया। उनके दोनों नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। वह मन ही मन सोचने लगे—हाय! हाय! हम लोगों

का देश एकदम नरक-सदृश हो गया है ! जो भारत-भूमि नारी-जाति की पवित्रता और सतीत्व की प्रखर ज्योति से एक समय जगमगाती थी, जिस हिन्दू-समाज के क्रोड़ में जन्म ग्रहण करके सीता और सावित्री नैतिक विकाश का आदर्श स्थापित कर गई है, आज उसी देश और जाति के वक्षस्थल पर ऐसे जघन्य व्यभिचार का स्रोत प्रवाहित हो रहा है !

इस प्रकार सोचते-विचारते वह अविनाश बाबू के पीछे-पीछे चले जा रहे थे। चार-पाँच मिनट के बाद घर के दरवाजे पर आ पहुँचे। आँगन के भीतर प्रवेश करते ही उनका चिन्ता-स्रोत स्थगित हुआ। वह अविनाश को सम्बोधन करके बोले—अविनाश, हिन्दू-समाज बिलकुल अधःपतित हो गया है। सम्पूर्ण समाज को तोड़-मरोड़ कर उसका पुनर्निर्माण किए बिना इस व्यभिचार-धारा के रुकने की कोई सम्भावना नहीं।

योगिराज की बातें सुनते ही अविनाश बाबू के घर के बरामदे से एक भद्र पुरुष बोल उठे—महाशय, हिन्दू-समाज के अधःपतन पर नहीं, हिन्दू-धर्म की महिमा पर आज वक्तृता होगी।

घर के बरामदे में जो भद्र पुरुष बैठे हुए थे, उन पर अविनाश बाबू अथवा योगिराज की दृष्टि अब तक नहीं पड़ी थी। उनके बोलने पर ही ये दोनों आदमी उनको देख सके थे। अविनाश के बरामदे में आने पर भद्र पुरुष फिर

बोले—अविनाश, तुम्हारी इन्तज़ारी में आध घण्टे से बैठा हुआ हूँ। कपड़े बदल कर जल्दी आ जाओ। आज फिर साढ़े सात बजे उस पागल की वक्तृता होने वाली है।

अविनाश बाबू भद्र पुरुष को सम्बोधन करके बोले—मैं अभी कपड़े बदल कर आता हूँ।

यह कह कर वह योगिराज को साथ ले घर में गए और योगिराज के कान के पास मुँह ले जाकर चुपके से कहने लगे—तुमसे रास्ते में जिस गोपाल बाबू के विषय में कहा था, यही वह गोपाल बाबू हैं; कमसरियट ऑफिस के हेड क्लार्क हैं। भाई, आज फिर श्यामलाल बाबू के घर में हम लोगों की डिनर-पार्टी है, आज वहाँ बहुत से आदमी इकट्ठे होंगे, मेरा भी निमन्त्रण है। किन्तु तुम्हें घर पर अकेले छोड़ कर डिनर-पार्टी में जाने की मेरी इच्छा नहीं होती। और तुमसे जिस हिन्दू-धर्म-प्रचारक रामप्रसन्न सेन की बात कही थी, वह पुनः पन्द्रह दिनों से यहाँ आए हुए हैं। हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के लिए धन-संग्रह करते हुए वह बलरामपुर के राजा के पास तक गए थे। राजा ने उन्हें पाँच हज़ार रुपए दिए हैं। इस समय बलरामपुर से यहाँ आए हुए हैं। चारों ओर लोग विद्रोही हो रहे हैं, साथ में रुपए लेकर बनारस जाने की उनकी हिम्मत नहीं होती, इसी से जम कर यहीं पर डटे हुए हैं। आज वह "हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता" पर व्याख्यान देंगे। आज

मैं और कहीं नहीं जाऊँगा; केवल तुम्हारे साथ एकान्त में बातचीत करूँगा। शरीर अस्वस्थ होने का बहाना करके उन्हें इस समय टरका देता हूँ। तुम घर में बैठे रहो।

योगिराज बोले—भाई, व्यर्थ झूठ क्यों बोलोगे ? उनसे स्पष्ट कह दो कि मैं आज नहीं जा सकता।

"धीरे-धीरे बोलो, मैं इन लोगों से बहुत डरता हूँ। मैं इन लोगों की पार्टियों में प्रायः नहीं जाता हूँ। इससे ये लोग मुझ पर मन ही मन नाराज़ हैं। इनकी पार्टी मे जाने पर थोड़ा-बहुत शराब अवश्य ही पीना पड़ता है। इससे मेरी स्त्री बहुत दुखी होती है। इस समय मेरे ससुर मेरी स्त्री को बनारस लिवा ले गए हैं। इसी से आज श्यामलाल बाबू से पार्टी में जाने का वादा कर आया था।"

"वादा कर आए हो तो जाओ। मैं भोजन करके सो रहूँगा। थोड़ी रात रहते ही चला जाऊँगा।"

"यह नही हो सकता—मै आज तुम्हे किसी तरह नहीं जाने दूँगा। तम्हें यहाँ कम से कम दो-तीन महीना रहना पड़ेगा। तुम संन्यासी ठहरे; तुम्हे कहीं कोई काम तो है नहीं। मैं सदा अपनी स्त्री से तुम्हारी प्रशंसा किया करता था। पढ़ने के समय तुम मुझे सन्मार्ग पर चलाने की चेष्टा किया करते थे—यह सुन कर मेरी स्त्री भी तुम्हारी प्रशंसा किया करती है। वह प्रायः मुझसे कहा करती है, ऐसे मित्र के पास तुम्हे जाने दे सकती हूँ; किन्तु श्यामलाल बाबू के

दल में कभी नही सम्मिलित होने दूँगी। यदि आज वह यहाँ होती, तो तुम्हें देख कर उसे कितना आनन्द हुआ होता, मैं नहीं कह सकता। एक बार मेरी स्त्री के साथ तुम्हें साक्षात् तो करना ही होगा।"

"इस यात्रा में तुम्हारी स्त्री से साक्षात् न हो सकेगा। तुम्हारी इच्छा हो तो कपड़े बदल कर पार्टी में जाओ। मुझे कोई कष्ट न होगा; मैं प्रायः निर्जन स्थान में बैठ कर चिन्तन किया करता हूँ।"

"नहीं-नहीं, मैं आज पार्टी मे नही जाऊँगा। उन्हें अभी बिदा किए देता हूँ। आज भला तुम्हें छोड़ कर पार्टी में किस प्रकार जाऊँगा?"

अविनाश बाबू की अन्तिम बात अभी समाप्त भी न होने पाई थी कि बरामदे से गोपाल बाबू ने आवाज दी—ए अविनाश! तुम्हें कपड़े बदलने में कितनी देरी लगती है?

अविनाश बोले—ज़रा बैठिए गोपाल बाबू।

यह कह कर अविनाश झटपट कपड़े बदल कर बरामदे में गए। योगिराज घर में बैठे रहे। गोपाल बाबू ने अविनाश बाबू से पूछा—इस बाबा जी को कहाँ पाया? क्या उन्हें घर में ही छोड़ आए? मालूम होता है कि बाबा जी डिटेक्टिव-विभाग के हैं—तुम्हारे इन्टेलिजेन्स डिपार्टमेण्ट (सम्वाद-संग्रह-विभाग) के गुप्तचर हैं, नहीं तो भला इतनी थोड़ी अवस्था में कहीं कोई साधु हो सकता है? बाबा जी

का चेहरा बड़ा सुन्दर है। देखने में राजकुमार मालूम पड़ते हैं।

अविनाश बाबू ने उत्तर दिया—ये सब बातें इस समय रहने दो, काम की बात कहो। बाबा जी कौन हैं, इसे सुन कर क्या करोगे?

"भाई, मेरे मन में कुतूहल यह हुआ कि तुम बाबा जी को लेकर लॉरेन्स साहब के पास क्यों गए थे? खैर, जाने दो, बाबा जी की बात से मुझे कोई प्रयोजन नहीं। तुम जल्दी चलो, श्यामलाल बाबू मुझे तुमको साथ लेकर आने के लिए कह गए हैं।"

"हाँ, आज मैं श्यामलाल बाबू से सचमुच जाने के लिए वादा कर आया था। किन्तु क्या कहूँ, बड़ी बला में फँस गया हूँ। तुम्हारे साथ जा सकने की कोई सम्भावना नहीं। मैं जानता हूँ कि श्यामलाल बाबू मुझ पर बहुत बिगड़ेंगे।"

"क्यों, जाने की सम्भावना क्यों नहीं?"

"भाई, आज काम में बेतरह फँसा हुआ हूँ। इस समय घण्टे-घण्टे पर रेजिडेन्सी से मेरे पास हुक्म आएगा, और मुझे उन हुक्मों के मुताबिक़ बन्दोबस्त करना पड़ेगा। शायद तुम्हें मालूम नहीं कि आज की अवस्था कैसी है। मैं केवल तुमसे गुप्त-रूप से कह रहा हूँ। खबरदार, किसी से मत कहना। कल प्रातःकाल ही विद्रोहियों पर आक्रमण करने के लिए यहाँ से जनरल हेन्स सेना लेकर चिनहात भेजे जायँगे।

आज देखा नहीं कि दिन-भर केवल तोप-बन्दूक़ों की जाँच होती रही है, और 'दुरुम' 'दुरुम' की आवाज़ सुनाई देती रही है। ऐसी अवस्था में मैं आज घर से बाहर कहीं नहीं जा सकता।"

"कल चिनहात मे फ़ौज भेजी जायगी, यह तो हमें भी मालूम है। हमारे कमसरियट विभाग में हुक्म गया था।"

"तब तो सब बातें जानते ही हो। आज और कहीं जाना मेरे लिए सम्भव नहीं। मेरे न जाने का कारण श्यामलाल बाबू को समझा कर कह देना, नहीं तो मुझे अनुपस्थित देख कर वह मुझ पर व्यर्थ ही बिगड़ खड़े होंगे।"

"नहीं, जब सरकारी काम रहने के कारण नहीं जा रहे हो तो क्यों बिगड़ेंगे? लोग तुम पर बिगड़ते तो इसलिए हैं कि तुम उस ब्राह्मण की छोकरी से डर कर हम लोगों से मिलना-जुलना नहीं चाहते! तुम उस ब्राह्मण की छोकरी के बिलकुल गुलाम हो गए हो। श्यामलाल बाबू व्यर्थ ही किसी पर बिगड़ने वाले आदमी नहीं है। तुम्हीं बताओ, लखनऊ में इनके समान कितने आदमी हैं? केवल लखनऊ में ही क्यों? भारतवर्ष भर मे श्यामलाल बाबू की भाँति महान व्यक्ति कितने हैं? श्यामलाल बाबू महीने में पाँच दर्जन बोतल शैम्पियन* पी डालते हैं। इतना शैम्पियन पीने वाला मनुष्य क्या कभी गँवार हो सकता है?"

---

*एक प्रकार की बढ़िया शराब।

श्यामलाल बाबू का इस प्रकार का गुणानुवाद करके गोपाल बाबू चलने को उद्यत हुए। किन्तु घर के बाहर आँगन में जाकर पुनः अविनाश बाबू को पुकार कर बोले— अविनाश, तुम तो पार्टी में जाओगे ही नहीं ; क्या एक काम कर सकते हो ?

"क्या काम ?"

"आजकल श्रीरामप्रसन्न की वक्तृता सुनने के लिए बहुत कम श्रोता इकट्ठे होते हैं। इस विद्रोह की गड़बड़ी में वक्तृता सुनने के लिए फ़ुरसत किसे है ? आज श्यामलाल बाबू के घर पर पार्टी होने वाली है; इसलिए आज उनका व्याख्यान उसी मुहल्ले में मेरे मकान पर होगा। तुम आज रात में घूमते-फिरते एक बार वहाँ तक आ सकते हो ? उन्होंने मुझसे और श्यामलाल बाबू से वक्तृता के समय उपस्थित रहने के लिए बारम्बार अनुरोध किया है। आज की वक्तृता का विषय भी गम्भीर है, किन्तु पार्टी समाप्त होने के पहले हम लोग वहाँ न जा सकेंगे।"

"हाँ, यदि वक्तृता तुम्हारे मकान पर होगी, तो मैं जा सकता हूँ।"

"तुम जरूर चले जाना। उनकी वक्तृता सुनने के लिए लोग नहीं आते हैं; इस बात पर वह बड़ा आक्षेप करते हैं।"

यह कह कर गोपाल बाबू चले गए। अविनाश बाबू घर में आकर योगिराज से बोले—भाई, आपत्ति को विदा

वंशीय ब्राह्मण थे। बहुत से कैश ब्राह्मण ऐसे होते हैं, जिनके पिता ब्राह्मण थे तो माता शूद्राणी, अथवा यदि माता ब्राह्मणी थी तो पिता कौन थे, इसका निश्चय करना कठिन है। मेरे ससुर एकदम कैश ब्राह्मण नहीं हैं। मौसी के गर्भ से उनका जन्म हुआ था।"

"तो क्या काशी में इस प्रकार के कैश ब्राह्मण बहुत से हैं?"

"काशी, इलाहाबाद, वृन्दावन और पश्चिमोत्तर प्रान्त के अन्यान्य स्थानों में लगभग दस हज़ार कैश ब्राह्मण होंगे।"

अविनाश की सब बातें सुन कर योगिराज बोले—देखो, हिन्दू लोग अन्याय पूर्वक विधवा-विवाह को रोकने की चेष्टा करके कैसा घोर अनर्थ कर रहे हैं। यह सीधी-सादी बात उनकी समझ में नहीं आती कि वे विधवा-विवाह को किसी प्रकार भी रोक नहीं सकते। विधवाएँ काशी और वृन्दावन में जाकर सन्तान उत्पन्न कर रही हैं। और कोई-कोई तो वैष्णव-पन्थ में सम्मिलित हो, सामाजिक बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो रही हैं, किन्तु इस सामाजिक कुप्रथा के कारण उनकी गर्भजात निरपराध सन्तान को समाज में लाञ्छित और लज्जित होकर अपना जीवन बिताना पड़ता है।

"तुम्हारे ससुर वङ्गदेशीय ब्राह्मणों के दल में सम्मिलित होने के लिए इतने उत्सुक क्यों हैं? मुझे तो वह बिलकुल

कायर मालूम होते हैं। यदि उनके मन में लेशमात्र भी नैतिक साहस एवं मानसिक बल होता तो वे कदापि ऐसी क्षुद्रता न दिखाते। और तुम कैश ब्राह्मण की कन्या के साथ विवाहित होने के कारण अपने को हीन क्यों कर समझ रहे हो ? यदि तुम्हारी स्त्री सच्चरित्र है, तो कैश ब्राह्मण की कन्या होने के कारण वह कभी घृणा की पात्र नहीं हो सकती। तुम अभी जिस आदमी से बातें कर रहे थे, उसने तुम्हारे सामने तुम्हारी स्त्री का नाम लेकर घृणा-सूचक शब्दों में कहा—'तुम उस कैश ब्राह्मण की छोकरी के भय से हम लोगों से मिलना नहीं चाहते।' उस आदमी को तुम्हारी स्त्री के सम्बन्ध में इस प्रकार के अवज्ञापूर्ण शब्द मुँह से निकालने का क्या अधिकार था ? यदि मेरी स्त्री के प्रति कोई इस प्रकार अपमान का भाव दिखाता तो मैं उसी वक्त उसके मुँह पर एक चपत जमा देता। तुम कायर हो इसी से इन लोगों के साथ रहने की तुम्हारी इच्छा होती है। जो व्यक्ति चरित्रवान् होगा, वह वीर-शिरोमणि नेपोलियन की भाँति कह उठेगा—"I am the Rodolph of my race"—"मैं अपने वंश का आदि संस्थापक हूँ।"

योगिराज की बातों का अविनाश ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठे रहे। सन्ध्या होते देख योगिराज एक एकान्त कोठरी में गए। सन्ध्याकालीन उपासना में प्रवृत्त हुए। प्रायः आध घण्टे के बाद उपासना समाप्त करके

वह ज्योंही अविनाश बाबू के कमरे मे गए, त्योंही अविनाश बाबू ने उनसे पूछा—श्रीरामप्रसन्न सेन की वक्तृता सुनने चलोगे ? मेरे घर के पास ही उस घर में उनकी वक्तृता होने वाली है।

हिन्दू-धर्म के प्रचारकों की वक्तृता सुनने के लिए योगिराज को भी कौतूहल हो रहा था। वह अविनाश के साथ हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता पर व्याख्यान सुनने के लिए चले।

श्रीगोपाल बाबू के घर के आँगन मे व्याख्यान का प्रबन्ध हुआ था। एक तो हिन्दू-धर्म की वक्तृता और उपदेश सुनने के लिए लोगो मे योंही रुचि न थी, उस पर वर्त्तमान विद्रोह ने लोगों को और भी डरा दिया था। योगिराज और अविनाश ने उक्त स्थान पर पहुँच कर देखा कि लगभग एक दर्जन श्रोताओ के बीच गेरुआ वस्त्र पहने हुए काले-कलूटे रामप्रसन्न सेन उल्लू की भाँति गम्भीरता धारण किए हुए बैठे हैं। उनकी गम्भीर आकृति को विशेष ध्यान-पूर्वक देखने से प्रतीत होता था मानो वह मन ही मन सोच रहे हैं कि आज मै समस्त हिन्दू-जाति के स्वर्गारोहण का सोपान तैयार करने बैठा हूँ।

रात में साढ़े सात बजे से उनकी वक्तृता होने वाली थी, किन्तु आठ बज जाने के बाद भी वक्तृता आरम्भ न हुई। कारण यह था कि हिन्दू-धर्म-प्रचारिणी सभा के सभापति

श्यामलाल चक्रवर्ती और मन्त्री बाबू गोपाल चट्टोपाध्याय का अब तक सभा-भूमि में पदार्पण नहीं हुआ था।

दोनों आदमियों को बुला लाने के लिए दो-दो आदमी पहले ही भेजे जा चुके थे। किन्तु अभी तक उन आदमियो मे से किसी का भी पता न था। जब साढ़े आठ बजने को चला तो उनमें से एक आदमी ने लौट कर कहा—बाबू लोग अभी आवेंगे। आपको व्याख्यान आरम्भ करने के लिए कहा है।

वक्ता ने देखा कि और अधिक देर करने से जो दस-पाँच आदमी इकट्ठे हुए है, वे भी हाथ से निकल जायँगे; इसलिए उन्होंने झटपट खड़े होकर इस प्रकार व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया :—

"सभ्यो ! घोर गम्भीर निशीथ काल है। अन्धकार की अधिकता से किसी तरफ दिखाई नहीं पड़ रहा है। इस निस्तब्ध, निशीथ समय में सभी आर्य महर्षि—क्या वेदव्यास क्या याज्ञवल्क्य, क्या हारीत क्या विश्वामित्र, सभी निद्रित है। किन्तु मेरी नींद न जाने क्यो एकाएक टूट गई है। जागने पर देखता हूँ कि गङ्गा और गोदावरी पर प्रज्वलित अग्नि धायँ-धायँ करके जल रही है। काशी. प्रयाग, वृन्दावन पापानल से भस्मीभूत हो रहे हैं। इन परम पवित्र तीर्थ-स्थानों के दूकानदार लोग केवल अपने-अपने सौदे की हिफाजत करने की फिक्र में हैं। एक अमूल्य

धन उस प्रज्वलित अग्नि में पड़कर जलना आरम्भ हुआ। हाय ! उसकी ओर किसी ने आँख उठाकर देखा तक नहीं, केवल मेरा दिल उसके लिए रो उठा। मैं मन्दिर के उस अधजले देवता को बचाने के लिए प्रयत्न करने लगा।

"हे लखनऊ-निवासी हिन्दू-धर्मावलम्बो महात्माओ, हे साधु पुरुषो, हरि के भक्त वैष्णव लोगो ! आप लोगों को सन्देह हो सकता है और आप लोग पूछ सकते हैं कि जिस वस्तु के लिए भारतवर्ष के किसी पुरुष का दिल नहीं रोता, उसके लिए तुम इतना आग्रह क्यों कर रहे हो ? जिस वस्तु को दूसरा कोई पसन्द नहीं करता, उसके लिए तुम पागल क्यों हो रहे हो ? आप लोग शायद यह सोचते होंगे कि हिन्दू-धर्म के प्रचारक, परिव्राजक, विद्वान् लोग हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा स्थापित करके धन बटोरने का एक नया ढङ्ग निकाल रहे हैं ; किन्तु यह बात बिलकुल भ्रमात्मक है। आप लोग ऐसे विचारों को अपने मन में कभी स्थान न दीजिएगा। केवल हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता ने मेरे मन को अपनी ओर आकर्षित किया है, विशुद्ध देश-हितैषिता ने इस क्षुद्र हृदय पर आक्रमण किया है। इसी से आज हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता पर वक्तृता देने के लिए मैं अग्रसर हुआ हूँ। हिन्दू-धर्म ही सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है ; इसे ही × × ×"

वक्ता के यहाँ तक कहते ही रेजिडेन्सी से 'दुरुम-दुरुम' तोप की आवाज सुनाई पड़ी। लिखा जा चुका है कि दूसरे

दिन अङ्गरेज़ लोग चिनहात जाकर विद्रोहियों पर आक्रमण करने वाले थे, इसी से वे लोग अपने अस्त्र-शस्त्र ठीक कर रहे थे। तोपों की 'दुरुम' 'दुरुम' की दो आवाज़ें सुनते ही वक्ता महोदय की तीन वर्ष के बच्चे की भाँति छाती दहल उठी। पहना हुआ वस्त्र खिसक पड़ा, शरीर से पसीना छूटने लगा, दोनों पाँव काँपने लगे और उनमें खड़े रहने तक की शक्ति नहीं रह गई। व्याख्यान में किन-किन विषयों पर बोलना होगा, इसे वक्ता महोदय ने संक्षेप रूप में एक काग़ज पर नोट कर लिया था। वह काग़ज़ अब तक उनके हाथ में था, किन्तु तोप की आवाज़ सुनते ही एकबारगी उनकी ज़बान बन्द हो गई, सारा शरीर काँप उठा और काग़ज़ हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ा। उन्हें इतना देखने के लिए भी होश-हवास न रहा कि काग़ज़ कहाँ गिरा। उनके दिमाग़ मे चक्कर आने लगे। वह निश्चय नहीं कर सके कि इस समय क्या कहना चाहिए। उधर ठीक उसी समय श्यामलाल बाबू अपने दल-बल सहित सभा-स्थल मे पधारे। इन लोगों को देख कर वक्ता महाशय को कुछ ढाढ़स बँधा। किन्तु व्याख्यान में क्या कहना है, इस विषय को वह एकदम भूल गए थे। उनका काग़ज़ ग़ायब हो गया था। बेचारे महासङ्कट में फँसे। तब हाथ उठा कर वक्तव्य-विषय के अभाव में केवल समय टालने के अभिप्राय से बोलने लगे—"हे उपस्थित महात्माओ, यह तोप की आवाज़ हो रही है,

किन्तु क्या हम लोग आर्य-सन्तान होकर फिरङ्गियों के तोपों की आवाज़ से डरते हैं ? जिसके हृदय में धर्म की शिखा प्रज्वलित हो, वह क्या तोप की साधारण आग से कभी डर सकता है ? फिरङ्गियों की सैकड़ों तोपें—सैकड़ों ही क्यों ? हज़ारों और लाखों तोपें हम लोगों को नहीं डरा सकतीं।"

यहाँ तक कह कर वक्ता फिर ठहर गए। तोप और गोलों की बात में दो-एक मिनट तो टल गए, किन्तु आगे क्या कहना है, उसे वह सहसा निश्चित नहीं कर सके। वक्तव्य-विषय के नोट को भुला कर वक्ता महाशय बड़ी विपत्ति में फँस गए थे। किन्तु बङ्गाली के बच्चे जब वक्तता देने के लिए एक बार उठ खड़े होते हैं तो सहज ही घबरा कर बैठ नहीं जाते। वक्ता महोदय थोड़ी देर तक सोचने के बाद फिर बोलने लगे—"हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति ने केवल धर्म के विषय में ही श्रेष्ठता लाभ की है, सो बात नहीं। घर में, बाहर में, नगर में, जङ्गल में, आकाश में, गगन-मण्डल में, चन्द्रलोक में, सूर्यलोक में, पर्वतों में, सागर-तल में—जिधर देखेंगे, जिधर दृष्टिपात करेंगे, उधर ही हिन्दू-जाति की, हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता देख पाएँगे। अङ्गरेज़ लोगों के तोपों की गरज सुन कर अङ्गरेज़ लोगों के तोपों की थोड़ी-बहुत करामात देख कर आप लोग ऐसा ख्याल कभी न कीजिएगा कि आर्य लोगों के पास इनसे अच्छे अस्त्र-शस्त्र

न थे। अस्त्र-शस्त्र के सम्बन्ध में हम आर्य-जाति की सन्तान अङ्गरेज़ों से कहीं बढ़ कर हैं। प्राचीन आर्यों के नागपाश, ब्रह्मास्त्र, वज्र, त्रिशूल एवं सुदर्शनचक्र के साथ अङ्गरेज़ों के तोपों और बन्दूक़ों की क्या तुलना हो सकती है? यदि मैं उन दिव्य अस्त्रों के साथ अङ्गरेज़ों के तोपों की तुलना करूँ, तो आप लोग मुझे पाखण्डी कहेंगे। यदि प्राचीन अस्त्रो की चर्चा छोड भी दें तो क्या अब भी हम लोगों के पास जो अस्त्र-शस्त्र विद्यमान् हैं, वे क्या अङ्गरेज़ों के अस्त्र-शस्त्र से बढ़ कर नहीं हैं?

"अस्त्र शब्द कहने से आप लोग केवल तोप के समान घातक शस्त्र को ही अस्त्र न समझिएगा। अस्त्र कहने से लोहे की बनी हुई सभी प्रकार की वस्तुओं का बोध होता है। हम लोगों के आर्य पुरुषों के दाव, कटारी, खन्ता, कुल्हाड़ी, फरसे आदि भी एक प्रकार के अस्त्र ही हैं। क्या मैं इतना पाखण्डी, इतना पामर हूँ कि अपने पिता-पितामहों के इन सब उत्कृष्ट अस्त्रों को अस्त्र कह कर न पुकारूँ?

"हे हिन्दू-धर्म के महात्माओ, हरिभक्त वैष्णव लोगो, यदि अङ्गरेज़ों की तोपों के धुएँ से आप लोग अन्धे न हो गए होंगे तो मेरे बताए हुए दाव, कटारी, खन्ता, कुल्हाड़ी, छुरिका, क़ैंची आदि जो बड़े अस्त्र हैं, उनमें हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता देख पाएँगे—अवश्य देख पाएँगे। ज्ञान-चक्षु के खुलते ही आप लोगों को सब चीजें साफ़-साफ़ दिखलाई पड़ेंगी।

"मैं साहस करके कहता हूँ कि हमारे आर्य लोगों के ये बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र—हम लोगों के आर्य-महर्षियों के दाव, कटारी, फरसे आदि धर्म-प्रतिपादक अस्त्र—सैकड़ों मुख से हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित कर रहे हैं। अङ्गरेजों के तोप-बन्दूक़ केवल नर-हत्या करने के लिए बनाए गए हैं। इन पैशाचिक अस्त्रों को छूने मात्र से आप लोगों को पाप का भागी बनना पड़ेगा। किन्तु हम लोगों के पूर्वजों के अस्त्र-शस्त्र केवल नर-हत्या के लिए नहीं बनाए गए थे। हे रामकृष्ण के भक्तो, हम लोगों की कुल्हाड़ी क्या कहती है, इसे एक बार ध्यानपूर्वक सुनिए। कुल्हाड़ी कहती है—'मैं तोप से किसी बात में कम नहीं हूँ, मेरी कोई भी शक्ति तोप से कम नहीं है, मैं भी तोप की तरह मनुष्यों की देह नष्ट कर सकती हूँ—छिन्न-भिन्न कर सकती हूँ। किन्तु मैं विनाश-प्रिय नहीं हूँ। मैं विनाश के लिए प्रयत्न भी नहीं करती हूँ। मैं तुम लोगों की रक्षा के लिए, तुम्हारे पालन-पोषण के लिए चेष्टा करती हूँ, मैं सदा काठ चीर करके सुन्दर हिन्दू-रमणियों के भोजन बनाने में सहायता देती हूँ।"

वक्ता के इतना कहते ही सभा के बीच से हिन्दू-धर्मावलम्बी कई वृद्ध पुरुष गद्‌गद होकर बोल उठे—'अहिंसा-परमोधर्मः'—'अहिंसा परमोधर्मः—'हरे कृष्ण'—'हरे राम!'

वक्ता ने देखा कि मेरे भाषण के इस अंश ने श्रोताओं को

मुग्ध कर दिया है। इसलिए वह फौरन कुल्हाड़ी की बात छोड़ कर दाब और कटारी की ओर बढ़े और विशेष उत्तेजित होकर बोलने लगे—

"केवल कुल्हाड़ी ही नहीं, केवल कुदाल ही नही, दाब और कटारी क्या कहती है, इसे भी जरा ध्यान देकर सुनिए! दाब कहता है—'मैं आकार में छोटा होते हुए भी तोप की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हूँ। हिन्दू लोगो· को—भारतवासियों को तोप की डरावनी सूरत देख कर मुझे नही भूल जाना चाहिए। बन्दर की अपेक्षा हाथी आकार में बड़ा होने पर भो वह उसकी तरह बुद्धिमान् और सभ्य नही होता।' सुनो भक्तो, सुनो! दाव और क्या कहता है? दाव कहता है—'तोप की तरह मैं भो प्राणियों का संहार कर सकता हूँ, सारे संसार को खाक में मिला सकता हूँ, मानव-देह को टुकड़े-टुकड़े कर सकता हूँ। किन्तु मै हिंसक तथा घातक नहीं, मै गृहस्थों के लिए चीजें काट कर उनका उपकार करता हूँ। आलू, कोहड़ा, कटहल आदि को खण्ड-खण्ड करके शाकाहारी लोगों का महान् उपकार करता हूँ। परोपकार व्रत को धारण करके इस विशाल विश्व-मन्दिर में विराज रहा हूँ।'"

श्यामलाल बाबू अब तक वक्ता की दाहिनी ओर एक कुर्सी पर चुपचाप बैठे हुए शैम्पियन के नशे मे ऊँघ रहे थे। किन्तु वक्ता के मुँह से आलू, कटहल आदि का नाम सुनते

ही वह आधे बन्द किए हुए नेत्रों से बोल उठे— "एक—चॉ—क—ले—ट—चाहिए—ब्रा—एडी—के मुँह—से आलू कटहल ठीक नहीं लगते, आलू कटहल अच्छे नहीं लगते।"

सभापति जी का यह प्रलाप सुन कर वक्ता महोदय की दृष्टि उनकी ओर पड़ी। सौभाग्य से सभापति जी की कुर्सी के नीचे वक्ता महोदय को आज के व्याख्यान के लिए नोट किया हुआ काग़ज़ पड़ा हुआ नज़र आया। उस समय उनकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। बेचारे को एक बड़ी विपत्ति से छुटकारा मिल गया। अस्त्र-शस्त्रों के सम्बन्ध में कुछ अण्ड-बण्ड बकने के बाद उनके पास आगे बोलने के लिए और कोई विषय ही नहीं रह गया था। उस काग़ज़ के टुकड़े ने उन्हें इस विकट विपज्जाल से मुक्त कर दिया। काग़ज़ मे इस प्रकार लिखा हुआ था—

"हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता—(१) प्रचार की आवश्यकता (२) हम लोग अर्थ-लोभी नहीं (३) वर्त्तमान धर्म-विप्लव (४) यज्ञोपवीत (५) ब्राह्म-पाखण्ड (६) ब्राह्म गदहे-सुअर के समान है (७) हिन्दू-धर्म के विरोधियों का मत (८) देश, काल और पात्र-भेद से धर्म में विभिन्नता (९) बाल-विवाह (१०) बहुविवाह (११) कौलीन्य प्रथा (१२) रेलवे-टेलीग्राफ़ (१३) वर्दवान का रेलवे-स्टेशन और मेरी बहिन की दुर्दशा (१४) उपसंहार।"

अब तक वक्ता महोदय केवल अटकल से बोल रहे थे। किन्तु अब वक्तव्य-विषय का नोट किया हुआ काग़ज़ मिल जाने पर उसे हाथ में लेकर बड़े उत्साह से बोलने लगे—

"अब तक जो कुछ कहा गया, उससे यह सिद्धान्त निकलता है कि अस्त्र-शस्त्र के सम्बन्ध में हम लोग अङ्गरेज़ों से श्रेष्ठ है, अस्त्र-शस्त्र की दृष्टि से भी हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता ही साबित होती है। अब मैं वर्त्तमान धर्म-विप्लव और हिन्दू-धर्म के प्रचार की आवश्यकता के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। आज सनातन आर्य-धर्म के सम्मुख नए-नए सभी धर्म अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर खड़े हैं। मुसलमानी धर्म हाथ में तलवार लेकर, ईसाई मजहब बन्दूक और तोप लेकर आज आर्य-धर्म के सम्मुख कमर कस कर तैयार हो रहे हैं। अन्त मे ब्राह्म-धर्म भी एक छोटा सा आलपीन लेकर मैदान मे पहुँच गया है। ऐसे धर्म-विप्लव के समय मेरे समान लोगों को हिन्दू-धर्म के प्रचार के लिए अवश्य व्रत लेना पड़ेगा।

"ब्राह्म लोगों ने यज्ञोपवीत परित्याग करने का सङ्कल्प किया है। उनमें से एक ने यज्ञोपवीत का परित्याग कर भी दिया है। इन गदहो, इन सूकरों, पाखण्डियों के ऐसे आचरण को देख कर मुझे अपने परिवार की एक बात याद आ गई। मेरे पिता और मेरे चचा की आकृति और रूप-रङ्ग प्रायः एक ही तरह का था। इन लोगों में से एक आदमी को देख कर

दूसरे का बोध हो जाता था। इस भ्रम के निवारणार्थ गाँव के लोगों ने मेरे पिता के गले में एक काला फीता बाँध दिया। गाँव के पञ्चों ने अच्छे अभिप्राय से मेरे पिता के गले में फ़ीता बाँधा था। अतः पिता जी ने भी उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और आजीवन उस फीते को धारण किए रहे। किन्तु ब्राह्म लोग ऐसे नीच, ऐसे अकृतज्ञ और पाखण्डी हैं कि इनकी चाल देख कर हँसी रोके नहीं रुकती। जो लोग गदहे की तरह संसार के सारे बोझ को ढो सकते हैं, उन्हें सूत का तीन तागा बहन करने में भला कौन सा कष्ट होता है? गदहे ब्राह्म लोगो, यदि तुम लोग जनेऊ को त्यागना चाहते हो तो पहले वासना के सूत्र को त्यागो। हम लोगों के आर्य पूर्वज प्रेम-वश अपने पुत्रों को किष्किन्धा-निवासी प्राचीन आर्यों से पृथक् करने के लिए उनके गले में यज्ञोपवीतरूपी फीता को बाँध दिया करते थे। किन्तु ब्राह्म लोग इतने मूर्ख हैं कि आर्यों के इस अच्छे अभिप्राय को भी नहीं समझ सकते।

"हिन्दू-धर्म के विरोधी 'उदारता' 'उदारता' कह कर चिल्लाते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्यों का धर्म एक है। इसलिए यह मेरा है, वह दूसरे का है, यह मेरा धर्म है वह दूसरे का धर्म है, इस प्रकार के भेद-भाव को मन में स्थान नहीं देना चाहिए, किन्तु मैं कहता हूँ कि ऐसा कहना सरासर पागलपन है। देश के भेद से मनुष्यों के रूप-रङ्ग और वेश-

भूषा में जिस प्रकार भिन्नता होती है, उसी प्रकार धर्म की भी दशा है। ईश्वर एक है, अतः उसका बनाया हुआ धर्म भी एक ही है, ऐसा कहना बड़ी भारी मूर्खता है। हम सब लोग, मान लीजिए, एक ही माता की सन्तान हैं। इस कारण कोई बीमार पड़ने पर यह कहे कि मैं भी वही भोजन करूँगा जो मेरे दूसरे भाई कर रहे हैं, तो उसका ऐसा कहना बिलकुल पागलपन है। धर्म वर्ण, आश्रम, अधिकार, देश, जाति, सम्प्रदाय, अवस्था-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं।

"ब्राह्म गदहे बाल-विवाह, बहुविवाह और कौलीन्य आदि अच्छी प्रथाओं को दूषित देशाचार कह कर चिल्लाते हैं। किन्तु लखनऊ-वासी भक्त लोगो, साधु लोगो, हरि-भक्त वैष्णव लोगो, मैं आपसे कहता हूँ कि इन प्रथाओं में ज़रा भी दूषण नहीं है, इस बात को अकाट्य युक्तियों के द्वारा आप लोगों के सामने मैं अभी प्रमाणित कर देता हूँ।

"हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार मनुष्य का मुख्य उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है। मुक्ति पाने का अर्थ है माया, मोह आदि को छोड़कर विशुद्ध चिन्मय और आनन्दमय आत्मा के रूप का दर्शन करना। प्रातःकाल बिस्तर छोड़ते ही दूध और चीनी मिले हुए गरम-गरम चाय के प्याले और आधे पके हुए चिड़ियों के अण्डे गपागप उड़ाने से मुक्ति नहीं मिल सकती। बड़ी मोटी रोहू मछली का मुण्ड भक्षण करके भोग-स्पृहा तृप्त करने से मुक्ति नहीं मिल सकती।

और अङ्गरेजों की। हमारे देश मे दो और शिव जी के मन्दिर बन जाते तो आर्य-जाति का उद्धार हो जाता। किन्तु इङ्गलैण्ड की उन्नति से भारत का भला कभी नहीं हो सकता। रेलों द्वारा हमारी क्या उन्नति हुई है? हमारे धर्म में तो कोई उन्नति नहीं हुई, हाँ उपद्रवों में अवश्य उन्नति हुई है। गतवर्ष पूजा (दशहरा) की छुट्टी के समय बर्दवान के रेलवे स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर प्रायः दो-ढाई सौ बङ्गाली बाबू इकट्ठे हुए थे। उनमें बहुत से सपत्नीक घर जा रहे थे। मैं अपनी छोटी युवती बहिन को एक डिब्बे के सामने खड़ा करके किसी काम से चला गया था। इतने में गाड़ी छूटने की सीटी हो गई। सीटी की आवाज़ सुनते ही एक बङ्गाली बाबू घबराहट में दौड़े हुए आए और मेरी बहिन को अपनी स्त्री समझ उसका हाथ पकड़ कर खैंचातानी करने लगे। वह बङ्गाली बाबू जल्दीबाज़ी के मारे हिताहित-ज्ञान-शून्य होकर ज्यों-ज्यों कहते थे, 'अरे जल्दी-जल्दी चलो, गाड़ी खुल गई।' त्यों-त्यों मेरी बहिन बेचारी लाज में पड़ कर पीछे हटती जाती थी। बड़ा बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। बहुत देर की खैंचातानी के बाद जब मेरी बहिन ने मुँह घुमा कर अपना घूँघट खोला तो बङ्गाली बाबू अपना-सा मुँह लेकर दूसरी जगह चले गए।

"सज्जनो, आप लोग मुझसे पूछ सकते हैं कि इस लोमहर्षक घटना से हम लोगों को क्या शिक्षा मिलती है?

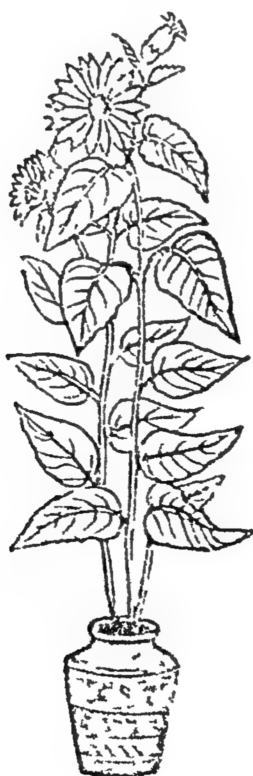
इस भीषण काण्ड को देख कर भी क्या हम लोगों की आँखें नहीं खुलेंगी ? क्या इस देश में रेलगाड़ी के प्रचार से हम लोगों के धर्म में विप्लव नहीं उपस्थित हुआ है ? हम लोग आर्य-जाति के वंशज हैं। हमें पूजा, आन्हिक सन्ध्या आदि दैनिक कार्य करने पड़ते हैं। हम लोगों को किसी स्थान की यात्रा करते समय तिथि, वार, नक्षत्र आदि देख कर यात्रा का समय निर्धारित करना पड़ता है। हम लोगों के पूर्वज अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार बैलगाड़ी पर चढ़ कर बहुत दिनों तक यात्रा किया करते थे। अब तो ज्योंही सीटी बजी त्योंही पूजा-पाठ, सन्ध्या-वन्दन आदि नैतिक कर्मों को छोड़-छाड़ कर गाड़ी की ओर दौड़ना पड़ेगा। कौन अपनी स्त्री है, कौन दूसरे की है, यह भी निश्चय करने का समय नहीं मिलेगा। अङ्गरेज़ो की स्त्रियो में लाज-हया नहीं होती, इसलिए उन्हें अपनी स्त्रियो के ढूँढ़ने में इतना कष्ट नही उठाना पड़ता। किन्तु हम लोगों की स्त्रियाँ लज्जाशीला होती हैं, वे जब तक अपना घूँघट खोल कर मुँह न दिखावें, तब तक उन्हें पहचानना कठिन होता है। माथे पर का वस्त्र उतारे बिना कौन स्त्री है, कौन बहिन है, इसे किस प्रकार जान सकेंगे ? क्या रेलगाड़ी के लिए आप लोग व्यासादि ऋषियों के चलाए हुए लज्जा की प्रथा को उठा देंगे ? क्या यह सुन्दर प्रथा हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता का द्योतक नहीं है ?

"आज हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता के प्रतिपादन में कई बातें कहीं। हम लोगों की देश में प्रचलित बाल-विवाह, कौलीन्य प्रथा, बहुविवाह, लज्जा-प्रथा आदि सभी सुप्रथाएँ हिन्दू-धर्म की श्रेष्टता का ही प्रतिपादन कर रही हैं। हमारे देश में सात-सात वर्ष की बालिकाएँ तक विधवा होकर कठोर ब्रह्मचर्य-व्रत का साधन कर रही हैं। मै आप लोगो से पूछता हूँ कि पृथ्वी पर कौन सा ऐसा देश है; कौन सी ऐसी जाति है, जहाँ सात वर्ष की बालिकाएँ तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करती हों?

"आप लोगों को इस श्रेष्ठ हिन्दू-धर्म के प्रतिपालनार्थ सियार, कुत्तो अथवा यूरोपियन लोगों की तरह मार-काट और सिर-फुड़ौवल आदि न करना पड़ेगा। आप लोग बेखटके अपने-अपने घरों में लम्बी तान कर सो सकेंगे और बहुत आसानी से मुक्ति लाभ करने में समर्थ होंगे। हम लोगो के पिता-पितामहों के पुण्य के फल से हम लोगों के वर्तमान सन्तति की मुक्ति का समय क्रमशः निकटतर आता जा रहा है। अब हिन्दुओं को और अधिक समय तक इस अनित्य संसार की यन्त्रणा भोगना न पड़ेगा। बाल-विवाह हम लोगों की मुक्ति में प्रधान सहायक है। विश्वास रखिए, आप लोग चालीस वर्ष की अवस्था होते न होते अवश्य मुक्ति-लाभ कर लीजिएगा। आज मैं और कुछ नहीं कहना चाहता। आप लोग हिन्दू-धर्म-रक्षिणी

सभा का खर्च चलाने के लिए अपने सामर्थ्य के अनुसार जी खोल कर आर्थिक सहायता प्रदान करके अपने पूर्वजों का मुँह, अपने देश का मुँह और आर्य-जाति का मुँह उज्ज्वल करें। ओ३म् शिवम्!"

श्रीरामप्रसन्न की वक्तृता समाप्त होने पर सभा भङ्ग हुई। प्राचीन विचार के हिन्दू लोग भरपेट उनकी प्रशंसा करने लगे। इस लम्बी-चौड़ी वक्तृता से हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता अतर्क्य युक्तियों द्वारा प्रतिपादित हो गई।



तेईसवाँ परिच्छेद

क्या ईश्वर ने हमें त्याग दिया है ?



सार के भोगों में आसक्त और माया में लिप्त मनुष्य स्वभाव से ही कायर होते हैं; विलास और आमोद उनके प्राणों को प्रफुल्लित करते हैं, युद्ध और विप्लव उनके हृदय में त्रास उत्पन्न करते हैं। ऐसे ही लोगों का विचार है कि संग्राम और सङ्घर्ष से संसार का अमङ्गल होता है। किन्तु वास्तव में क्रान्ति और विद्रोह से संसार का नैतिक वायुमण्डल शुद्ध होता है। विप्लव सभ्यता रूपी रथ का सारथी और संग्राम उसका घोड़ा है। अनेक प्रकार के सामाजिक दूषण एवं विविध कुत्सित भाव जब जातीय जीवन में घुस कर अशान्ति का बीज बो देते हैं; यह बीज जब बढ़ते-बढ़ते समाज-शरीर को रोगी, दुर्बल पङ्गु बना देता है; जब समाज का नैतिक वायुमण्डल विषाक्त

होकर मानव-जाति की उन्नति का द्वार अवरुद्ध कर देता है, तब जगत्पिता करुणामय भगवान् की असीम अनुकम्पा से विप्लव का झञ्झावात क्रान्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित करता है और समाज का पाप और कलुष उसकी पावन शिखा में पड़ कर भस्म हो जाते हैं; मनुष्य के जीवन में नवीन जाग्रति और पवित्र भावों का सञ्चार हो जाता है। इसलिए युद्ध और विप्लव कभी अमङ्गल के कारण नहीं हो सकते। अखण्ड ईश्वरीय नियमों के अनुसार ही पापी-समाज में क्रान्ति अपना संहारकारी स्वरूप प्रकाशित कर मनुष्य के जीवन को शुद्ध और परिष्कृत बना देती है। इसीलिए युद्ध में जय और पराजय सदा ईश्वर की इच्छा के अधीन होते हैं। युद्ध में विजयी होना यदि योद्धा के बल और वीरत्व, कला और कौशल पर निर्भर रहता तो त्रिभुवन-विजयी भीष्म और धनुर्विद्या के अद्वितीय आचार्य द्रोण वीरवर अर्जुन के हाथों क्यों पराजित होते? क्या आर्थर वेलेजली कभी जगद्विजयी महावीर नेपोलियन को हरा सकता था? क्या केवल तीन सौ सिपाहियों के बल पर क्लाइव बङ्गाल के नवाब सिराजुद्दौला को हरा कर समस्त बङ्गाल का अधीश्वर हो सकता था? जब वीर के पक्ष में ईश्वर का न्याय और धर्म की शक्ति होती है, तो विजय प्राप्त करते कुछ विलम्ब नहीं लगता, किन्तु संग्राम का उद्देश्य जब मनुष्य-जाति को स्वतन्त्रता से वञ्चित और उसके अधिकारों

पर कुठारघात करना होता है तो सब प्रकार के रण-कौशल और उत्कृष्ट अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं।

* * *

२९ वीं जून की रात में सर हेनरी लॉरेन्स लखनऊ के रेज़िडेन्सी-भवन में बैठे हुए विचार कर रहे थे—"सिक्ख-सेना सहित कुल मिला कर सात-आठ सौ सिपाही हैं, क्या उतने सिपाही मिलकर चिनहात में विद्रोहियों को नहीं हरा सकेंगे। अवश्य हरा सकेंगे? विद्रोहियों की संख्या ही कितनी होगी? दो हज़ार न सही, तीन हज़ार, और क्या? लॉर्ड क्लाइव ने केवल तीन सौ सिपाहियों को लेकर सिराज की विशाल सेना को पराजित कर दिया था! × × × करनल आर्थर वेलज़्ली ने आसाई के युद्ध में सारी महाराष्ट्र सेना को एक साथ हराया था। लॉर्ड लेक ने मुट्ठी भर सिपाहियों की सहायता से एकचश्मोदौला* के अभिमान को पददलित कर दिया था × × × हम लोग विद्रोहियों का दमन करने में अवश्य ही सफल होंगे।"

इस प्रकार सोचते-विचारते उन्हें नींद आ गई। उन्होंने निद्रितावस्था में योगिराज को गेरुआ वस्त्र पहने हुए अपने सामने खड़े देखा। योगिराज के पीछे असंख्य भारतीय नर-नारी खड़े हुए आर्त्तनाद कर रहे थे। उनके करुण क्रन्दन से

---

* यशवन्तराव होलकर को अंग्रेज़ लोग एकचश्मोदौला कहा करते थे।

पृथ्वी और आकाश काँप रहा था। उनकी ओर उँगली से इशारा करते हुए योगिराज बोले—"Sir Henry, they speak in hunger for bread, not in thirst for revenge."—"ये लोग क्षुधा से पीड़ित होकर अन्न के लिए चिल्ला रहे हैं, प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर, प्रतिकार के लिए नहीं।"

सर हेनरी स्वप्नावस्था में ही योगिराज के प्रश्न के उत्तर देने की चेष्टा करने लगे, किन्तु जैसा स्वप्न में प्रायः हुआ करता है, उनके मुँह से शब्द नही निकलते थे। कुछ काल के पश्चात् जब उनकी नींद खुली तो वहाँ न योगिराज थे और न असंख्य नर-नारियों की भीड़। वह अपने उसी एकान्त शयनागार में पड़े हुए थे। योगिराज के साथ पहले दिन जो बातें हुई थीं वे उन्हें एक-एक करके याद आने लगी। बाइबल की बात याद आते ही वह अकस्मात् बोल उठे—"Hath God forsaken us"—"क्या ईश्वर ने हम लोगो को त्याग दिया है?"

उस रात फिर सर हेनरी को नींद नही आई। उनके मन मे बार-बार यही प्रश्न उठता रहा—"Hath God forsaken us?"—"क्या ईश्वर ने हम लोगों को त्याग दिया है?" धीरे-धीरे रात्रि का अवसान हुआ, मरीचिमाली के उदित होते ही मछली-भवन और लोहे के पुल के सरकारी सैन्य एकत्र हुए। स्वयं सर हेनरी लॉरेन्स सैनिकों

के नेता बने और उन्हें चिनहात की ओर ले चले। पहर दिन चढ़ते-चढ़ते वे लोग कुकरेइल पहुँच गए और वहाँ कुछ देर तक विश्राम किया। अङ्गरेजी सेना के इस्माइलगञ्ज तक पहुँचते-पहुँचते विद्रोहियों ने उन्हे आ घेरा। थोड़ी ही देर में अङ्गरेजी सेना ने अपने को दाहिने और बाएँ दोनों ओर से विद्रोहियों द्वारा घिरा हुआ पाया। आध घण्टे भी लड़ाई न हुई थी कि अङ्गरेजी सेना के पाँव उखड़ गए। सर हेनरी के बहुत से सिपाही हताहत हुए। कर्नल केस विद्रोहियों के गोले की चोट खाकर घोड़े की पीठ पर से पृथ्वी पर गिर पड़े। एक गोली कप्तान जेम्स के जङ्घे को चीरती हुई पार निकल गई। देखते-देखते अङ्गरेज़ी सेना के लगभग डेढ़ सौ सिपाही धराशायी हो गए। सर हेनरी लॉरेन्स अब तक अङ्गरेजी सेना को उत्साहित कर रहे थे। किन्तु अब अङ्गरेजी सेना में युद्ध-क्षेत्र में ठहरने की हिम्मत नहीं रह गई थी। अनन्योपाय होकर सर हेनरी ने अपनी सेना को भाग कर आत्म-रक्षा करने का आदेश दिया। घायल सिपाहियों को ढोने के लिए जो वाहक नियुक्त हुए थे, वे पहले ही भाग खड़े हुए थे। युद्ध-भूमि में आहत होकर छटपटाते हुए सिपाहियों की खोज-खबर लेने वाला कोई न रह गया। उधर अङ्गरेजी सेना जब भागी जा रही थी, तब पीछे से विद्रोही सिपाहियों ने गोलाबारी कर उनमें से बहुतों को भूतलशायी कर दिया। यह दुरवस्था देख कर सर हेनरी लॉरेन्स हाथ उठा

कर चिल्लाने लगे—"My God, My God! And I brought them to this."—"हे परमेश्वर, हे भगवन्, मैंने इनकी यह दुर्दशा कराई।"

इस प्रकार करुणापूर्ण स्वर में वह अपने भागते हुए सैनिकों की प्राण-रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने लगे। थोड़ी ही देर मे उनके अधिकांश सैनिक भाग कर सुरक्षित स्थान में पहुँच गए। जिस विकट परिस्थिति मे वे लोग फँस गए थे, उससे एक आदमी के भी जीवित बच सकने की आशा न थी। धूल से भरे हुए सैनिक सीधे लखनऊ की ओर भागे। रास्ते के आस-पास के गाँवों की स्त्रियाँ उनकी वह दुर्दशा देख कर अपने घरो के द्वार पर आकर उन्हे पानी पिला जाती थीं।

उधर कर्नल केस आदि कई अङ्गरेज़ सेनापति घायल होकर रणक्षेत्र में कराह रहे थे। उन्हें लखनऊ ले जाने के लिए कप्तान बसानो (Captain Bassano) ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वाहकों के पहले ही भाग जाने के कारण उनकी समझ में नहीं आता था कि इन आहत सैनिको की प्राण-रक्षा के लिए क्या करें। जब उन लोगो ने देखा कि अब कोई उपाय नहीं है तो कर्नल केस ने अपने जीवन की सारी चिन्ता छोड़ कर कप्तान बसानो से कहा—मेरे मृतप्राय शरीर की रक्षा करने से क्या लाभ? जीवित सैनिकों के साथ भाग कर अपने जीवन की रक्षा करो।

कप्तान बसानो का भी बायाँ पैर गोली लगने से घायल हो गया था, किन्तु चलने की शक्ति अभी तक उनमें शेष थी। निरुपाय होकर वह भी कर्नल केस को छोड़ कर भाग गए।

इस प्रकार जिस समय सैनिक लोग भाग कर आत्म-रक्षा कर रहे थे, उस समय सर हेनरी लॉरेन्स धीरे-धीरे उनके पीछे जा रहे थे। दुःख और परिताप से उनका हृदय जल रहा था। उन्होंने एक सिपाही के द्वारा जल्दी से अपना कुशल-समाचार रेजिडेन्सी में भेजवाया। रेज़िडेन्सी-भवन का दालान आहत और पङ्गु सिपाहियों की रोग-शय्या से भर गया। सैनिक-विभाग के डॉक्टर किसी का हाथ, किसी का पैर काट-काट कर शरीर से अलग करने लगे।

सिपाहियों के रोने और कराहने के करुण-स्वर से सारा भवन गूँज उठा। उधर कर्नल केस आदि अन्यान्य सेना-पतियों के बाल-बच्चे अलग रो-रोकर वायुमण्डल को कम्पा-यमान् कर रहे थे।

रेज़िडेन्सी-भवन के भीतर का यह कोलाहल बन्द होने के पहले ही असंख्य विद्रोही सैनिक लखनऊ पहुँच कर रेज़ि-डेन्सी-भवन पर गोलेबारी करने लगे। अब सर हेनरी लॉरेन्स को चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता था।

मनुष्य जब तक चारों ओर से निराश नहीं हो जाता, तब तक उसे ईश्वर की याद नहीं आती। सब प्रकार से निरुपाय हो जाने पर ही मनुष्य ईश्वर के ईश्वरत्व को स्वीकार करता

है और उसकी शरण में जाता है। सर हेनरी लॉरेन्स को भी जब कोई उपाय न रहा, तो एकाग्र-चित्त और अटल विश्वास के साथ ईश्वर की प्रार्थना करने लगे। ३०वीं जून की सारी रात उन्होंने प्रार्थना करने में बिताई। किन्तु वह जभी प्रार्थना करने के लिए बैठते थे, तभी उन्हें बाइबल की वह बात याद आ जाती थी और वह अपने मन से पूछने लगते थे—"Hath God forsaken us."—"क्या ईश्वर ने हम लोगों को त्याग दिया है?"

मन में बार-बार इस विचार के उठने पर वह प्रार्थना करने लगे—"हे परमेश्वर, प्रभु यीशू मसीह के रक्त से समस्त संसार के पाप धुल गए हैं। मेरे रक्त से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पापों का क्षय हो! मैं आत्म-समर्पण करता हूँ। मेरे बलि-दान से भारत में अङ्गरेज़ी राज्य की नीव अटल हो जाय।"

धर्मपरायण सर हेनरी लॉरेन्स की वह प्रार्थना स्वीकृत हुई। उनके खून से अङ्गरेज़ी राज्य की जड़ अचल होगई।

पहली जुलाई से कानपुर के अङ्गरेज़ों की भाँति लखनऊ के अङ्गरेज भी पिञ्जरबद्ध पक्षी की नाईं रेजिडेन्सी-भवन में घिर गए। मच्छी-भवन के अङ्गरेज़ों ने रेज़िडेन्सी मे शरण ली। अब इन अङ्गरेज़ों के लिए किसी ओर से भी बाहर निकलना असम्भव हो गया। चौदह-पन्द्रह हज़ार विद्रोही सेना चारों ओर से रेजिडेन्सी को घेर कर अङ्गरेज़ों पर गोले बरसाने लगी। विद्रोहियो ने नवाब वाजिदअली शाह

की एक उपपत्नी के गर्भजात १२ वर्ष के बालक को अवध का नवाब घोषित किया।

२री जुलाई को प्रातःकाल आठ बजे सर हेनरी लॉरेन्स शय्या पर बैठे हुए थे। कप्तान विल्सन उनके पास बैठे हुए कुछ कागज़ात पढ़ रहे थे। इतने में अकस्मात् विद्रोहियों का एक गोला घर की दीवार को भेदता हुआ सर हेनरी लॉरेन्स की जाँघ पर आ गिरा। कई अङ्गरेज़ों ने मिल कर झटपट उन्हें डॉक्टर फेरर के घर पर पहुँचाया। उनका शरीर पहले से ही रुग्ण था, इस चोट के कारण उनकी अवस्था और भी खराब हो गई। डॉक्टर फेरर के सिर पर चिन्ता का पहाड़ टूट पड़ा। उनकी समझ में न आया, क्या करें। सर हेनरी लॉरेन्स की दुर्बल दशा देख कर उनकी जाँघ काटने की डॉक्टर को हिम्मत न हुई।

इधर सर हेनरी लॉरेन्स के आहत होने का समाचार सुन कर रेज़िडेन्सी के भीतर रहने वाले सभी अङ्गरेज उन्हें देखने के लिए डॉक्टर फेरर के घर की ओर दौड़ पड़े। मौक़ा देख कर विद्रोहियों ने भी डॉक्टर फेरर के घर पर गोलेबारी आरम्भ कर दी।

४थी जुलाई को सर हेनरी लॉरेन्स ने सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं। उनके उज्ज्वल बलिदान से अङ्गरेजी राज्य की नींव पक्की हो गई। इसके पहले वह अस्थायी रूप से गवर्नर-जनरल नियुक्त हो चुके थे, किन्तु स्वदेश-सेवा के पवित्र

उद्देश्य से इस महात्मा ने गवर्नर-जनरल के पद को तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया। उनके आदेशानुसार उनके स्मृति-स्तम्भ पर लिखा हुआ है—"Here lies Henry Lawrence who tried to do her duty."

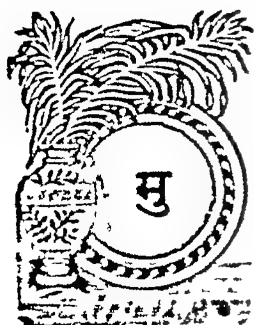




धर्मवीर

I want a hero, an uncommon want.
When every year and month sends forth a new one
Till, after cloying the gazettes with cant.
The age discovers he is not the true one.

—*Byron.*



झे एक वीर की खोज है। जब हम देखते हैं कि प्रति वर्ष और प्रति मास नए-नए वीरों का उदय हो रहा है, तो यह खोज असाधारण प्रतीत होती है। किन्तु वास्तव में यह खोज बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि उन वीरों की अशक्ति के असंख्य समाचार सुन कर समय-प्रवाह यह घोषित कर देता है कि वे सच्चे वीर नहीं हैं।

—बायरन

पहली जुलाई से लखनऊ के निवासी शहर छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। नगर में सर्वत्र कोलाहल मच गया। अविनाश बाबू आदि बङ्गाली कर्मचारी बेकार हो गए थे। रेज़िडेन्सी का द्वार सेवक और शत्रु दोनों के लिए समान रूप से बन्द था। अन्त में हार मान कर अविनाश ने लखनऊ छोड़ काशी चले जाने का निश्चय किया। योगिराज को दूसरी जुलाई तक अविनाश बाबू ने लखनऊ में रोक रक्खा था, किन्तु इन्दौर जाने के लिए योगिराज का जी व्याकुल हो रहा था। अविनाश बाबू योगिराज से काशी चलने का आग्रह करने लगे। उधर योगिराज ने झाँसी के विद्रोह का समाचार जब से सुना है, तब से वह एक पल भी चैन से नहीं बैठ सके। अविनाश के बहुत हठ करने पर भी योगिराज काशी जाने के लिए तैयार न हुए।

दूसरी जुलाई को अविनाश और योगिराज घूमते-घामते श्यामलाल बाबू के घर पर जा निकले। घर के बरामदे में पैर रखते ही भीतर से श्यामलाल बाबू के गर्जन-तर्जन का शब्द सुनाई पड़ा। योगिराज ने उद्विग्न होकर अविनाश बाबू से कहा—"मै इस समय श्यामलाल बाबू से मुलाकात नहीं करूँगा। चलो, घर लौट चलें।" किन्तु श्यामलाल बाबू पहले ही अपने नौकर से अविनाश बाबू के आगमन का समाचार सुन चुके थे। वह तत्क्षण बाहर आकर बोले—"आओ अविनाश, आओ! तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं।

तुम लोगो ने न जाने कहाँ की बला हमारे गले मढ़ दी है। अब इस हिन्दू-धर्म-परिव्राजक का जो कुछ करना हो, करो। मैं तो थक गया। तुम सब लोग हिन्दू-सभा के मेम्बर हो। यह भार अकेले मेरे सिर पर क्यो? हिन्दू-सभा, ब्रह्म-सभा, ऐरे सभा, ग़ैरे सभा—दुनिया भर की सभाओ का तुम लोग मुझे घसीट कर सभापति बना देते हो और पीछे सारी विपत्ति मेरे सिर पड़ जाती है। तुम लोग बैठे मौज किया करते हो!"

अविनाश बाबू ने मुस्करा कर पूछा—आख़िर इतना ग़ुस्सा क्यो? बात क्या है?

"बात क्या है, मेरा सर है! मैं शपथ खाकर कहता हूँ—अब मैं अपने बाप के कहने से भी कभी किसी सभा का सभापति न बनूँगा।"

अविनाश बाबू श्यामलाल बाबू की भाव-भङ्गी देख कर हँसने लगे। श्यामलाल बाबू और भी अधिक जोर से गरज कर बोले—नहीं भाई, मुझे अपने बाप की सौगन्ध है, जो कभी किसी सभा के पास भी फटकूँ। इस समय सारे शहर के मेहतर भाग गए हैं, धोबियों का पता नहीं, नौकर ढूँढ़े नहीं मिलते। आज दिन भर खोजते-खोजते परेशान हो गया. लेकिन कहीं एक मेहतर न मिला। अब मैं कभी किसी परिव्राजक को अपने घर में नहीं ठहरने दूँगा।

"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझ सका। भला और

मेहतरों के साथ हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा का क्या सम्बन्ध ? बात क्या है, कुछ कहो भी तो।"

"बात क्या है ? तुम क्या जानते ही नहीं ? यह बात तो उस दिन वक्तृता के समय ही मालूम हो गई थी।"

योगिराज ने यह सुन कर मुस्करा दिया। उनको हँसते हुए देख कर श्यामलाल बाबू बोले—यह देखो, यह खुफिया-विभाग के आदमी है न ? सब बातें फौरन समझ गए। तुम सदा के मूर्ख हो, तुम्हारी समझ में अभी तक कुछ आया ही नहीं। बार-बार पूछ रहे हो—बात क्या है ?

अविनाश बाबू बोले—भाई, तुम्हारी बात मेरी समझ मे कुछ नहीं आती। साफ-साफ खोल कर क्यों नहीं कहते, क्या हुआ है ?

"हुआ क्या है ? हुआ है रामप्रसन्न का सिर, गोले की आवाज़ उनके लिए कड़ा जुलाब हो गया है। सारा शरीर काँप रहा है, सीधे खड़े तक नहीं हो सकते ! × × × मेरा घर, बिछौना, काग़ज़-पत्र सब चौपट हो गया ! × × × कल रात भर रेज़िडेन्सी में तोप की ढुरुम-ढुरुम की आवाज़ होती रही है। मैंने रखवाली करने के लिए सात-आठ आदमियों को बैठकखाने में सुला दिया था। लेकिन रामप्रसन्न की शैतानी से वहाँ कोई भी नहीं सो सका। जभी तोप या बन्दूक़ की आवाज़ होती थी, तभी उनकी धोती बिगड़ जाती थी। रात को दो बजे मेरा नौकर घबराया हुआ मेरे पास

आकर बोला—रामप्रसन्न बाबू को कॉलरा होगया है। मैं झटपट नीचे बैठकखाने में गया। वहाँ पहुँच कर देखता हूँ कि कॉलरा-ओलरा कुछ भी नहीं, तोप की आवाज़ सुनकर हज़रत बेहोश पड़े है! उनका कपड़ा-लत्ता, बिछौना, सब सना पड़ा है।"

अविनाश बाबू बोले—शर्म! अङ्गरेज़ों के सात-आठ बरस के बच्चे तक तोप की गरज से नहीं डरते और यह चालीस वर्ष का बुड्ढा तोप की आवाज़ सुन कर मूर्च्छित हो गया है! शर्म आनी चाहिए इस कायरता पर!।

"भाई, रामप्रसन्न के लिए लज्जा की कोई बात नहीं हो सकती। वह अब भी वीरता की बातें बघार रहा है! कल रात में जब मैं उसके कॉलरा होने की बात सुन कर उसके पास गया तो मेरे कुछ पूछने के पहले ही वह अपनी निर्भयता की शेखी हाँकने लगा—'क्या मैं अङ्गरेज़ों के तोप और गोलो से डरता हूँ? मैं आर्य-सन्तान हूँ, आर्यों के पास कौनसा अस्त्र नहीं था? उनके पास इनसे भी बढ़ कर भयानक अस्त्र-शस्त्र विद्यमान थे।' भाई, उस समय उसका वह नाटकीय वीरत्व देख कर मेरी हँसी रोके न रुकी। मैं तुम्हारी तरह ठठा कर हँस पड़ा। किन्तु भाई, मुझसे और सहन नहीं हो सकता। मैं रामप्रसन्न को एक पल भी और अपने घर में नहीं ठहरने दूँगा। अब तुम उन्हें अपने घर ले जाओ और उनकी सेवा-शुश्रूषा करो।"

श्यामलाल बाबू की बातें सुन कर अविनाश बाबू ने कहा—रामप्रसन्न है कहाँ ? चलो देखें तो उसकी अवस्था कैसी है ?

श्यामलाल बाबू, अविनाश बाबू और योगिराज—तीनों आदमी श्यामलाल बाबू के बैठकखाने के उत्तर ओर वाले कमरे की ओर चले। सारे कमरे में रामप्रसन्न अकेले पड़े हुए थे। इन तीनों आदमियों के कमरे में प्रवेश करते ही रेज़िडेन्सी की ओर से तोप के धड़ाके की आवाज़ हुई। उस समय की रामप्रसन्न की अवस्था का वर्णन नहीं हो सकता। शरीर थर-थर काँप रहा था। श्यामलाल बाबू से काँपती हुई आवाज़ में बोले—आओ भाई, ज़रा नज़दीक आओ। तुम साधु हो। तुम धन्य हो ! तुम्हारा प्रेमालिङ्गन कर मन की साध मिटा लूँ। तुमने लखनऊ में धर्म-सभा स्थापित करके हमारे पूर्वजों के—ऋषि-महर्षियों के धर्म को बचा लिया। तुम अपने बाप-दादो के धर्म के मूल में जल सिञ्चन कर रहे हो।

जिस समय श्रीरामप्रसन्न सेन श्यामलाल बाबू का गला पकड़े हाँफते हुए उपरोक्त बातें कर रहे थे, उस समय उनका मूत्र में सना हुआ मल चू-चूकर श्यामलाल बाबू के पैरों पर गिर रहा था। उधर रामप्रसन्न सेन श्यामलाल बाबू के गले से बुरी तरह चिपटे हुए थे। प्रेमालिङ्गन समझकर गला छोड़ते ही न थे, और भी ज़ोर से चिपटते जाते थे। जब

श्यामलाल बाबू ने इस प्रेम-पाश में अपने को मज़बूती से जकड़ा हुआ पाया तो झल्ला कर बोले—"रहने दो अपना प्रेमालिङ्गन। यह सब ढोंग मुझे अच्छा नहीं लगता।" किन्तु रामप्रसन्न सेन आसानी से कब छोड़ने वाले थे? गले को और भी ज़ोर से पकड़ते हुए हाँफते-हाँफते कहने लगे—"मैं—तुम्हें—तुम्हें कभी छोड़ सकता हूँ? तुम यदि मुझे पैरों से मारो तो भी मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। जगई-मधई ने महाप्रभु। चैतन्य के ऊपर पाद-प्रहार किया, किन्तु महाप्रभु ने उनका त्याग नहीं किया। मारना हो मारो। धर्म के लिए मैं प्राण दे सकता हूँ, किन्तु तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तुम हिन्दू-धर्म के रक्षक हो, मेरे हृदय का भक्ति-चन्दन और प्रेम-वारि ग्रहण करो।"

"हृदय का भक्ति-चन्दन और प्रेम-वारि" सुनते ही श्यामलाल बाबू ने उन्हें बड़े ज़ोर से ढकेल कर कहा—रहने दो, अपना भक्ति-चन्दन और प्रेम-वारि। तुमने कल सारी रात भक्ति-चन्दन और प्रेम-वारि की वर्षा कर के मेरा घर, दरवाजे, बिछौना आदि सब नष्ट कर दिया है। अब क्या मेरे शरीर में भी भक्ति-चन्दन और प्रेम-वारि पोतना चाहते हो? तुम्हारे कपड़ों की दुर्गन्धि में मैं अब ज़्यादा देर तक यहाँ नहीं ठहर सकता।"

श्यामलाल बाबू के इतना कहने पर अविनाश बाबू उच्च स्वर से हँसते हुए बोले—बधाई है! बधाई है!! चन्दन

और वारि दोनों तुम्हारे ही भाग्य में थे। हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के सभापति होकर तुम सब प्रकार कृतार्थ हो गए, जीवन सफल कर लिया।

श्यामलाल बाबू ने उत्तर दिया—भाई, मै अकेले ही क्यों? यह भक्ति-चन्दन और प्रेम-वारि हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के सभी मेम्बरों को बाँट कर लेना पड़ेगा।

भक्ति-चन्दन और प्रेम-वारि की बात लेकर इन लोगो में बहुत देर तक हँसी-दिल्लगी होती रही। इसके बाद अविनाश बाबू और योगिराज श्यामलाल बाबू से विदा ग्रहण कर अपने घर की ओर चले। कुछ दूर आगे बढ़ने पर अविनाश ने योगिराज से कहा—श्यामलाल भी राम-प्रसन्न की ही भाँति पक्का धूर्त है। हम लोगो में से किसी ने भी उससे सभापति बनने के लिए अनुरोध नहीं किया। जब कभी कोई सभा स्थापित करने का प्रस्ताव आता है, तो बिना पूछे ही वह स्वयं सभापतित्व के लिए उम्मेदवार बन बैठता है। कोशिशें करके सभापति बनता है, और इस समय कह रहा है कि हम लोगो ने ही उसे धर-बाँध कर सभापति बना दिया है। उसकी प्रत्येक बात ढोंग और मक्कारी से भरी होती है।

योगिराज बोले—इस ढोंग और मक्कारी के लिए अकेले श्यामलाल और रामप्रसन्न दोषी नहीं हैं। समस्त हिन्दू-समाज ही ढोंग और मक्कारी का घर बन गया है। यह धूर्तता

और मक्कारी भारतवर्ष की वर्त्तमान राजनीतिक और आध्यात्मिक अधःपतन का अवश्यम्भावी फल है।

रास्ते भर इसी प्रकार की बातें करते हुए अविनाश बाबू और योगिराज घर पहुँचे। भोजनादि से निवृत्त होकर अविनाश बाबू काशी जाने के लिए प्रस्तुत हुए।

योगिराज पहले से ही झाँसी जाने के लिए तैयार बैठे थे। उनके दिमाग़ में यह विचार चक्कर लगा रहा था कि अविनाश से शायद जन्म भर के लिए विदा होना पड़ेगा। वह चुपचाप बैठ कर यही सोच रहे थे कि अविनाश ने उन्हें पुकार कर कहा—भाई, इस जन्म में शायद फिर तुमसे मिलना न हो सकेगा।

योगिराज बोले—इस विद्रोह के बाद एक बार बङ्गाल की ओर आने का विचार है। वहाँ यदि सुविधा मिली तो जातीय उन्नति करने के उद्देश्य से कुछ दिन रहूँगा।

योगिराज की बात अभी समाप्त भी न होने पाई थी कि गेरुआ वस्त्रधारी एक कृष्णकाय पुरुष अकस्मात् उन लोगों के पास आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही अविनाश बाबू बोले—आइए संन्यासी जी महाराज, आइए! आपका शरीर तो अच्छा है?

नवागत व्यक्ति बोला—महाशय, शरीर अच्छा है या नहीं, इसकी ओर मैं कभी आँख उठा कर भी नहीं देखता। इस अनित्य शरीर के रहने न रहने में क्या लाभ-हानि?

हम लोगों के पूर्व-पुरुषों का परम पवित्र सनातनधर्म विलोप-प्राय है। धर्म हम लोगों की पैतृक सम्पत्ति है; आज यदि यह धर्म अग्निकुण्ड में पड़ जायगा तो मेरे पिता के निष्कलङ्क कुल पर कलङ्क का काला धब्बा लग जायगा। इसी से मैं धर्म की रक्षा के लिए व्यस्त होकर सर्वत्र भ्रमण कर रहा हूँ। पवित्र हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए मैं अग्नि-कुण्ड में कूद सकता हूँ, पर्वत और समुद्र को लाँघ सकता हूँ। अङ्गरेजों के तोप और बन्दूक़ों के सामने अपनी छाती खोल कर खड़ा हो सकता हूँ। मैं क्या अङ्गरेज़ो के गोले-गोली से डरता हूँ।

"क्या मैं अङ्गरेज़ों की गोली से डरता हूँ ?" नवागत व्यक्ति के मुँह से यह वाक्य सुनते ही अविनाश और योगि-राज अपना-अपना मुँह कपड़े से ढँक कर हँसने लगे; किन्तु नवागन्तुक व्यक्ति की बात अभी समाप्त नहीं हुई थी। वह और भी कहने लगा—"हम लोग आर्य-सन्तान हैं। हम लोगों का सभी कुछ चला गया। राज्य गया, धन गया, मान गया और सम्मान गया। यदि कुछ नहीं गया तो वह है हम लोगों का धार्मिक अन्तःकरण—हम लोगों का धर्म के प्रति आदर-भाव। इसे हम लोग किसी भी प्रकार नहीं छोड़ सकते। वर्षा-ऋतु में जब तालाब में जल बढ़ता है, तब उसके साथ-साथ कमल के मृणाल की भी वृद्धि होती है, किन्तु ग्रीष्म-काल में जब सूर्य के प्रचण्ड उत्ताप से जल कम होने लगता है, जब जल की सतह नीचता को प्राप्त होने लगती है, तब क्या

उसके साथ-साथ मृणाल-दण्ड भी नीचे की ओर झुकता है ? जो एक समय बड़ा होगया था, वह क्या पुनः छोटा हो सकता है ? वह सूखकर नष्ट हो जायगा, वह मृत्यु को स्वीकार कर लेगा, किन्तु वह निम्नगामी किसी प्रकार हो नहीं सकता। इसी से मैं कहता हूँ, हम लोग मर जायँगे, यह अभीष्ट है। किन्तु धर्म के प्रति अपने श्रद्धाभाव को हम किसी भी प्रकार कम नहीं होने देंगे।"

नवागन्तुक को इस प्रकार लगातार बोलते देख कर अविनाश ने अङ्गरेजी मे योगिराज से कहा—" What is the matter with this fool? He is delivering another lecture "—"इस मूर्ख को क्या होगया है ? यह तो एक दूसरी वक्तृता देने लगा"—अविनाश बाबू को पहले से ही मालूम था कि नवागन्तुक महाशय का अङ्गरेजी भाषा मे परिचय नहीं है। अतः वह योगिराज के साथ अङ्गरेजी में बातचीत करने लगे। उन लोगों को इस प्रकार एक अज्ञात भाषा मे बातचीत करते हुए देख कर नवागत व्यक्ति चुप हो गया। यहाँ पर नवागत व्यक्ति का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। उपरोक्त भाषण पढ़ कर ही पाठकगण समझ गए होंगे कि आप कौन हैं। उनका ललित व्याख्यान समाप्त होने पर अविनाश बाबू ने उनसे पूछा—संन्यासी जी महाशय, आपको मुझसे कोई बात कहनी हो तो कह डालिए। मैं आज बहुत व्यस्त हूँ। सम्भवतः रात में ही काशी चला जाऊँगा।

परिव्राजक महोदय बोले—महाशय, बड़े ही शोकसन्तप्त हृदय से आपके पास आया हूँ। श्यामलाल बाबू लखनऊ से हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा को उठा देना चाहते है। वह कह रहे हैं कि मै लखनऊ मे हिंदू-धर्म-रक्षिणी सभा का नाम भी नहीं रहने दूँगा। ऐसी हालत मे यदि आप ही लोग इस सभा की रक्षा करें तो हम लोगो के धर्म की रक्षा और हमारे पूर्वजो का मुख उज्ज्वल हो सकता है।

अविनाश बोले—महाराज, हम लोगो की बात कौन सुनेगा? श्यामलाल बाबू इस स्थान के बङ्गालियों के एक प्रकार से अगुआ है। वही जब सभा के शत्रु हो जाएँगे तब फिर इसे जीवित रखना और किसी के लिए सम्भव न होगा।

अविनाश की बात सुन कर श्रीरामप्रसन्न सेन कुछ समय तक नीरव रहे। चार-पाँच मिनट के बाद फिर बोले—अन्ततः यदि आप लोग सभा को उठा ही देना चाहते है, तो मुझे एक सार्टिफिकेट लिख देना होगा। आप लखनऊ के डिप्टी-कमिश्नर के मुन्सरिम हैं, आपके सार्टिफिकेट से बड़ा उपकार हो सकेगा।

अविनाश बोले—क्या सार्टिफिकेट दूँ?

"अधिक कुछ नहीं, आप केवल यही लिख दीजिए कि "धर्मवीर (Myrtar) श्रीरामप्रसन्न सेन हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं। उनकी वक्तृता और उपदेश सुनने से हम लोगों का विशेष उपकार हुआ है।

आशा है, हिन्दू-धर्माभिमानी धनी-मानी लोग आर्थिक सहायता द्वारा हिन्दू-धर्म की रक्षा करने में त्रुटि न करेंगे।"

सार्टिफिकेट का यह मसविदा सुनते ही योगिराज 'हो-हो' करके हँसने लगे। अविनाश बाबू बोले—महाराज, मैं इस प्रकार का सार्टिफिकेट लिख कर नहीं दे सकता। मुझे क्षमा कीजिएगा। मैं आज रात मे ही लखनऊ छोड़ कर जाने वाला हूँ; आज बहुत व्यस्त हूँ। इसलिए इस समय आपसे विदा चाहता हूँ।

अविनाश बाबू ने श्रीरामप्रसन्न सेन को विदा किया और प्रातः होने के पहले ही योगिराज से भी विदा ग्रहण कर काशी की ओर चल पड़े। योगिराज लखनऊ को छोड़ इन्दौर की ओर चले। पहले उन्होंने झाँसी जाने का विचार किया था, किन्तु अब उन्होंने अपना विचार बदल दिया और पहले इन्दौर जाना ही स्थिर किया।

लखनऊ में दिनोंदिन विद्रोहियों की संख्या बढ़ने लगी। श्रीरामप्रसन्न सेन को काशी लौटने का मौका न मिला। तोप की आवाज उनकी मृत्यु का कारण बन गई। धर्मवीर श्रीरामप्रसन्न सेन ने थोड़े ही दिनों के बाद लखनऊ में अपनी मानव-लीला समाप्त की। मृत्यु के दस-बारह वर्ष पहले से उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत के धनी-मानी लोगों से चन्दा माँग-माँग कर तीन लाख रुपए इकट्ठे किए थे। उन्होंने वह सब रुपया मृत्यु के दो दिन पहले अपने एक साथी तथा

शिष्य श्रीतारकप्रसन्न की विधवा कन्या के नाम लिख दिया। इसके अतिरिक्त बलरामपुर के राजा से हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के व्यय के लिए उन्होंने जो पाँच हज़ार रुपया लिया था, वह श्यामलाल बाबू के पास अमानत के तौर पर जमा था। श्यामलाल बाबू ने इस रुपए को लखनऊ की हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के कोष में जमा कर दिया। किन्तु कुछ ही दिनों के बाद लखनऊ की हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा टूट गई। सभा के टूटने के समय सभा के कर्त्ता-धर्ता श्रीगोपाल बाबू के हाथों में उपर्युक्त रुपए को मिला कर कुल आठ-नौ हज़ार के लगभग रुपए जमा थे। सभ्य लोगों ने उसका कुछ अंश दीन-दुखी लोगों के सहायतार्थ दान कर दिया। किन्तु उसका अधिकांश सभ्य लोगों की डिनर-पार्टी में और शैम्पियन आदि में व्यय हुआ। श्रीरामप्रसन्न सेन की स्थापित की हुई बनारस की सभा, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, अब भी विद्यमान है।* उनके शिष्यों में से कोई श्रीकण्ठसेन, कोई श्रीकान्तसेन नाम रख कर आज तक उस सभा का कार्य चला रहे हैं। बनारस की हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा के अध्यक्षों के भाषण और उपदेश श्रीरामप्रसन्न सेन की वक्तृता और उपदेश के

* यह पुस्तक आज से ४० वर्ष पहले लिखी गई थी। उस समय सम्भव है कि काशी में कोई हिन्दू-धर्म-रक्षिणी सभा रही हो। किन्तु आज तो उसका स्थान भारत-धर्म-महामण्डल ने ग्रहण कर लिया है।

—अनुवादक

आशा है, हिन्दू-धर्माभिमानी धनी-मानी लोग आर्थिक सहायता द्वारा हिन्दू-धर्म की रक्षा करने में त्रुटि न करेंगे।"

सार्टिफिकेट का यह मसविदा सुनते ही योगिराज 'हो-हो' करके हँसने लगे। अविनाश बाबू बोले—महाराज, मैं इस प्रकार का सार्टिफिकेट लिख कर नहीं दे सकता। मुझे क्षमा कीजिएगा। मैं आज रात मे ही लखनऊ छोड़ कर जाने वाला हूँ; आज बहुत व्यस्त हूँ। इसलिए इस समय आपसे विदा चाहता हूँ।

अविनाश बाबू ने श्रीरामप्रसन्न सेन को बिदा किया और प्रातः होने के पहले ही योगिराज से भी विदा ग्रहण कर काशी की ओर चल पड़े। योगिराज लखनऊ को छोड़ इन्दौर की ओर चले। पहले उन्होंने झाँसी जाने का विचार किया था, किन्तु अब उन्होने अपना विचार बदल दिया और पहले इन्दौर जाना ही स्थिर किया।

लखनऊ में दिनोंदिन विद्रोहियों की संख्या बढ़ने लगी। श्रीरामप्रसन्न सेन को काशी लौटने का मौक़ा न मिला। तोप की आवाज़ उनकी मृत्यु का कारण बन गई। धर्मवीर श्रीरामप्रसन्न सेन ने थोड़े ही दिनों के बाद लखनऊ में अपनी मानव-लीला समाप्त की। मृत्यु के दस-बारह वर्ष पहले से उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत के धनी-मानी लोगों से चन्दा माँग-माँग कर तीन लाख रुपए इकट्ठे किए थे। उन्होंने वह सब रुपया मृत्यु के दो दिन पहले अपने एक साथी तथा

पच्चीसवाँ परिच्छेद

कृतघ्नता

Mercy is a word we have scratched out of our memories; Mercy to native is death to us

—*A Millitary Officer.*



या एक ऐसा शब्द है जिसे हम लोगो ने अपने स्मृति-पट से मिटा दिया है। देशी आदमी पर दया करना मृत्यु का आवाहन करना है।"

—एक सैनिक पदाधिकारी

स्वार्थपरता और आत्मरक्षा की वासनाएँ जब बहुत प्रबल हो उठती हैं तो मनुष्य को भ्रम मे डाल कर उसके विनाश के साधन एकत्र कर देती हैं।

सिपाही-विद्रोह के कारण अङ्गरेजो में स्वार्थपरता और आत्मरक्षा की वासनाएँ यहाँ तक प्रबल हो गई थीं कि वे

एकबारगी हिताहित-ज्ञान से शून्य हो गए थे। कौन मित्र है, कौन शत्रु है, इसे विचारने की भी शक्ति उन लोगों में नहीं रह गई थी। देशी लोगों की हत्या करने का अवसर पाकर वे दोषी-निर्दोष, शत्रु-मित्र, किसी को भी मारने से बाज़ नहीं आते थे। एक दिन अलीगढ़ के पास खुरजा शहर में एक मस्तक-हीन नर-कङ्काल दिखाई पड़ा। किसी ने कहा—यह मृत-शरीर अङ्गरेज़ का है। किसी ने कहा—यह विद्रोही सिपाही का शव है। किन्तु वह शव अङ्गरेज़ का था या हिन्दुस्तानी का, यह निश्चित रूप से पता नहीं लग सका। घटना शङ्कास्पद होने के कारण स्पेट साहब ने खुर्जा-निवासियों को प्राणदण्ड देना उचित नहीं समझा। उनके इस न्याय-निर्णय की सूचना जब अन्य अङ्गरेजों को मिली तो वे स्पेट साहब पर बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने भर्त्सनापूर्ण शब्दों में स्पेट साहब का तिरस्कार करते हुए कहा कि शङ्का की अवस्था में उन्हें अवश्य खुर्जा-निवासियों को प्राणदण्ड देना चाहिए था। खुर्जा-निवासियों को प्राणदण्ड न देकर उन्होंने अपने कर्त्तव्य का उल्लङ्घन किया है। विद्रोह के प्रारम्भ में जिन लोगों ने प्राणों पर खेल कर अङ्गरेजों की रक्षा की थी, तीन महीने के बाद अन्यान्य अङ्गरेजों ने उन्हीं को अपना शत्रु समझा और उनकी जान ली। नृशंस प्रतिशोध का वह भयानक दृश्य याद आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

कई लोग कानपुर के हत्याकाण्ड का उदाहरण देकर

अङ्गरेज़ों की इन निष्ठुरताओं का समर्थन करते हुए कहते हैं कि कानपुर की पाशविक हत्या के कारण अङ्गरेज़ सर्वथा विक्षिप्त हो गए थे। किन्तु वास्तव मे कानपुर के हत्याकाण्ड के पहले ही से और जिस समय उन्होंने हत्याकाण्ड का समाचार भी नहीं सुना था, उसी समय से समस्त भारतवासियों को अपना शत्रु समझने लग गए थे। भारतीय चरित्र के प्रति अङ्गरेज़ों के इसी अविश्वास के कारण विद्रोह इतने दिनों तक टिक सका था। अन्यथा वह प्रारम्भिक अवस्था में ही मृत-प्राय हो गया होता।

पहली जुलाई को होलकर के कण्टिनजेण्ट के कुछ सिपाहियों ने विद्रोही होकर इन्दौर की अङ्गरेज़ी रेज़िडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। इस विपत्ति में अङ्गरेज़ों की सहायता करने के लिए महाराज होलकर प्राणपण से चेष्टा कर रहे थे। किन्तु उन्हे उलटे लेने के देने पड़े। इन्दौर के रेजिडेण्ट डुराण्ड और उनके सहकारी फ़ेदरहेड तथा अन्यान्य अङ्गरेजो ने महाराज होलकर को विद्रोहियों का सहायक समझा। रेज़िडेन्सी पर विद्रोहियों के आक्रमण करते ही डुराण्ड और फ़ेदरहेड भाग कर बम्बई पहुँचे। इन्दौर से चार-पाँच कोस की दूरी पर मऊ नामक स्थान में अङ्गरेज़ी सेना रहती थी। डुराण्ड के भाग जाने का समाचार पाकर मऊ छावनी के सेनापति कप्तान हङ्गरफोर्ड ने होलकर से बिना कुछ पूछ-ताछ किए ही उनके राज्य में मार्शल-लॉ जारी कर दिया और

दोषी-निर्दोषी का बिना कुछ निर्णय किए ही होलकर की प्रजा को फाँसी पर लटकाना आरम्भ किया। उस समयकी अवस्था देखने से प्रतीत होता है कि यदि हङ्गरफोर्ड के रेजिमेण्ट मे काफी सिपाही होते तो वह महाराज होलकर पर भी आक्रमण करने से बाज न आते।

उधर रक्त के प्यासे हङ्गरफोर्ड की सेना जङ्गली जानवरो की भाँति महाराज होलकर की प्रजा का शिकार कर रही थी, इधर होलकर महाराज ने बहुत से अङ्गरेजो को आश्रय दिया और उनके कोप की रक्षा करने लगे। विद्रोही सिपाहियों ने महाराज के इस आचरण पर बहुत क्रोध प्रकट किया। चौथी जुलाई को महाराज की सारी सेना विद्रोही हो गई। महाराज की सेना के पदच्युत बख्शी सादात खाँ, मौलवी अब्दुलसमद और डुराण्ड साहब के अत्यन्त प्रियपात्र नवाब वारिस अहमद खाँ विद्रोहियो के नेता बने। विद्रोही लोग नगर में घुस कर नगरवासियों को लूटने लगे। महाराज होलकर अब तक अङ्गरेजी सेना के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु अङ्गरेजो ने ही जब उन्हें विद्रोही समझ लिया तब वह सब प्रकार से निरुपाय हो गए।

ऐसी असहाय अवस्था में विवश होकर यदि होलकर ने विद्रोहियो का साथ भी दिया होता तो भी उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। महाराज अल्पवयस्क होने पर भी बड़े साहसी थे। कुछ घुड़सवारों को लेकर वह एकदम

विद्रोहियों के पास चले गए। उन्हें समीप आते हुए देखकर विद्रोहियों में से एक ने चिल्ला कर कहा—"कायर होलकर, तुम्हारे जीवन को धिक्कार है।" दूसरे ने कहा—"डरपोक, यदि वास्तव में तुम मनुष्य हो तो इसी दम यशवन्तराव की तरह सेना लेकर दिल्ली की ओर चल पड़ो। अङ्गरेजों का राज्य तो गया!" तीसरे ने आवाज़ लगाई—"काफिर, फिरङ्गियों को अभी हम लोगो के हवाले कर दो, नही तो हम लोग तुम्हे तख्त से उतार कर छोड़ेगे।" चौथा बोल उठा—"तुम्हारे सलाहकार उम्मेदसिंह, रामचन्द्र राव और गणेश शास्त्री की गर्दन उड़ा देंगे। ये ही लोग तुम्हे बुरी सलाह दे रहे हैं।"

होलकर ने अपूर्व निर्भयता के साथ विद्रोहियो को उत्तर दिया—मैं प्राण रहते अङ्गरेजों को तुम्हे सौंप दूँगा, यह भूलकर भी तुम ख्याल न करना। मैं मृत्यु से खेलकर उनकी रक्षा करूँगा। उनके मर जाने पर उनका मृतक शरीर तक तुम लोगों को न छूने दूँगा।

यह कठोर उत्तर सुन कर विद्रोही और भी जल-भुन कर खाक हो गए। उनमे से एक ने फिर चिल्ला कर कहा—महाराष्ट्र-कुलाङ्गार! फिरङ्गियों का ग़ुलाम!!

तब तक दूसरा आदमी बोल उठा—अगर तुममें हिम्मत है तो अपने बाप-दादो के धर्म की रक्षा करो।

होलकर ने जिस तेजस्विनी वाणी में इनका उत्तर दिया

वह अङ्गरेज़ों के प्रति उनके सद्भाव की परिचायिका थी। "अरे पाखण्डियो, क्या मेरे पूर्वजो का धर्म स्त्रीहत्या और बालवध है? क्या तुम महापुरुष शिवाजी का आदेश भूल गए, जिनकी आज्ञा थी कि स्त्री, किसान और गाय अवध्य हैं।"

विद्रोहियों ने जब देखा कि महाराज होलकर किसी तरह भी हम लोगों का साथ नहीं दे सकते तो वे निराश होकर दिल्ली की ओर चल पड़े। उधर डुराण्ड साहब ने बम्बई पहुँच कर यह रिपोर्ट दी कि महाराज होलकर विद्रोही होगए हैं। इधर हङ्गरफोर्ड साहब होलकर के राज्य में तहलका मचाए हुए थे। होलकर की अवस्था विचित्र थी। उसके शत्रु सभी थे, किन्तु सहायक कोई नही!

इन घटनाओं के छः-सात दिन के बाद योगिराज इन्दौर पहुँचे। लखनऊ छोड़ने के बाद उन्होंने पहले झाँसी जाने का विचार किया था, किन्तु झाँसी के रास्ते से इन्दौर जाने मे सुविधा न होती, अतः भूपाल राज्य से होते हुए वह सात-आठ रोज मे सीधे इन्दौर पहुँचे। यहाँ होलकर महाराज के आचरण का वर्णन आदि से अन्त तक सुन कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु महाराज के प्रति अङ्गरेज़ों का व्यवहार देख कर उन्हें कष्ट भी हुआ। महाराज ने अङ्गरेज़ों की रक्षा करने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा था, किन्तु अङ्गरेज उन्हें विद्रोहियों का नेता समझ कर उनके राज्य में उपद्रव मचाए हुए थे।

होलकर के कुछ दुष्ट सलाहकार उन्हें अङ्गरेज़ों के उद्दण्ड व्यवहार की कहानियाँ सुना कर विद्रोहियो के साथ मिल जाने का उपदेश दे रहे थे। ज्योतिषी लोग अलग भविष्यवाणी कर रहे थे कि अङ्गरेज़ी राज्य का अन्त अब शीघ्र ही होने वाला है। नवयुवक महाराज को चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता था। क्या हित है और क्या अहित, इसका वह कुछ भी निश्चय नहीं कर सके। अन्त मे बहुत सोच-विचार के बाद उन्होने इङ्गलैण्ड में हैमिल्टन साहब को वर्त्तमान अवस्था का पूरा-पूरा विवरण लिख भेजा। हैमिल्टन साहब इन्दौर के स्थायी रेज़िडेण्ट थे। डुराण्ड साहब उनकी अनुपस्थिति में थोड़े समय के लिए रेजिडेण्ट मुक़र्रर हुए थे। हैमिल्टन साहब होलकर पर अपनी सन्तान की तरह प्रेम रखते थे। उन्हीं के यत्न से होलकर ने अङ्गरेज़ी भाषा का अभ्यास किया था। किन्तु रॉबर्ट हैमिल्टन साहब के इङ्गलैण्ड से वापस आने के पहले ही कप्तान हङ्गरफोर्ड ने होलकर के राज्य में भयङ्कर मार-काट मचाना आरम्भ कर दिया। उनका यह कुत्सित आचरण देख कर होलकर अपने मन मे सोचने लगे कि शास्त्रो की बात किसी तरह से मिथ्या नहीं। शास्त्रों में लिखा है कि मृत्यु-काल मे अथवा विपत्ति-काल में मनुष्य की बुद्धि विपरीत हो जाती है। यही कारण है कि अङ्गरेज़ो की बुद्धि इस विपत्ति-काल में ठिकाने नहीं है। इन बातो को सोच कर उनके मन में अङ्गरेज़ो का साथ छोड़

देने का विचार आता था; किन्तु जब वह हैमिल्टन साहब के शान्त स्वभाव और कपट-रहित व्यवहार को स्मरण करते तो उनके मन से ये विचार एकबारगी काफूर हो जाते थे। वस्तुतः रॉबर्ट हैमिल्टन के स्नेह-बन्धन ने ही होलकर को अङ्गरेज़ों के पक्ष में बाँध रक्खा था।

कभी-कभी होलकर महाराज प्रजा की असली अवस्था अपनी आँखों देखने के लिए छद्मवेश धारण कर आधी रात को नगर में घूमा करते थे। एक बार योगिराज आनन्दाश्रम स्वामी के इन्दौर पहुँचने के दो-एक दिन बाद रात में महाराज बनावटी वेश में इन्दौर शहर में घूम रहे थे। हठात् उनकी दृष्टि एक वृक्ष के नीचे गेरुआ वस्त्र पहने एक अत्यन्त सुन्दर युवक पर पड़ी। युवक वृक्ष के नीचे सोने का प्रबन्ध कर रहा था। उसे देखते ही महाराज का मन उसके प्रति आकर्षित होगया। वह सोचने लगे, ऐसा शोभाशाली युवक इतनी थोड़ी अवस्था मे संन्यासी हो जाय, इसमें अवश्य कोई रहस्य है। युवक के साथ दो बातें करने के लिए उनका मन अधीर हो उठा। उन्होंने उसके पास जाकर पूछा—संन्यासी महाराज, आप वृक्ष के नीचे क्यो सो रहे हैं? मुसाफिरों के ठहरने के लिए तो शहर मे बहुत सी धर्मशालाएँ हैं।

युवक बोला—गरमी के दिनों मे घर की अपेक्षा वृक्ष के नीचे अधिक आनन्द रहता है। मुझे वृक्ष के नीचे ही अधिक आराम मिलता है।

"रात को वृष्टि हुई तो क्या कीजिएगा ?"

"वृक्ष के नीचे अधिक जल पड़ने की सम्भावना नहीं। दो-चार बूँदें पड़ें भी तो क्या होता है ?"

"आपका आश्रम कहाँ है ?"

"जिस समय जहाँ जाकर ठहर गया, उतने समय के लिए वही स्थान मेरा आश्रम होता है। आज इस वृक्ष तले ही मेरा आश्रम है।"

"आप क्या मद्रासी हैं ? आपके पहनाव और बातचीत से तो जान पड़ता है, आप मद्रासी हैं।"

"मद्रास, बम्बई, मालवा, राजपूताना—सर्वत्र ही मेरा आना-जाना होता है।"

पाठकों को इस युवक संन्यासी का परिचय देने की आवश्यकता न होगी। यही पाठकों के पूर्व-परिचित योगि-राज है।

संन्यासी की अन्तिम बात सुन कर होलकर के मन में कुछ सन्देह पैदा हो गया। वह सोचने लगे—यह आदमी वास्तव में संन्यासी नहीं है। हो न हो यह अवश्य ही अङ्ग-रेजों का गुप्तचर है। छद्मवेश में इस बात का पता लगा रहा है कि विद्रोहियों के साथ हमारा सम्बन्ध है या नहीं। ऐसा सोच कर उन्होंने पूछा, आप अङ्गरेजी जानते हैं ?

"हाँ, बाल्यावस्था में थोड़ी सी अङ्गरेजी पढ़ी थी।"

होलकर अपने मन में फिर सोचने लगे, भला अङ्गरेजी

पढ़ा-लिखा आदमी संन्यासी कैसे हो सकता है ? यह आदमी ज़रूर अङ्गरेज़ों का गुप्तचर है। यह सोच कर उन्होंने फिर पूछा—इस स्थान पर आपके आने का कोई विशिष्ट उद्देश्य है या किसी दूसरे स्थान को जा रहे हैं ?

"इसी स्थान पर कुछ काम है।"

"क्या काम है ? किससे मिलना चाहते हैं ? यदि विशेष कोई बाधा न हो तो मुझसे कहिए। मैं भी इसी स्थान का रहने वाला हूँ। सम्भव है, मेरे द्वारा आपके कार्य मे कुछ सहायता पहुँच जाय। मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, मैं आपकी सहायता अवश्य करूँगा।"

"महाराज होलकर के दरबार में किसी राजकर्मचारी अथवा सरदार से आपका परिचय है ?"

"दरबार के सभी लोगो से मेरा परिचय है।"

"आप क्या राजा की सरकार में कोई काम करते हैं ?"

"जी नहीं।"

"तब आपके द्वारा मेरे काम में कोई सहायता नहीं पहुँच सकती।"

अब तो महाराज को इसमे कोई शङ्का नहीं रही कि यह आदमी अवश्य ही अङ्गरेज़ों का भेदिया है। वह मन ही मन सोचने लगे—मेरे दरबार के आदमियों को रिशवत देकर गुप्त बातों का पता लगाना चाहता है। मन में यह धारणा दृढ़ हो जाने पर वह बड़े आग्रह-पूर्वक बोले—मेरे

पिता राजा के दरबार में नौकर हैं। यदि स्वयं महाराज से आपका कुछ काम हो तो मैं आपकी सहायता अवश्य कर सकता हूँ।

योगिराज बोले—महाराज से एक बार मिलना चाहता हूँ। इसी उद्देश्य से यहाँ आना हुआ है। किन्तु राजा लोगो से मिलना कोई हँसी-खेल नहीं। खास कर विद्रोह के कारण सभी राजा लोग चौकन्ने होगए हैं। मैं यही सोच रहा हूँ कि किस उपाय से उनसे मुलाक़ात करूँ, किन्तु ठीक कुछ समझ में नहीं आता।

"आप किसलिए महाराज से मिलना चाहते हैं?"

"मैं किस उद्देश्य से महाराज से साक्षात् करना चाहता हूँ, यह मैं किसी को नही बता सकता।"

"आप जब तक अपना अभिप्राय न बतावेंगे तब तक महाराज से किसी तरह मुलाकात नहीं हो सकती। आप जिस मतलब से महाराज से मुलाकात करना चाहते है, पहले उसकी सूचना महाराज को दरबारी लोगों के द्वारा देनी पड़ेगी।"

"मैं अपना वह अभिप्राय किसी पर नहीं प्रगट करूँगा।"

"तब महाराज से मुलाकात नहीं हो सकेगी।"

"न होगी तो न हो। मैं महाराज से कुछ माँगने नहीं आया हूँ। उन्हीं के कल्याण के लिए उनसे एक बात कह देना चाहता था।"

"शायद आप ज्योतिषी हैं, विद्रोह के कारण बहुत से ज्योतिषी महाराज की मङ्गल-कामना के लिए उनसे अनेक बातें कर जाया करते हैं।"

"नहीं महाशय, मैं ज्योतिषी नही हूँ। महाराज के पास बहुत से धूर्त्त ज्योतिषी आते-जाते हैं, इसे मैं पहले ही सुन चुका हूँ।"

"वाह ! महाराज के पास अब तक इतने ज्योतिषी आ चुके हैं, वे क्या सब धूर्त्त थे ? क्या आपका यह विचार है कि उन्हें ज्योतिष विद्या का ज्ञान नहीं था ?"

"मैं समझता हूँ कि एक तो ज्योतिष-शास्त्र ही अधिकांश झूठा है। उस पर जब ज्योतिषी लोग उसे अपनी जीविका का साधन बना लेते हैं, तो अर्थ-लोभ में पड़ कर लोगों को प्रसन्न करने या उनके मनोरञ्जन के लिए बहुत सी झूठी और मनगढ़न्त बातें कहा करते हैं। इस व्यवहार को धूर्तता नहीं तो और क्या कहें ?"

"आप ज्योतिष-शास्त्र को झूठा समझते हैं ?"

"बहुत अंशों मे।"

"क्या इसके मूल में कुछ भी सत्य नहीं है ?"

"सत्य का कुछ अंश हो सकता है, किन्तु वर्तमान ज्योतिष केवल धूर्तता और फ़रेब है।"

"ज्योतिषी लोग कहते हैं कि इस बार अङ्गरेज़ी राज्य का विनाश अवश्यम्भावी है।"

"इन धूर्त्त ज्योतिषियों की सब बातें मिथ्या है। इस देश में जब तक एक भी अङ्गरेज़ जीवित रहेगा, तब तक अङ्गरेज़ी राज्य का लोप न होगा।"

संन्यासी की यह उक्ति सुन कर होलकर के मन मे उनके प्रति कुछ श्रद्धा का सञ्चार हो आया। किन्तु वह मन का भाव छिपा कर बोले—क्या आपका विश्वास है कि अङ्गरेज़ लोग इस विद्रोह से अपने राज्य की रक्षा कर सकेंगे ?

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान स्थिति मे अङ्गरेज़ों को कोई नही हरा सकता।"

"अङ्गरेज़ों में कौनसी ऐसी अपूर्व शक्ति है, जिससे उन्हे कोई नहीं हरा सकता ?"

"क्या बिना अपूर्व शक्ति के ही वह सात समुद्र पार इस देश पर इतने दिनो से राज्य कर रहे हैं ?"

"उन्होने अस्त्रबल के द्वारा एक सौ वर्ष तक राज्य किया, किन्तु अस्त्रबल से क्या चिरकाल तक राज्य किया जा सकता है। अब उनका समय आ गया है। इसीलिए उनका राज्य अब गया तब गया हो रहा है।"

"महाशय, अस्त्रबल से अङ्गरेज इस देश मे राज्य स्थापित करने में कभी समर्थ नही हुए हैं।" यह कह कर योगिराज झोली से एक बाइबिल निकाल कर बोले—इसी महास्त्र के बल से अङ्गरेजो ने इस देश मे राज्य प्राप्त किया है और इस समय इस महास्त्र का परित्याग करने के कारण ही वे

विपत्ति में पड़े हुए है। जिस समय वह पुनः इस अस्त्र से काम लेना शुरू करेंगे, उस समय उनका राज्य पहले की ही भाँति दृढ़ हो जायगा।

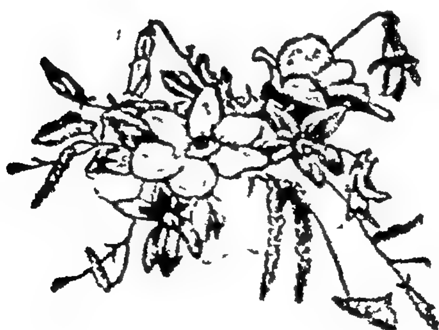
छद्मवेशी महाराज तुकोजी होलकर योगिराज को बाइबिल की इतनी प्रशंसा करते देख कर मन में यह सोचने लगे—"मालूम होता है यह आदमी मद्रासी ईसाई है। विद्रोहियों के भय से संन्यासियों का बाना धारण किए फिर रहा है।" इस प्रकार सोचकर वह बोले—महाशय, आपको डरने की कोई आवश्यकता नहीं, विद्रोही लोग इस स्थान से चले गए हैं। सैकड़ों देशी ईसाइयों और यूरेशियनों को महाराज ने आश्रय प्रदान किया है। यदि प्राण के भय से आपको महाराज के आश्रय की आवश्यकता हो तो कहिए, मैं आपकी प्राण-रक्षा का उपाय करवा दूँ।

"मैं ईसाई नहीं हूँ और न विद्रोहियों से डरता ही हूँ। महाराज से मुलाकात करने के अभिप्राय से यहाँ आया था। मुलाकात न हो सकेगी तो दो-चार दिन में चला जाऊँगा।"

होलकर मन में सोचने लगे—बहुत सम्भव है कि इस आदमी से साक्षात् करने पर इसके मुँह से कोई नई खबर सुनने में आवे। इसलिए इससे मुलाकात करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह बोले—महाशय, मैं अपने पिता से कह कर कल ९ बजे दिन में आपके साथ महाराज से मुलाकात करने का प्रबन्ध करा दूँगा। आप दिन में ९ बजे इसी स्थान

पर प्रतीक्षा कीजिएगा। महाराज का नौकर आकर आपको महल में ले जायगा।

योगिराज छद्मवेशी होलकर महाराज की बात सुन कर मन ही मन बड़े आनन्दित हुए। वह सोचने लगे—किसी न किसी उपाय से ईश्वर मेरी सदिच्छा अवश्य पूरी करेगा। इसके बाद महाराज अपने महल को चले गए। योगिराज वृक्ष तले रात गँवा कर ९ बजे दिन तक वहीं प्रतीक्षा करते रहे। ठीक नौ बजे राजमहल से एक नौकर आकर उन्हें महाराज होलकर के पास लिवा ले गया। महाराज के पास पहुँच कर वह एकदम स्तम्भित रह गए। उन्होंने देखा कि कल रात को जिसके साथ बातचीत की थी, वही महाराज तुकोजी राव होलकर हैं!



छब्बीसवाँ परिच्छेद

सन्देह-भञ्जन



सिपाही-विद्रोह के समय होलकर-दरबार में काशीनाथ राव होलकर, उम्मेद-सिह, दीवान रामचन्द्र राव भाऊ और बक्सी खुमानसिह—ये चार आदमी मुख्य कार्यकर्त्ता थे। ये चारों आदमी बड़े कार्य-कुशल और चतुर थे। इन्हीं के परामर्श से होलकर महाराज ने अङ्गरेजी रेज़िडेण्ट डुराण्ड साहब का अन्यायपूर्ण व्यवहार सह कर भी विद्रोहियों का साथ नहीं दिया। सिपाही-विद्रोह के बहुत पीछे तक डुराण्ड साहब और उनके सहकारी फेदर-हेड ने होलकर को बदनाम करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। किन्तु महाराज पर लगाए हुए सभी आक्षेप मिथ्या सिद्ध हुए।

* * *

पिछली रात को योगिराज से बात करने के समय छद्मवेशी महाराज उनका धार्मिक तेजोमय मुखमण्डल नहीं देख सके थे। उस समय उनके मुख की उज्ज्वल कान्ति के दर्शन मात्र से महाराज का मन मोहित हो गया। योगिराज के प्रति उनके मन में श्रद्धा का उद्रेक हो आया। जब योगिराज महाराज के निर्जन कक्ष में पहुँचे तो महाराज ने उनसे अपने मन की बात कहने का अनुरोध किया।

योगिराज अपना वास्तविक अभिप्राय प्रकट करने के पहले महाराज से अन्य विषयों पर बातचीत करने लगे। उन्होंने सोचा कि इधर-उधर की कुछ बातें करने से ही महाराज की विद्या-बुद्धि का पता लग जायगा। उनकी योग्यता की थाह लगा कर यदि उचित समझूँगा तो मन की बात उन्हें कह सुनाऊँगा। इस प्रकार सोच-विचार कर उन्होंने महाराज से जिज्ञासा की—महाराज, आप नारायण त्र्यम्बक शास्त्री को जानते हैं? मैंने महाराष्ट्र भर मे उनके समान उदार सज्जन नहीं देखा।

"हाँ, मैंने एक बार त्र्यम्बक शास्त्री का नाम मेजर मालकम के मुँह से सुना था, किन्तु उन्हे कभी देखा नहीं। आपने त्र्यम्बक शास्त्री की बात कैसे पूछी?"

"मैंने उनसे महाराष्ट्र लोगों के आचार-व्यवहार, स्वभाव-प्रकृति के सम्बन्ध मे बहुत सी बातें सुनी हैं।"

"क्या आप स्वयं महाराष्ट्र नहीं हैं?"

"नहीं, मैं बङ्गाली हूँ।"

"बातचीत से तो आप पूरे महाराष्ट्र जान पड़ते हैं।"

"हाँ, मैं बहुत दिनों तक महाराष्ट्र में रहा हूँ, इसी से यहाँ की भाषा सीख गया हूँ।"

"महाराष्ट्र में आप किस स्थान पर रहे हैं?"

"मैं झाँसी में बहुत दिनों तक नारायण त्र्यम्बक शास्त्री के मकान में रहता था।"

"क्या नारायण त्र्यम्बक शास्त्री झाँसी में हैं?"

"नहीं, इस समय वह ताँतिया टोपी के अनुरोध से बिठूर में निवास कर रहे हैं।"

ताँतिया टोपी और बिठूर का नाम सुन कर होलकर के मन मे यह आया कि हो न हो यह नाना का गुप्तचर है। किन्तु अपने मन का भाव छिपा कर बोले—नाना साहब तो पेशवा हो गए हैं। क्या अन्य महाराष्ट्र नरेशों ने उन्हें पेशवा स्वीकार कर लिया?

होलकर के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए योगिराज कहने लगे—नाना साहब की अनुचित महत्वाकांक्षा उसकी मृत्यु के लिए वाण प्रस्तुत कर रही है। नाना अङ्गरेजों को कभी हरा नहीं सकेगा; केवल अपनी जान से हाथ धो बैठेगा।

होलकर फिर कृत्रिम भाव धारण कर बोले—क्या नाना साहब ने बिना आगा-पीछा सोचे ही इस कठिन कार्य में हाथ डाल दिया है? और आप उनकी महत्वाकांक्षा को

निन्दा क्यों कर रहे हैं ? जिसका लक्ष्य ऊँचा नहीं, जिसके हृदय में उच्च अभिलाषाएँ लहरें नहीं मार रही हों, वह क्या संसार में कभी उच्चासन पर सुशोभित हो सकता है ?

योगिराज ने जब भली-भाँति देख लिया कि महाराज कृत्रिम भाव से बातें कर रहे है तो उन्हें विश्वास हो गया कि महाराज अन्य राजाओं की नाई निपट मूर्ख नहीं हैं। वह होलकर के अन्तिम प्रश्न के उत्तर में बोले—महाराज, नाना साहब में आगा-पीछा सोचने की शक्ति बिलकुल नहीं है। उन्होंने केवल धूर्त और फरेबी ज्योतिषियों की बातो पर विश्वास कर और अज़ीमुल्ला के बहकावे में पड़ कर ऐसे कठिन कार्य में हाथ डाला है। मैंने नारायण त्र्यम्बक शास्त्री के मुँह से सुना था कि ज्योतिष-शास्त्र और जन्मपत्री के फलाफल के सम्बन्ध में महाराष्ट्र लोगों में भयङ्कर अन्ध-विश्वास फैला हुआ है। कानपुर में अभी मैंने उस दिन सुना है, यह ठग ज्योतिषी आपको भी बहकाने की चेष्टा कर रहे हैं। इन ज्योतिषियों का भण्डाफोड़ करने के लिए ही म यहाँ आया हूँ। आप इन धूर्त्त पाखण्डियों की बात पर कभी विश्वास न कीजिएगा। आपने उनकी बातों पर विश्वास करके उनके अनुसार आचरण किया तो निश्चय जानिए, आपको पदच्युत होना पड़ेगा। अङ्गरेजों के हाथ में भगवान् ने भारत को इसीलिए सौंपा है कि उनके द्वारा भारतीय समाज में प्रचलित नाना प्रकार के कुसंस्कारों और अन्ध-

विश्वासों का उन्मूलन होगा। इन कुसंस्कारों और अन्ध-विश्वासों की जड़ खोदे बिना कोई अङ्गरेजों को भारत से कदापि नहीं निकाल सकता। छुआछूत, जात-पाँत और मत-मतान्तरों का मज़बूत क़िला टूटते ही अङ्गरेजो की शक्ति का भी अन्त हो जायगा। उस समय उनके विरुद्ध शस्त्र धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जायगी। समय आ जाने पर आप से आप बिना कुछ कहे-सुने उन्हें अपना रास्ता लेना पड़ेगा।

होलकर कुछ मुस्करा कर बोले—वे लोग बिना लड़ाई-झगड़ा किए कभी इस देश को न छोड़ेंगे।

"ठीक समय आ जाने पर बिना लड़ाई-झगड़ा किए ही उन्हें देश छोड़ देना पड़ेगा—वह आप से आप समझ जायँगे कि अब लड़ाई-झगड़े से कोई लाभ नहीं। किन्तु वर्त्तमान विद्रोह के द्वारा उनके राजच्युत होने की कोई सम्भावना नहीं। आप भ्रम में पड़ कर विद्रोहियों का साथ कभी न दीजिएगा। उनका साथ देने पर आप विपत्ति में फँस जायँगे।"

"विद्रोहियों का साथ देने की मेरा तनिक भी इच्छा नहीं और इस प्रान्त में रहने वाले अङ्गरेजों की प्राण-रक्षा का भी मैंने शक्ति भर प्रयत्न किया है। किन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि अङ्गरेजों ने मुझे विपत्तियों का सहायक समझ कर मेरे राज्य में घोर अन्धेर मचा रक्खा है।"

"स्वार्थपरता-जनित यह अविश्वास और मूर्खता ही अन्त में अङ्गरेज़ों के विनाश का मूल कारण होगी। ये लोग ज़रा भी यह नहीं समझ रहे हैं कि कौन इनका शत्रु है और कौन मित्र।"

योगिराज का अन्तिम वाक्य सुन कर होलकर बोले—मैं इस समय सब तरह से निरुपाय हो रहा हूँ। यदि अङ्गरेज़ लोग मुझे अपना शत्रु समझ कर मेरा अनिष्ट करने पर ही उतारू हो गए तो मुझे बाध्य होकर आत्मरक्षा के लिए उनसे युद्ध करना ही पड़ेगा।

योगिराज बोले—आपके सम्बन्ध में अङ्गरेज़ों का भ्रम बहुत जल्द दूर होगा। आप निश्चिन्त रहिए।

वार्तालाप समाप्त होने पर योगिराज होलकर से विदा हो, उसी समय मऊ की ओर चल पड़े। वहाँ कोर्ट-मार्शल स्थापित हुआ था। कप्तान हङ्गरफोर्ड और मेजर मर्डस्टोन कोर्ट-मार्शल के जज थे। अङ्गरेज लोग एक-एक आदमी को पकड़ कर लाते थे और तत्क्षण उन्हें प्राणदण्ड की आज्ञा होती थी। योगिराज के नगर में पैर रखते ही कई अङ्गरेज-सैनिकों ने उन्हे पकड़ कर हङ्गरफोर्ड के सामने उपस्थित किया। साहब ने उनसे कुछ पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं समझी। चटपट प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी। योगिराज उस समय सब तरह से निरुपाय हो गए। उधर गोरे सिपाही उन्हे ठेलठाल कर वध्यभूमि की ओर

ले जाने की चेष्टा करने लगे। उस समय योगिराज ने अपनी प्रत्युत्पन्नमति से काम लिया। वह सर हेनरी लॉरेन्स के हाथ का लिखा हुआ काग़ज़ कप्तान हङ्गरफोर्ड की देह पर फेंक कर ज़ोर से बोल उठे—"See what is written on it"—"देखो इस पर क्या लिखा है।"

हङ्गरफ़ोर्ड ने काग़ज़ को पढ़ कर देखा कि उस पर स्वयं सर हेनरी लॉरेन्स के हाथ का लिखा हुआ था—"आनन्दाश्रम स्वामी अङ्गरेज़ों के परम मित्र हैं।"

उक्त काग़ज़ को पढ़ते ही कप्तान हङ्गरफोर्ड ने सैनिकों को हाथ के इशारे से आदेश दिया कि आनन्दाश्रम स्वामी को लौटा लाओ। लौटते हुए योगिराज ने सैनिकों से पूछा—इस साहब का नाम क्या है?

सैनिकों ने जवाब दिया—कप्तान हङ्गरफोर्ड।

कप्तान हङ्गरफोर्ड के इस दुर्व्यवहार से योगिराज अत्यन्त क्रोधित होगए। उन्हें अपनी मृत्यु की कोई चिन्ता नहीं थी, किन्तु मऊ नगर के सैकड़ों निरीह प्राणियों की विना विचार हत्या होते हुए देख कर उनका क्रोध आग के समान भड़क उठा। वह कप्तान हङ्गरफोर्ड के सम्मुख पुनः उपस्थित किए जाने पर गुस्से से भर कर बोले—"Captain Hungerford, though extreme hunger has driven you from your native land and brought you here, please do not behave like a hungry wolf."—"कप्तान हङ्गरफोर्ड,

यद्यपि भूख की ज्वाला आपको आपकी जन्म-भूमि से घसीट कर यहाँ तक लाई है, तथापि भूखे भेड़ियो के जैसा आचरण न कीजिए।" योगिराज की तेजस्वी वाणी और गम्भीर मुखाकृति देख कर कप्तान साहब सिटपिटा से गए। हङ्गरफोर्ड जैसे अङ्गरेजों के हृदय में वीरभाव के सञ्चार होने की कभी सम्भावना नहीं। ऐसे लोग शत्रु को सामने देख कर भयभीत हो जाते हैं। सुतरां वह बहुत सज्जनतापूर्वक योगिराज से सम्भाषण करने लगे। योगिराज ने पहले उन्हे लखनऊ का सारा हाल कह सुनाया। बाद में जब होलकर के सम्बन्ध मे बात छिड़ी तो योगिराज ने कहा—"You have done great injustice to Holkar."—"आपने होलकर के साथ घोर अन्याय किया है।"

बहुत देर तक बातचीत करने के बाद हङ्गरफोर्ड को विश्वास होगया कि होलकर अङ्गरेजों के शत्रु नहीं, मित्र हैं। इसके बाद उन्होंने होलकर के राज्य मे फिर कोई गड़बड़ी नहीं मचाई। इस घटना के बाद हङ्गरफोर्ड साहब होलकर को अपना मित्र समझने लगे। अधिकांश अङ्गरेज धीरे-धीरे उनके सद्व्यवहार और उपकारों की प्रशंसा करने लगे। किन्तु डुराण्ड साहब अब भी उनको विद्रोही समझते थे। होलकर के राज्य में शान्ति स्थापित होने के बाद योगिराज झाँसी के लिए चल पड़े।



सत्ताईसवाँ परिच्छेद

सत्परामर्शदाता



सी का हत्याकाण्ड हुए एक मास से अधिक हो गया, किन्तु अभी तक झाँसी पर आक्रमण करने के लिए अङ्गरेज़ों ने अपनी सेना नहीं भेजी। उनके पास सेना थी ही कहाँ जो भेजते? अवध, पश्चिमोत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक ज़िलों के लोग विद्रोही हो गए थे। प्रत्येक ज़िले के लिए केवल एक-एक सौ सिपाही भेजे जाते तो भी अङ्गरेज़ों की सेना सब ज़िलों के लिए पूरी न पड़ती। सौभाग्य से बङ्गाल के लोगों ने विद्रोह नहीं किया था, जिससे भारत में अङ्गरेज़ों को पैर रखने के लिए जगह बाक़ी थी। यदि बङ्गालियों ने भी विद्रोह कर दिया होता, तो अङ्गरेज़ों की विपत्ति का पारावार न रहता।

इस समय अङ्गरेज लोग अपनी शक्ति से दिल्ली, लखनऊ और कानपुर, इन तीन स्थानों के पुनरुद्धार की चेष्टा कर रहे थे। वे लोग सोच रहे थे कि यदि दिल्ली पर शीघ्र क़ब्जा न किया गया तो उसके आस-पास के छोटे-मोटे सभी राजा बाग़ी हो जायँगे और उनके विद्रोह कर देने पर राज्य का उद्धार करना असम्भव हो जायगा।

पञ्जाब के चीफ कमिश्नर जॉन लॉरेन्स, लॉर्ड कैनिङ्ग के पास भारतवर्ष के सर्व-श्रेष्ठ सेनापति जनरल एन्सन को दिल्ली के पुनरुद्धार करने का आदेश देने के लिए बार-बार पत्र लिखने लगे। किन्तु थोड़ी सी सेना लेकर जनरल एन्सन को दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस न होता था। वह जॉन लॉरेन्स के प्रस्ताव से किसी भी तरह सहमत न हुए। अन्त में हार मान कर जॉन लॉरेन्स जनरल एन्सन को भारत मे अङ्गरेजी राज्य के इतिहास की वीरत्वपूर्ण कहानियाँ पत्रों में लिख कर भेजना आरम्भ किया। वह अपने प्रत्येक पत्र मे लिखते थे—क्या आप भारत में अङ्गरेजी सत्ता की स्थापना का इतिहास एक बारगी भूल गए हैं? लॉर्ड क्लाइव यदि केवल तीन सौ सैनिको के साथ रणक्षेत्र में अग्रसर न होते तो क्या हम लोग कभी भारतवर्ष मे राज्य स्थापित कर सकते? इत्यादि-इत्यादि।

जॉन लॉरेन्स के लेक्चरों से प्रभावान्वित हो, जनरल एन्सन भीतर से इच्छा न रहने पर भी, सेना लेकर दिल्ली की

ओर बढ़े, किन्तु दिल्ली पहुँचने के पहले ही वह परलोक सिधार गए। उनकी मृत्यु के बाद मेजर जनरल बरनार्ड के साथ में दिल्ली के उद्धार का भार दिया गया। किन्तु वह भी अभी तक दिल्ली पर अधिकार नहीं जमा सके थे। उधर लखनऊ में अलग "सहायता के लिए सेना भेजिए!" "सहायता के लिए सेना भेजिए!" की पुकार मची हुई थी। सैनिकों की संख्या थोड़ी होने के कारण किसी भी स्थान पर सेना भेजना सम्भव न था। मद्रास के प्रधान सेनापति सर पेट्रिक ग्रान्ट सम्पूर्ण भारत के सेनाध्यक्ष होकर कलकत्ता आए। इसके पहले ब्रिगेडियर जनरल नील (Brigadier General Neil) कानपुर के अङ्गरेजों की सहायता करने के लिए उत्तर-पश्चिम की ओर भेजे जा चुके थे। किन्तु दूसरे स्थानों का विद्रोह शान्त करने मे फँस जाने के कारण वह ठीक समय पर कानपुर नही पहुँच सके। तब कर्नल हैवलॉक कानपुर के लिए भेजे गए। झाँसी में अङ्गरेजी सेना भेजने के लिए अभी तक प्रस्ताव भी नहीं हुआ था।

झाँसी की रानी ने सिंहासन पर बैठते ही अङ्गरेजी सेना के आक्रमण की आशङ्का से कालपी में बहुत सी सेना इकट्ठी कर रक्खी थी। किन्तु जब एक मास से भी अधिक हो गया और अङ्गरेजों ने झाँसी पर आक्रमण नहीं किया, तब कालपी की सेना वापस बुला ली गई। रानी की सेना की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही थी। झाँसी में पूर्ण रूप से

शान्ति विराज रही थी। रानी को पहले यह आशङ्का हुई थी कि विद्रोह और अराजकता के कारण प्रजा आपस में ही लड़ने लगेगी और लूट-मार का बाजार गर्म हो जायगा। किन्तु सौभाग्य से वह आशङ्का पूर्णतया निर्मूल सिद्ध हुई। सारी प्रजा एक सूत्र में बँध कर प्राणपण से रानी के सिंहासन की रक्षा के लिए प्रयत्न कर रही थी। उनमे पारस्परिक युद्ध और अशान्ति का कोई चिह्न भी नहीं दिखाई पड़ा। झाँसी नगरी सहसा रामराज्य में परिवर्त्तित हो गई थी।

जुलाई का महीना प्रायः समाप्त होने को आया। सिंहासन पर बैठने के बाद रानी लक्ष्मीबाई और उनकी सौत गङ्गाबाई हर रोज़ सवेरे और तीसरे पहर को झाँसी के किले का निरीक्षण किया करती थी। नगर की छोटी जातियों तक की स्त्रियाँ और बच्चे बड़े उल्लास, बड़े हर्ष और अभूतपूर्व लगन से क़िले में जाकर बिना मज़दूरी लिए दिन-रात किले के टूटे हुए स्थानों की मरम्मत किया करते थे।

दूसरे देश के लोगों अथवा अपरिचित लोगो को इस समय सहसा नगर में प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। उनके प्रवेश के लिए सिपाहियो को पहले रानी की आज्ञा लेनी पड़ती थी।

जुलाई के अन्तिम सप्ताह में एक दिन तीसरे पहर किले का निरीक्षण करके लौटते समय रानी लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई आपस में बातचीत करने लगीं। लक्ष्मीबाई ने कहा—और

कितने दिनों तक अङ्गरेज़ों की प्रतीक्षा की जाय ? यह अनिश्चित अवस्था मेरे लिए बड़ी कष्टप्रद हो उठी है।

गङ्गाबाई बोलीं—इस प्रकार का अकर्मण्य जीवन यदि तुम्हें भार-सा मालूम होता है तो सेना लेकर कानपुर जाओ और आक्रमण कर दो। कानपुर में अङ्गरेज़ लोग बिना दोषी-निर्दोष का विचार किए हज़ारों स्त्री-पुरुषों की हत्या कर रहे हैं।

लक्ष्मीबाई अपनी सौत की बात सुन कर हँसते हुए बोलीं—मैं सारी सेना लेकर झाँसी छोड़, कानपुर चली जाऊँ और इधर बम्बई से अङ्गरेज़ी सेना आकर झाँसी की प्रजा का प्राण लेने लगे तो ?

"यह तो मैंने पहले ही कहा था कि यहाँ फौज बम्बई से आएगी। जब महाराज होलकर ने अङ्गरेज़ों का पक्ष लिया तो बम्बई से फ़ौज अवश्य भेजी जायगी।"

"महाराज होलकर अङ्गरेज़ों का पक्ष लेंगे, इसमें रत्ती-मात्र भी सन्देह नहीं। होलकर अङ्गरेज़ों के ख़रीदे हुए ग़ुलाम हैं। लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि ये मरहठे नरेश—महाराष्ट्र-कुलाङ्गार—अङ्गरेज़ों के क्रीत-दास क्यों हो रहे हैं ?"

"परिस्थिति उन्हें अङ्गरेज़ों का दास बना रही है।"

"परिस्थिति क्या है ? वे सब एक-एक प्रदेश के स्वतन्त्र राजा हैं। यदि इन लोगों में थोड़ा भी पुरुषार्थ होता तो ये अङ्गरेज़ों की ग़ुलामी कदापि न करते।"

"तुम्हारे प्राणेश्वर क्यों अङ्गरेज़ों के ग़ुलाम हुए थे ?"

"राजाओं की कायरता पर बात चलते ही तुम स्वर्गीय महाराज की निन्दा करने लगती हो। स्वामी की निन्दा मेरे लिए असह्य है। स्वामी अच्छे थे या बुरे थे, किन्तु थे हम लोगों के आराध्य देवता !"

"तुम्हारे आराध्य देवता हो सकते हैं—मेरे नहीं। महाराज को अपना आराध्य देवता समझती हो तो होलकर, सींधिया आदि दूसरे राजाओं की निन्दा क्यों करती हो? उन्हें व्यर्थ कायर और नपुंसक क्यों बनाती हो? जिन कारणों से महाराज कायर बने थे, उन्हीं कारणों से सींधिया और होलकर भी कायर बने हुए हैं।"

"ये लोग किस कारण से कायर बने हैं ?"

"ये लोग जिस कारण से कायर हो गए हैं, उसे तो तुम स्वयं उस दिन कह रही थीं।"

"नहीं, मैंने तो कुछ नहीं कहा था।"

"वाह ! तुमने कहा नहीं था कैसे ? इस देश के राजा इन्द्रियासक्त पिशाच हैं; उनके मन्त्री चोर और लबार हैं; उनकी सेना कायर और डरपोक है—यह किसने कहा था ?"

"ये बातें बेशक मैंने कही थीं। किन्तु ये लोग क्यों कायर हो गए हैं, इसका कारण मैं स्वयं नहीं जानती।"

"इन्द्रियासक्त, पिशाच होने से ही वे कायर हो गए हैं; चोर होने से ही वे बुज़दिल हो गए हैं। इस देश के राजा

स्वप्न देखा था कि योगिराज मेरे पिता को साथ लेकर यहाँ आए हैं।

गङ्गाबाई की बात समाप्त होते ही एक दासी ने रानी के पास आकर कहा—एक सिपाही आपके साथ भेंट करना चाहता है। वह दीवानख़ाने में बैठा हुआ है।

रानी लक्ष्मीबाई के बैठकख़ाने में जाने पर सिपाही ने निवेदन किया—माँ जी, एक संन्यासी ने नगर के द्वार पर आकर नगर में प्रवेश करना चाहा था। मैंने उसे अङ्गरेज़ों का गुप्तचर समझ कर पहरे के अन्दर रक्खा है। वह इस समय कह रहा है कि मैं महारानी साहिबा का परिचित आदमी हूँ और अपना नाम आनन्दाश्रम स्वामी बता रहा है। उसके सम्बन्ध में मैं आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

आनन्दाश्रम स्वामी का नाम सुनते ही रानी के हृदय में आनन्द का अपार समुद्र उमड़ आया। उन्होंने सिपाही से कहा—बड़े आदरपूर्वक स्वा[illegible] को [illegible] यहाँ ले आओ।

का हृदय युगपत हर्ष और विषाद के भावों से ओत-प्रोत हो गया। वह आत्म-विस्मृत की भाँति धीरे-धीरे गवाक्ष के पास आकर खड़ी हो गई।

प्रायः एक घड़ी के बाद पूर्वोक्त सिपाही योगिराज को साथ लेकर राजमहल में प्रविष्ट हुआ। रानी लक्ष्मीबाई ने स्वयं गृहद्वार पर जाकर योगिराज का स्वागत किया। रानी ने उन्हें मार्ग-श्रम से थका हुआ देख कर अधिक बातचीत नहीं की, केवल कुशल-मङ्गल पूछ कर उनके विश्राम के लिए मकान और सेवा के लिए तीन-चार सेवकों की व्यवस्था कर अपने कमरे में चली गईं।



अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

मन्त्रणा



सरे दिन सवेरे रानी लक्ष्मीबाई योगिराज के साथ दुर्ग देखने गईं। पिछले दो महीने में रानी लक्ष्मीबाई ने किले की रक्षा के लिए जो-जो आयोजन किए थे, जहाँ-जहाँ अस्त्र-शस्त्रों की स्थापना की थी, वह सब एक-एक करके योगिराज को दिखलाने लगीं। योगिराज रण-कौशल में पूरे कोरे थे, अतः वह किसी भी बात पर बिना टीका-टिप्पणी किए सब एक-एक करके देखने लगे। दुर्ग को एक सिरे से दूसरे सिरे तक अच्छी तरह देखने मे लगभग दो घण्टे लग गए। इसके बाद सब लोग लौट कर राजमहल में आए। योगिराज नहाने-खाने के लिए अपने निर्दिष्ट स्थान पर गए और दोनों रानियाँ भी अपने-अपने कमरे में चली गईं। गृह में प्रवेश करते ही रानी लक्ष्मीबाई ने गङ्गाबाई

से पूछा—इस बार योगिराज इतने उदास क्यों हैं ? उनके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता, उनके आनन्द से खिले हुए मुख-मण्डल पर विषाद की छाया दिखाई पड़ रही है।

गङ्गाबाई बोलीं—मालूम होता है, यात्रा की थकावट अभी तक दूर नहीं हुई।

"कहीं शरीर की थकावट से इस प्रकार की उदासी आती है ? कभी नहीं। घोर मानसिक कष्ट के अतिरिक्त और किसी भी कारण से मनुष्य की ऐसी दशा नहीं हो सकती।"

गङ्गाबाई ने लक्ष्मीबाई की इस बात का कुछ भी उत्तर न दिया। खाने-पीने के बाद लक्ष्मीबाई ने एक दासी भेज कर योगिराज को बुलाया। योगिराज के मन्त्रणा-भवन में आने पर इन लोगों में वर्त्तमान विद्रोह के सम्बन्ध में बात-चीत आरम्भ हुई। योगिराज को अभी तक पता नहीं था कि झाँसी में किस प्रकार विद्रोह आरम्भ हुआ और किन कारणों ने रानी लक्ष्मीबाई को विद्रोहियों का पक्ष लेने के लिए विवश किया गया। अतः वर्त्तमान विद्रोह की बात आरम्भ होते ही योगिराज बड़े दुख के साथ रानी लक्ष्मीबाई से कहने लगे—बहिन, मैं कभी कल्पना तक नहीं करता था कि आपके जीते जी झाँसी नगर निरपराध स्त्रियों और मासूम बच्चों के ख़ून से कलङ्कित और सिक्त होगा। आपके साथ जब से मेरा साक्षात् और परिचय हुआ है, तब से मैं सदा

आपको भारत की अद्वितीय रमणी-रत्न समझता रहा हूँ। आपकी वीरता, सहृदयता और पवित्रता को देख कर मैं मुग्ध हो गया हूँ। आपके निवासस्थान को मैं परम पवित्र तीर्थस्थान समझता हूँ। झाँसी छोड़ने तक को मेरा जी नहीं चाहता। केवल कर्त्तव्य के अनुरोध से गत तीन वर्षों में भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भ्रमण करता रहा हूँ। किन्तु आपका इस समय का व्यवहार देख कर मेरा हृदय बहुत ही व्यथित हुआ है। आप जैसी उच्चमना रमणी यदि राज्य-लोभ से नारी-हत्या और शिशु-वध में लिप्त हों तो फिर धर्म और पवित्रता को ढोंग और सहृदयता को अर्थहीन आडम्बर कहना पड़ेगा। एक अवस्था में जिस पुरुष में देवभाव लक्षित होता है, दूसरी अवस्था में वही पुरुष राक्षस का रूप धारण कर लेता है। वर्त्तमान विद्रोह के सम्बन्ध में आप व्यर्थ ही मेरी राय पूछती हैं? मैं इस सम्बन्ध में अपनी कोई राय नहीं देना चाहता।

योगिराज के मुँह से इस प्रकार तिरस्कार की बातें सुन कर रानी लक्ष्मीबाई ने उन्हें झाँसी के विद्रोह का सारा क़िस्सा साद्यन्त सुना दिया। पाठकगण भली-भाँति जानते हैं कि झाँसी के हत्याकाण्ड में रानी का कुछ भी साझ नहीं था। किस प्रकार झाँसी में विद्रोह उठ खड़ा हुआ और उसके बाद किन कारणों से रानी को विद्रोहियों का पक्ष ग्रहण करना पड़ा आदि बातें पुस्तक के प्रारम्भ में लिखी जा चुकी

हैं। अतः इस स्थान पर उन्हें पुनः दुहराने की आवश्यकता नहीं।

रानी के मुँह से झाँसी के विद्रोह का वर्णन आद्योपान्त सुनने के बाद योगिराज एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर बोले—बहिन, इसमें लेशमात्र भी शङ्का नहीं कि ईश्वर के सामने आप सब प्रकार निर्दोष सिद्ध होंगी। किन्तु इस दुर्घटना से दोनों जातियों का अमङ्गल होगा। अङ्गरेज कभी इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि झाँसी की स्त्री-हत्या और शिशु-हत्या से आपका कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। वे अवश्य ही आपके प्राण लेने की चेष्टा करेंगे और चिरकाल तक आपके पवित्र नाम को नारीहत्या के कलङ्क से कलङ्कित बनाए रक्खेंगे। आपकी मृत्यु भारत को वीराङ्गना-शून्य कर देगी; और आपकी अपकीर्ति से महाराष्ट्र नाम कलङ्कित हो जायगा।

योगिराज की बात सुन कर रानी लक्ष्मीबाई ने उत्तर दिया—महाराज, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरी आयु का अन्त समीप है; मैं शीघ्र ही आसन्न-मृत्यु का आलिङ्गन करूँगी। किन्तु स्त्री-हत्या के कलङ्क से मेरे नाम के कलङ्कित होने की कोई सम्भावना नहीं, झाँसी में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि झाँसी के हत्याकाण्ड में मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था। अङ्गरेज लोग यदि मेरी मृत्यु के बाद मेरे नाम को झूठ-मूठ बदनाम करने की चेष्टा करेंगे, तो क्या

एक भी भारतवासी ऐसा न होगा जो इस मिथ्या आक्षेप को निर्मूल सिद्ध कर दे ? झाँसी से अङ्गरेज़ों के उच्छिन्न हो जाने के कारण—केवल प्रजा की अराजकता से रक्षा करने के लिए—मैंने राज्य-भार ग्रहण किया है। मैं जानती हूँ, अङ्गरेज़ बड़े शक्की होते हैं; उनमें अधिकांश को धर्माधर्म का ज्ञान नहीं होता। वे लोग प्रतिहिंसा के वशीभूत हो एक सिरे से दोषी और निर्दोष सब का बध कर रहे हैं। इस विद्रोह के कारण कानपुर में वे इसी प्रकार का उपद्रव मचाए हुए हैं। इसलिए अन्त में बाध्य होकर मुझे आत्मरक्षा के लिए सैन्य-संग्रह करना पड़ा है। इसमें मैंने कौन सा अपराध किया है ?

"परमेश्वर की दृष्टि में आपने कोई अपराध नहीं किया हैं। किन्तु झाँसी में अङ्गरेज़ों की हत्या हो जाने पर यदि आप स्वयं राज्य-भार न ग्रहण कर आस-पास के किसी अङ्गरेज़ को यहाँ आने के लिए अनुरोध करती तो और भी अच्छा होता। ऐसा करने पर आपको अङ्गरेज़ों के कोपानल में नहीं पड़ना पड़ता।"

"झाँसी में अङ्गरेज़ों के मारे जाने के बाद झाँसी की जनता और विद्रोही सिपाही किस प्रकार उत्तेजित थे, उसे यदि आपने अपनी आँखों से देखा होता, तो मुझे इस प्रकार का उपदेश कभी न देते। उस समय यदि मै किसी अङ्गरेज़ से यहाँ आने के लिए अनुरोध भी करती, तो

विद्रोही सिपाहियों के डर से वह झाँसी आने का साहस नहीं करता। उस समय यदि मैं राज्य-भार ग्रहण करने मे ज़रा भी आगा-पीछा करती तो सिपाही मुझे अवश्य राज-महल से निकाल देते और मेरे स्थान में बालाजी विश्वनाथ अथवा बालाजी गोविन्दराव को सिंहासन पर बिठा देते। राज्य-भार ग्रहण किए बिना उस समय राजमहल में रहना तक असम्भव था।"

"आपने उस समय झाँसी छोड़ क्यो नहीं दी? यदि आप उस समय झाँसी छोड़ कर आगरा चली गई होतीं, तो सब प्रकार मङ्गल होता। वहाँ आप सुखपूर्वक अङ्गरेजों के आश्रय में रह सकती थी।"

योगिराज के मुँह से यह अन्तिम बात सुनते ही लक्ष्मी-बाई के दोनों नेत्र लाल-लाल हो गए। उन लाल-लाल नेत्रों से अग्नि-शिखा निकलने लगी। दोनो होठ काँपने लगे। वह क्रोध से काँपते हुए बोली—आप मुझे ऐसा अपमानजनक उपदेश देते है? जिन आततायी अङ्गरेजो ने घोर अन्याय करके मेरा राज्य हरण किया है, जिन्होने मेरे शरीर पर के गहने तक उतरवा लिए हैं—मैं आज प्राणों के भय से उन्हीं की शरण में जाऊँ? अत्याचारी के सामने अपनी दीनता दिखा कर सहायता की भिक्षा माँगूँ? कोई भी वीर स्त्री यह अपमान नहीं सहन कर सकती। अपने को अबला समझ कर मैं अपनी पद-मर्यादा को तिलाञ्जलि नहीं दे सकती।

क्या मैं सच्ची क्षत्राणी नहीं हूँ? क्या राज्य चला गया है, इसीलिए आत्मसम्मान भी खो दूँ? इस शरीर के रहते हुए मैं अत्याचारी के द्वार पर कभी भिखारिणी के वेश में उपस्थित नहीं हो सकती। महाराष्ट्र-महिलाएँ कभी इतनी नीचता नहीं स्वीकार कर सकतीं। जिस स्त्री के चरित्र मे आत्मसम्मान का थोड़ा भी भाव शेष होगा, वह कभी अपने अत्याचारी के सामने सहायता के लिए प्रार्थना नहीं कर सकती। विद्रोहियों के अस्त्राघात से प्राण-हानि की आशङ्का होती तो भी मैं झाँसी के राजप्रासाद से भाग कर अङ्गरेजों की शरण में कभी नहीं जाती।

रानी की वह क्रोधित मूर्ति देख कर योगिराज मौन हो गए। वह सोचने लगे कि स्त्रियों से तर्क करना बड़ा कठिन है। थोड़ी देर तक सोच-विचार करने के बाद हाथ जोड़ कर बोले—बहिन, मुझे क्षमा करो। बिना कुछ सोचे-समझे ही मैंने यह बात मुँह से निकाल दी थी। मैं सन्यासी हूँ। मुझे इसका कोई ज्ञान नही कि किस प्रकार स्त्रियों के आत्म-सम्मान की रक्षा होती है, और किस प्रकार उनके आत्म-सम्मान को धक्का पहुँचता है।

रानी योगिराज की कातरोक्ति सुन कर और उनकी आँखों से आँसू बहता हुआ देख कर मन ही मन बहुत दुःखित हुईं। वह तत्क्षण उनके पास जाकर अपने आँचल से उनके आँसू पोछने लगीं। रानी पहले से ही योगिराज

को 'बाबा' कह कर पुकारती थीं और अपनी गर्भजात सन्तान की तरह उन पर स्नेह रखती थीं। विशेषतः महाराष्ट्र-स्त्रियाँ बङ्गाल की स्त्रियों की तरह पुरुषों का अङ्ग स्पर्श करने में बहुत सङ्कुचित नहीं होतीं।

तीनों आदमी कुछ समय तक निःशब्द बैठे रहे। गङ्गा-बाई ने अब तक एक भी शब्द नहीं कहा था। वह निर्निमेष नेत्रों से योगिराज का मुख निहार रही थीं। उनके इस प्रकार आत्म-विस्मृत की नाईं बैठे रहने से ऐसा जान पड़ता था, मानो उन्होंने इन लोगों की कोई बात सुनी तक नहीं। उनके चित्त में इस समय दूसरी ही चिन्ता व्याप्त थी, जिसने उन्हे अन्यमनस्क बना दिया था।

प्रायः आध घण्टे के बाद योगिराज सजल नेत्रों से रानी लक्ष्मीबाई को सम्बोधित कर कहने लगे—बहिन, इस संसार मे मै जिसे अपना समझता था, पृथ्वी पर जो मेरे लाड़-प्यार की वस्तु थी, वह इस संसार से सदा के लिए अन्त-र्हित हो गई और मै गत दस वर्षों से संसार छोड़ कर देश-विदेश घूम रहा हूँ। अब पृथ्वी पर कोई ऐसी चीज नहीं रह गई, जिसे अपनी कह सकूँ और जिस पर मुझे ममता हो। दूसरों को सुखी देख कर ही मेरा मन सुख पाता है और दूसरो को दुःखी देख कर ही मैं दुःखी होता हूँ। इस समय समस्त मानव-जाति की सुख-शान्ति की कामना छोड़ कर मै ईश्वर से और किसी चीज की प्रार्थना नहीं करता।

संसार का पद, प्रभुत्व, धन, सम्पत्ति सब मेरे लिए आकर्षणहीन हैं। सांसारिक समृद्धि प्राप्त कर सुखी होना मेरे लिए किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। संसार में साधु-चरित्र, पवित्र-प्रेम निस्स्वार्थ मैत्री, परोपकार-भाव, त्याग-वृत्ति, निष्कपट स्नेह एवं अलौकिक वीरता देख कर ही मेरा मन प्रफुल्लित होता है। संसार छोड़ने के बाद से मैंने भारत के अनेक स्थानो मे भ्रमण किया, अनेक प्रान्तों के लोगो के रहन-सहन, स्वभाव और आचरण से परिचय प्राप्त किया; किन्तु आपसे साक्षात्कार होने के पहले नारी-जीवन के साथ अलौकिक वीरता और सदाशयता का ऐसा सुन्दर सम्मेलन और कहीं देखने मे नहीं आया। आपका अलौकिक वीरत्व देख कर मेरा मन असीम आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। यही कारण है कि मैं आपका अनुरोध मान कर झाँसी में दीर्घकाल तक ठहरा हुआ था। इस विद्रोह के कारण आपके ऊपर जो विपत्ति आने वाली है, उसका स्मरण कर मेरा मन विचलित हो गया है। अङ्गरेज़ आपके प्राणनाश की चेष्टा किए बिना नही रह सकते। दैत्य-पद-दलित भारतोद्यान में वीरता का जो बचा-खुचा एक पुष्प रह गया था, वह भी विनष्ट हो जायगा।

योगिराज की इस मर्मवाणी का रानी लक्ष्मीबाई ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह चुप बैठी रहीं। उन्हे मौन देख कर गङ्गाबाई बोलीं—वर्तमान अवस्था में यदि आप हम लोगों

के राज्य-ग्रहण को अन्याय समझते है, तो यह राज्य पुनः अङ्गरेजों को वापस कर दिया जाय। विद्रोही सिपाही इस समय यहाँ से चले गए हैं। ये थोड़े से सिपाही जो दिखाई पड़ते हैं, उन्हें आत्म-रक्षा के लिए पीछे से हम लोगों ने भर्ती किए है।

योगिराज बोले—इस समय राज्य लौटाने पर भी अङ्ग-रेजी सरकार झाँसी-हत्याकाण्ड के प्रतिशोध में झाँसी की रानी और झाँसी की प्रजा का प्राणनाश किए बिना न रहेगी।

"क्या झाँसी-हत्याकाण्ड में रानी लक्ष्मीबाई का हाथ न रहने पर भी अङ्गरेज उनके प्राण लेने पर उतारू हो जायँगे?"

"हत्याकाण्ड के बाद रानी के राज्यभार ग्रहण करने से ही अङ्गरेज यह सोचेंगे कि रानी के आदेशानुसार ही सिपा-हियों ने अङ्गरेजों की हत्या की है।"

"क्या अङ्गरेज लोग सत्यासत्य का कुछ भी निर्णय नहीं करेंगे?"

"उन लोगों ने कानपुर मे क्या सत्यासत्य का अनुसन्धान करके दस हजार स्त्री-पुरुषो की हत्या की है? अङ्गरेज बड़ी स्वार्थपरायण जाति है, आत्म-रक्षा की प्रबल वासना उससे जो भी कुकर्म और जितनी भी नृशंस क्रूरता करा दे वह सब थोड़ी है। महाराज होलकर प्राणपण से अङ्गरेजों की सहा-यता कर रहे हैं। उन्होने विद्रोहियों के आक्रमण से असंख्य अङ्गरेज स्त्री-पुरुषों की जान बचाई है, उनके खजाने की

रक्षा की है। किन्तु अङ्गरेज़ों ने उन्हें विश्वासघातक, कपटी और अपना शत्रु समझा और उनके राज्य मे मार्शल-लॉ जारी कर दिया। उनकी हज़ारों प्रजा की हत्या की और उनके राज्य में घोर उपद्रव मचा रक्खा था। बाद मे बड़ी मुश्किल से उन्होने अपनी विश्वासपात्रता का प्रमाण देकर कुछ अङ्गरेज़ों को अपने पक्ष में किया है। किन्तु इतने पर भी इन्दौर के रेज़िडेण्ट डुराण्ड साहब होलकर को छली और दगाबाज़ कह रहे है।"

रानी लक्ष्मीबाई अब तक चुप बैठी हुई थी। गङ्गाबाई से साथ बातचीत हो रही थी। किन्तु होलकर के प्रति अङ्गरेज़ो के अमानुषिक और अन्यायपूर्ण आचरण की बात सुनते ही वह घृणा एवं विरक्ति से भर कर क्रोधपूर्ण स्वर मे बोली— धिक्कार है होलकर को! धिक्कार है होलकर के जीवन को! धिक्कार है उनके राज्य को! यह महाराष्ट्र-कुलाङ्गार व्यर्थ क्यो जीवन धारण किए हुए है? इस प्रकार के घृणित जीवन से क्या मृत्यु लाख गुना अधिक वाञ्छनीय नहीहै? अङ्गरेज़ अन्यायपूर्वक और विना कारण उस पर छली और दगाबाज़ होने का सन्देह कर रहे हैं—केवल सन्देह ही नहीं करते, उसे शत्रु समझ कर खुले-आम उसकी प्रजा का प्राणनाश कर रहे हैं, किन्तु यह महाराष्ट्र-कुलाङ्गार अब भी अङ्गरेज़ों की दया का भिखारी बन कर उनके सामने अपनी सफाई पेश कर रहा है! तुच्छ राज्य के इतनी काय-

रता दिखा रहा है ? नहीं बाबा, मै इस अधम शरीर की रक्षा के लिए कभी अङ्गरेजों की शरण में नहीं जाऊँगी। जब तक जीवन है, बिना युद्ध किए झाँसी को कभी अङ्गरेजों के हाथ नहीं सौंपूँगी। धिक्कार है इस जीवन को ! होलकर की तरह कायरता मै कभी नही दिखा सकती।

"बहिन, तुम व्यर्थ ही होलकर की निन्दा कर रही हो। देश की ऐसी अवस्था है कि अङ्गरेजों का अत्याचार सहन कर भी कुछ दिनों तक उनके शासन में अवश्य रहना पड़ेगा। मैं लखनऊ से बहुत ही कठिनाइयाँ झेल कर इसीलिए इन्दौर गया था कि होलकर को अङ्गरेजों की शरण मे रहने का परामर्श दूँ।"

"यह सुन कर मेरा खेद और भी बढ़ रहा है ! इस बार मैं आप में घोर परिवर्तन देख रही हूँ। महाराज की मृत्यु के बाद जब अङ्गरेजों ने मेरा राज्य हरण किया, तो आप सर्वत्र अङ्गरेजों को घोर अत्याचारी कहते फिरते थे और इस समय आप ही कह रहे हैं कि अङ्गरेजो का अत्याचार सह कर भी उनके वशीभूत होकर रहना चाहिए ! अङ्गरेज तो होलकर के राज्य में अन्यायपूर्वक विप्लव मचाए हुए हैं और आपने होलकर को अङ्गरेजों के अधीन होकर रहने की सलाह दे दी !"

"बहिन, मैंने जिस समय जैसी अवस्था देखी है, उसके अनुसार ही कार्य करने का परामर्श दिया है। जिस समय

मै आपके राज्य की रक्षा के लिए आन्दोलन कर रहा था, उस समय भी मैने आपको अङ्गरेज़ों के साथ युद्ध करने का परामर्श नही दिया था और न इसी समय आपका अङ्गरेज़ों के साथ लड़ाई करना उचित समझता हूँ।"

"आप किसलिए अनुचित समझते हैं? मेरे पास काफी सेना नहीं है, धन नहीं है, अङ्गरेज़ों के साथ लड़ाई करके मैं पराजित हो जाऊँगी, इसी आशङ्का से आप मेरा अङ्गरेज़ो के साथ युद्ध ठानना अनुचित समझते है न? किन्तु होलकर की तरह कायरता का परिचय देकर मै इस अकिञ्चन जीवन को धारण करने की इच्छा नही रखती। ऐसी कायरता का परिचय देने से मृत्यु कहीं अधिक वाञ्छनीय है।"

"मैं केवल इसी आशङ्का से आपको युद्ध से विरक्त रखना नहीं चाहता कि आप युद्ध मे पराजित् हो जायँगी। इस युद्ध मे विजयी होना उतना ही अनिष्टकर है जितना विजित होना।"

"विजयी और विजित होना दोनों ही किस प्रकार अनिष्ट के कारण होंगे? गोमांसभक्षी, धर्माधर्म-ज्ञान-शून्य आततायी अङ्गरेज़ो को देश से वहिष्कृत कर देना अवश्य ही देश के लिए कल्याणप्रद है।"

रानी के मुँह से अङ्गरेज़ो के लिए 'गोमांसभक्षी, आततायी' आदि शब्द सुन कर योगिराज उन वातों की चर्चा वदल देने के उद्देश्य से हँसते हुए वोले—वहिन, इन गोमांस-

भक्तियों को कुछ काल तक और इस देश में राज्य करने का अवसर दिए बिना इस देश के गौवों की संख्या कम नहीं होगी। देश के सभी लोग गाय हो गए हैं। आपके केवल युद्ध में जय प्राप्त करने से ही क्या होगा? क्या आप गौवों पर राज्य करेंगी।

"देश के सभी निवासियो को अङ्गरेज़ों ने ही गाय बना डाला है? होलकर को गाय किसने बनाया है? किसने सींधिया को कायर बनाया है? सब अनर्थों के मूल अङ्गरेज़ है? मै किसी तरह भी भीरुतापूर्वक झाँसी को अङ्गरेज़ो के हवाले नहीं करूँगी। यदि युद्ध मे हार भी गई तो कोई हानि नही। सम्मुख-संग्राम मे प्राण-विसर्जन कर परलोक मे महाराज को प्राप्त करूँगी।"

झाँसी के विद्रोह का आमूल विवरण सुन कर योगिराज ने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि मै रानी को युद्ध से विरत रक्खूँगा, और अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट के साथ रानी का सद्भाव स्थापित करने की चेष्टा करूँगा। उन्होंने विचार कर देखा कि झाँसी की हत्या से रानी का कोई सम्बन्ध नहीं है, और रानी को बहुत-कुछ बाध्य होकर राज्य-सिंहासन ग्रहण करना पड़ा है। ऐसी अवस्था में स्वभावतः ही उनके मन मे यह आशा हुई कि अङ्गरेज़ लोग जब झाँसी के हत्याकाण्ड का सच्चा रहस्य जान जायँगे और रानी लक्ष्मीबाई स्वेच्छा से बिना युद्ध किए ही झाँसी को अङ्गरेज़ो के हवाले कर

देंगी, तो अङ्गरेज लोग रानी से युद्ध न करेंगे। यही सोच-विचार कर वह रानी को अपने अभीष्ट मार्ग पर लाने के लिए अब तक चेष्टा कर रहे थे। किन्तु होलकर की बात सुन कर जब रानी एकाएक उत्तेजित हो गईं तो योगिराज ने उस प्रसङ्ग को छोड़ देने के अभिप्राय से परिहास करते हुए देशी लोगों को गाय कहकर अपनी बात समाप्त कर दी। उन्होंने अच्छी तरह देख लिया कि रानी को अपने अभीष्ट मार्ग पर लाना दो-एक दिन का काम नहीं। दस-पन्द्रह दिन रह कर सब बातें धीरे-धीरे समझा देने पर बुद्धिमती रानी आप से आप मेरी बात मान लेंगी।

योगिराज के परिहास का भाव ग्रहण करते ही बात-चीत की गम्भीरता जाती रही। इतने में तीसरा पहर हो गया और रानी लक्ष्मीबाई क़िला देखने के लिए जाने को प्रस्तुत हुईं। गङ्गाबाई आज किसी काम का बहाना कर उनके साथ क़िला देखने के लिए नहीं गईं। वह योगिराज के साथ उसी मन्त्रणागार में बैठी रहीं। रानी लक्ष्मीबाई अकेले दुर्ग देखने चली गईं।



उन्नीसवाँ परिच्छेद

प्रकृत प्रेम



हले लिखा जा चुका है कि गङ्गाबाई के राजान्तःपुर-निवासिनी होने के पूर्व योगिराज प्रायः एक वर्ष तक नारायण त्र्यम्बक शास्त्री के घर रहे थे। योगिराज को अत्यन्त सच्चरित्र और धार्मिक देख कर शास्त्री जी महाराज ने अपनी पुत्री गङ्गाबाई को उनके हाथों में सौंप देने की इच्छा की थी। किन्तु गङ्गाबाई उस समय अपने पिता की इस इच्छा से सर्वथा अनभिज्ञ थीं। वह अपने पिता के मन की इच्छा कुछ भी नहीं जानती थीं। वह केवल यही समझती थीं कि योगिराज पिता के पास संस्कृत पढ़ने के लिए आए हैं। योगिराज इन्हें बहुत प्यार करते थे, अतः वह भी योगिराज को सहोदर भाई से बढ़ कर मानती थीं। महाराष्ट्र कुल-कामिनियाँ अन्य प्रान्तों की स्त्रियों की भाँति पुरुषों से मिलने-जुलने में अधिक

सङ्कोच नहीं करती। अन्य प्रान्तो की भाँति महाराष्ट्र में परदे की अस्वाभाविक प्रथा प्रचलित नहीं है। अतः गङ्गाबाई सङ्कोचहीन हो, सरल शुद्ध भाव से योगिराज से बातें किया करती थीं और कभी-कभी उनके साथ ही आहारादि भी करती थीं। योगिराज का असली नाम योगेशचन्द्र भट्टाचार्य था। गेरुआ वस्त्र पहने देख कर गङ्गाबाई ने एक दिन हँसते-हँसते उन्हे योगिराज कह कर सम्बोधन किया। उसी दिन से योगेश योगिराज के नाम से विख्यात हो गए। किन्तु नारायण त्र्यम्बक शास्त्री कभी उन्हें योगेश कहते थे और कभी आनन्दाश्रम स्वामी कह कर पुकारते थे।

जिस समय गङ्गाबाई अपने पिता के घर रहती थीं, उस समय योगिराज के प्रति उनका प्रेम दिनोंदिन बढ़ता जाता था। दोनो का हृदय एक दूसरे की सहृदयता और सद्‌गुणों को देख कर परस्पर आकर्षित हो रहा था। गङ्गाबाई को सब लोग सीता कह कर पुकारते थे। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री गङ्गाबाई का मुँह पकड़, प्रेम से गद्‌गद होकर कहते—स्वयं सीता ने मेरे घर में जन्म लिया है। इसीलिए पिता के घर में वह सीता के नाम से विख्यात थी। योगिराज भी उन्हे सीता कह कर पुकारते थे। वह कभी-कभी गङ्गाबाई के सामने ही शास्त्री जी से कहा करते—"आपकी सीता का मुँह देख कर मैं अपनी दोनों बहिनों का शोक बहुत अंशों में भूल जाता हूँ। यह केवल सीता ही नहीं, सन्तापहारिणी भी हैं।"

योगिराज के प्रति गङ्गाबाई का और गङ्गाबाई के प्रति योगिराज का प्रेम क्रमशः यहाँ तक वृद्धिङ्गत हुआ कि गङ्गा-बाई योगिराज को सुखी देख कर अथवा उन्हे सुख पहुँचा कर स्वयं अपरिमित सुख का अनुभव करती और योगिराज सदा इसी चिन्ता मे मग्न रहते कि किस प्रकार गङ्गाबाई को सुखी करूँ। किन्तु उन दोनों का प्रगाढ़ प्रेम उस समय तक न तो किसी निर्दिष्ट रूप में परिणत हो सका था, न कोई निर्दिष्ट गति अवलम्बन कर सका था। यह उद्देश्य-हीन, लक्ष्यहीन प्रेम क्रमशः घनीभूत होने लगा। प्रस्फुटित गुलाब को देख कर जिस प्रकार मन प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार वे भी एक दूसरे का मुख देख कर एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव करते। तथापि योगिराज के मन मे कभी यह विचार तक नही पैदा हुआ था कि मै गङ्गाबाई का पाणिग्रहण करूँगा। दूसरी ओर गङ्गाबाई यह भी नही जानती थी कि विवाह कहते किसे हैं।

स्नेह, प्रेम, चिन्ता आदि सब प्रकार के मानसिक भाव संसार के अन्य पदार्थों और विषयो की भाँति ही अनिर्दि-ष्टावस्था से धीरे-धीरे निर्दिष्ट आकार मे परिणत हो, किसी निर्दिष्ट गति का अवलम्बन कर लेते हैं। अखिल विश्व के नाना पदार्थों एवं विविध विषयो के जन्म तथा परिवर्द्धन के इतिहास की पर्यालोचना करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि अनिर्दिष्टावस्था का कालक्रम और विकाशगति के अनु-

सार धीरे-धीरे निर्दिष्टावस्था में परिणत हो जाना ही स्वाभाविक उत्पत्ति एवं परिवर्द्धन कहलाता है। जो विकाश इसके विपरीत हो उसे अस्वाभाविक उत्पत्ति एवं अनियमित परिवर्द्धन कहते हैं। जब मनुष्य अपनी बुद्धि और कौशल के द्वारा किसी विकाशशील वस्तु को उपयुक्त समय के पहले ही एक निर्दिष्ट आकार अथवा अवस्था मे ला देता है, तो वह आकार अथवा अवस्था उस वस्तु के लिए अस्वाभाविक हो जाती है। जो आम आषाढ़ में पकने वाला है वह यदि कृत्रिम उपायों से बैसाख में ही पका दिया जाय तो उसका स्वाभाविक स्वाद नष्ट होकर वह अरुचिकर बन जाता है।

नारायण त्र्यम्बक शास्त्री ने निश्चय कर लिया कि गङ्गाबाई के प्रति योगिराज और योगिराज के प्रति गङ्गाबाई के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम का सञ्चार होने के पहले उनमे से किसी के भी सामने अपना अभिप्राय नहीं प्रकट करूँगा। लक्ष्यहीन और उद्देश्यहीन प्रेम के क्रमशः घनीभूत होकर निर्दिष्टाकार से परिणत हुए बिना स्त्री-पुरुष के बीच कभी निस्स्वार्थ प्रेम का सञ्चार नही होता। मन मे इस प्रकार की चिन्ता, लक्ष्य वा उद्देश्य के उदय होने पर कि यह मेरे स्वामी हैं या भविष्य में स्वामी होंगे, किम्बा यह मेरी सहधर्मिणी है अथवा भविष्य में सहधर्मिणी होगी, जब एक दूसरे को प्रेम करना आरम्भ करता है, तो वह प्रेम सङ्गठित होने के पहले ही निर्दिष्टाकार तथा निर्दिष्ट गति का अवलम्बन करता है।

ऐसी अवस्था में निस्स्वार्थ और निरपेक्ष प्रेम के सञ्चार होने की सम्भावना नष्ट हो जाती है। चिन्ताशील नारायण त्र्यम्बक शास्त्री ने इन सब बातों का विचार कर योगिराज से खुलकर विवाह का प्रस्ताव नहीं किया। योगिराज भी अपनी दोनों बहिनों के मर जाने पर विवाह की कामना को हृदय से तिलाञ्जलि दे चुके थे। असहनीय अनुताप ने उनके अन्तर से पार्थिव सुख की आकांक्षा को दूर भगा दिया था। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री उनकी अवस्था देखकर समय-समय पर उन्हें गार्हस्थ्य धर्म में प्रवेश करने का उपदेश दिया करते थे और कभी-कभी उनसे स्वदेश लौट कर विवाह करने का भी आग्रह करते थे। किन्तु योगिराज ने गत पाँच-छः वर्षों से विवाह की आशा को एक क्षण के लिए भी अपने हृदय में स्थान नहीं दिया था। इस समय सहसा उनके लिए विवाह करने को प्रस्तुत हो जाना असम्भव था। इसीलिए वह नारायण त्र्यम्बक शास्त्री की बातों पर यथोचित ध्यान नहीं देते थे। पीछे जब गङ्गाधरराव ने कल-बल-छल से गङ्गाबाई को अपनी अन्तःपुरवासिनी बना लिया, तब विवश होकर शास्त्री जी ने स्पष्ट शब्दों में योगिराज पर अपना अभिप्राय प्रकट किया। शास्त्री जी के दुख और वेदना को देखकर योगिराज का हृदय पिघल गया। उधर गङ्गाबाई के प्रति उनके हृदय का प्रेम भी उस समय तक निर्दिष्टाकार में परिणत हो गया था। उन्होंने मन ही मन विचार किया कि

यदि गङ्गाबाई स्वयं सहमत हो जायँ, तो झाँसी के राजा के अन्तःपुर से बाहर निकाल कर उनसे विवाह कर लूँगा। योगिराज को गङ्गाबाई से विवाह करने के लिए। प्रस्तुत त्र्यम्बक शास्त्री झाँसी के अङ्गरेज़-रेज़िडेण्ट की सहायता से गङ्गाबाई को राजा के अन्तःपुर से बाहर लाने की चेष्टा करने लगे। योगिराज ने स्वयं गङ्गाबाई का अभिप्राय जानने के लिए चुपके से उनके पास पत्र भेजा। इस पत्र के भेजे जाने और गङ्गाबाई के पत्रोत्तर देने का हाल पहले ही लिखा जा चुका है। यहाँ फिर से उन बातों को विस्तार से लिखने की आवश्यकता नही जान पड़ती। किन्तु दुर्भाग्यवश गङ्गाबाई ने जब उनके पत्र का वास्तविक अभिप्राय न समझ कर उत्तर मे लिख दिया कि, "मैं अच्छी तरह हूँ। कोई विशेष कष्ट नहीं।" तो योगिराज ने अपने मन में अनुमान किया कि गङ्गाबाई राजा की अन्तःपुरवासिनी होकर अपने को सौभाग्यवती समझ रही हैं। इसलिए उन्होंने गङ्गाबाई को अन्तःपुर से बाहर लाने की चेष्टा नही की। गङ्गाबाई को ब्याहने की इच्छा उनके हृदय में क्षण भर मे उत्पन्न हुई और दूसरे ही क्षण विलीन होगई। किन्तु गङ्गाबाई के प्रति उनका स्नेह स्वल्प-मात्र भी कम न हुआ। वह कम क्यों होता ? विवाह करने के उद्देश्य से योगिराज उन्हें प्यार नहीं करते थे। अपनी छोटी वहिन समझ कर गङ्गाबाई की भोली मूर्त्ति को वह अब भी अपने हृदय में धारण किए हुए थे।

उपरोक्त घटनाओं के एक वर्ष के बाद राजा गङ्गाधर राव की मृत्यु हो गई। उस समय लॉर्ड डलहौजी ने झाँसी-राज्य को अङ्गरेजी राज्य में मिला लेने की इच्छा प्रकट की। योगिराज ने सोचा कि झाँसी के राज्यशासन का सूत्र लक्ष्मीबाई के हाथों मे रहने पर गङ्गाबाई सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सकेंगी। लक्ष्मीबाई गङ्गाबाई को बहुत प्यार करती थीं, यह बात योगिराज से छिपी हुई न थी। अतः योगिराज ने मन में सोचा कि गङ्गाबाई अत्यन्त बुद्धिमती, सुशिक्षिता एवं विदुषी महिला हैं। लक्ष्मीबाई के हाथो मे राज्य-भार रहने पर गङ्गाबाई को ही राज्य का सब काम सँभालना पड़ेगा, और इस प्रकार प्रजारञ्जन और प्रजापालन-व्रत में लीन होकर वैधव्यावस्था में गङ्गाबाई भी अहिल्याबाई की भाँति परोपकार-व्रत एवं अनेक प्रकार के सदनुष्ठानो मे जीवन समर्पित कर, सुख से कालयापन कर सकेंगी।

मन मे इस विचार के स्थिर हो जाने पर योगिराज प्राण-पण से इस बात की चेष्टा करने लगे कि झाँसी का राज्य किसी प्रकार अङ्गरेजों के अधिकार में न जाने पावे। वह इङ्गलैण्ड तथा भारत के पत्रों में लेख लिख कर लॉर्ड डलहौजी के अभिप्राय की तीव्र आलोचना करने लगे। यह देख कर लक्ष्मीबाई और उनके पिता योगिराज से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

योगिराज इस कार्य के लिए झाँसी में लगभग छः मास

तक ठहरे रहे। उस समय सब लोगों के सामने गङ्गाबाई से सदा उनकी भेंट-मुलाक़ात हुआ करती थी। किन्तु एक दिन उन्होंने छिप कर एकान्त मे गङ्गाबाई से मुलाक़ात की और उनके दुःख की कहानी सुन कर अत्यन्त दुःखी हुए। गङ्गाबाई का पत्रोत्तर पाकर उनके विषय में योगिराज ने जो यह अनुमान किया था कि गङ्गाबाई अन्तःपुरवासिनी होकर अपने को सौभाग्यवती समझ रही हैं, अब उन्हे पता चला कि उनका वह अनुमान पूर्णतया भ्रमपूर्ण था और गङ्गाबाई अन्तःपुर को सदा नरक के समान समझती रहीं। उनके कष्ट की बात जान कर पिता दुःखी होंगे, इसीलिए उन्होने पत्र में लिख दिया था—"मैं अच्छी तरह से हूँ, कोई विशेष कष्ट नहीं।"

उस दिन दिल खोल कर गङ्गाबाई ने जब अपना सारा हाल योगिराज को सुना दिया तो योगिराज ने सहज ही यह समझ लिया कि राजप्रासादवासिनी होकर गङ्गाबाई एक दिन अथवा एक मुहूर्त के लिए भी अपना जीवन सुखपूर्वक नहीं बिता सकीं, और न योगिराज पर उनका स्वाभाविक प्रेम ही कम हुआ।

* * *

× × × गङ्गाबाई की बातें सुन कर योगिराज के मन में दो प्रश्न उदय हुए—"इस समय क्या करूँ ?" और "किस उपाय से गङ्गाबाई को सुखी करूँ ?"

गङ्गाबाई के सुख-सम्भोग की वृद्धि करने के अभिप्राय से उन्होंने झाँसी के राजपद की अङ्गरेजों के आक्रमण से रक्षा करने की चेष्टा की थी। किन्तु अङ्गरेजो ने बहुत शीघ्र झाँसी पर अपना अधिकार जमा लिया। उन्होंने झाँसी की रानियों के कपड़े-लत्ते तक को स्टेट की सम्पत्ति कह कर हथिया लिया। इस कारण योगिराज गङ्गाबाई को सुखी करने के लिए जिस उपाय का अवलम्बन कर रहे थे, वह निष्फल हुआ।

अब योगिराज के झाँसी में ठहरने की आवश्यकता नहीं रह गई। वह और कहीं जाने के लिए प्रस्तुत हुए। किन्तु जब वह गङ्गाबाई से बिदा माँगने जाते तो वह दारुण मनो-व्यथा के कारण मृतप्राय सी हो जातीं। जब योगिराज उनके मानसिक कष्ट का कारण पूछते तो वह न तो कुछ जवाब देतीं और न उनसे झाँसी में ठहरने का अनुरोध ही करतीं। 'योगिराज आज जायँगे, कल जायँगे' इस प्रकार करते हुए एक महीने से अधिक समय बीत गया। किसी-किसी दिन तो वह दृढ़ निश्चय कर लेते थे कि आज अवश्य चला जाऊँगा, किन्तु जब वह गङ्गाबाई से विदा माँगने जाते तो उनके लिए झाँसी छोड़ना असम्भव हो जाता। गङ्गाबाई का कुम्हलाया हुआ चेहरा देख, उन्हें छोड़ कर झाँसी से चले जाने की योगिराज की इच्छा न जानें कहाँ चली जाती। अन्त में एक दिन उन्होंने मन में ठान लिया कि आज चाहे

जो हो, मैं झाँसी अवश्य छोड़ दूँगा। वह रानी लक्ष्मीबाई से बिदा माँग कर गङ्गाबाई से भेंट करने को चले। दोनों आदमियों में बहुत देर तक शास्त्र और विज्ञान की विविध चर्चा होती रही। अन्त में जब बिदा माँगने का समय आया तो उसके कुछ पहले योगिराज ने गङ्गाबाई से पूछा—सीता, यदि तुम साफ-साफ मेरे सामने अपने मन के भावों को खोल कर कहतीं तो मैं आज तुमसे एक बात पूछता।

गङ्गाबाई ने उत्तर दिया—मैंने आज तक आपसे कौन सी बात छिपाई है जो आप मुझसे इस तरह पूछ रहे हैं? यह कह कर वह आँखों से आँसू बहाने लगी।

योगिराज ने उनसे कहा—मैं केवल यही जानना चाहता हूँ कि किस उपाय से मैं तुम्हे सुखी कर सकता हूँ। क्या करने से तुम सुखी होओगी—यही मुझसे कहो।

गङ्गाबाई इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सकीं। वह चुपचाप बैठी रहीं। उनके दोनों गालों पर आँसुओं के मोती झर-झर कर रहे थे। योगिराज ने फिर कुछ देर के बाद पूछा—तुम्हें पिता को देखने की इच्छा होती है? पिता के दर्शन करने से तुम्हारा मानसिक कष्ट दूर हो जायगा?

इस बार गङ्गाबाई ने उत्तर दिया—पिता को देखे बिना मुझे कितनी मानसिक वेदना हो रही है, इसे उस परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता।

यह उत्तर सुन कर योगिराज बोले—मैं आज ही झाँसी

से चला जाऊँगा और तुम्हारे पिता को ढूँढ़ कर उन्हें साथ लेकर पुनः यहाँ लौटूँगा।

यह कह कर योगिराज गङ्गाबाई से विदा हो त्र्यम्बक शास्त्री की खोज में तीन वर्ष तक अनेक प्रदेशो मे भ्रमण करते रहे। उस समय शास्त्री जी पूना में निवास कर रहे थे। किन्तु योगिराज ने सोचा कि वह देश मे भ्रमण कर विद्रोहानल प्रज्वलित करने की चेष्टा कर रहे होगे, इसलिए वह पञ्जाब, राजपूताना आदि प्रदेशों मे घूम-घूम कर तीन साल तक शास्त्री जी की खोज करते रहे। इस तीन वर्ष के लम्बे समय में गङ्गाबाई को सुखी करने की इच्छा उन्हें क्षण भर के लिए भी विस्मृत न हुई। गङ्गाबाई को सुखी करना उनके जीवन का एकमात्र व्रत होगया। प्रेम का प्रबल भाव उन्हें जीवन के कर्त्तव्य-मार्ग पर परिचालित करने लगा।

मन में जब कोई चिन्ता बद्धमूल हो जाती है, तो उससे सम्बन्ध रखने वाली सैकड़ों अन्य चिन्ताएँ क्रमशः उसके अन्तराकाश में उदय होने लगती है। योगिराज कभी-कभी सोचते—"यदि त्र्यम्बक शास्त्री से भेंट न हुई अथवा उनकी मृत्यु हो गई हो तो सीता (गङ्गाबाई) को किस प्रकार सुखी करूँगा ?" फिर कभी उनके मन में यह प्रश्न उठता—"सीता मुझे देखने मात्र से सुख का अनुभव करती है तो क्या वह मुझसे विवाह करके सुखी होगी ? उसके पिता को

चित है। मेरे स्पर्शमात्र से वह अपवित्र हो जायँगे। क्या अपने सुख की अभिलाषा से उनका जीवन नष्ट करूँ? आह! मै कितनी कृतघ्ना हूँ! वह प्राणों से भी बढ़ कर मुझे प्यार करते हैं और मै उनकी छाती में छुरी मारना चाहती हूँ! उनके पवित्र धार्मिक जीवन को नष्ट करना चाहती हूँ!! कभी नहीं! कभी नहीं!! मन की यह आग मृत्यु-पर्यन्त मुझे जला कर चिता की आग के साथ भले ही बुझे, किन्तु मै उन्हें कलङ्कित नही करूँगी। सम्भव था कि यदि मै अपने मन का भाव उन पर प्रगट कर देती तो मुझे सुखी करने के विचार से वह मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लेते। किन्तु इससे केवल मैं ही सुखी होती। उनके जैसा रत्न पाकर मै अपने भाग्य पर फूली नही समाती, किन्तु वह तो सुखी नहीं हो सकते। कलङ्किनी का स्पर्श क्या जितेन्द्रिय के सुख का कारण हो सकता है? यह पाप-चिन्ता मेरे मन से दूर हो! काम-लोलुप गङ्गाधर राव की उपपत्नी क्या जितेन्द्रिय योगेश्वर की धर्मपत्नी हो सकती है?"

दोनों आदमियों के मन में एक दूसरे के प्रति इसी प्रकार के भाव उठते और गिरते रहते थे, अतः विवाह करने की इच्छा किसी के भी मन में स्पष्ट रूप से प्रगट नहीं होती थी। योगिराज गङ्गाबाई को बहुत चाहते थे और किस उपाय से गङ्गाबाई को सुखी करूँ, इसी चिन्ता में दिन-रात बेसुध रहते थे। गङ्गाबाई योगिराज का मुँह देखने के लिए प्रायः

अधीर हो उठती थीं। किन्तु मन में विवाह करने की इच्छा प्रगट होते ही अपने को अकृतज्ञा, पापिनी और कलङ्किनी कह कर धिक्कारने लगती थीं। तीन वर्ष से दोनों आदमी सङ्कल्प-विकल्प के ऐसे ही कोमल और कठोर आघात सहते हुए मन की अनिश्चित अवस्था में कालयापन कर रहे थे। तीन वर्षों के बाद कल ही दोनों आदमियो का सम्मिलन हुआ है। किन्तु एकान्त में दिल खोल कर बातें करने का सुअवसर अभी तक नही प्राप्त हुआ है। आज तीसरे पहर जब रानी लक्ष्मीबाई दुर्ग देखने के लिए अकेले चली गई, तब दोनों आदमी एकान्त मे मिले। कुछ समय तक दोनों एक दूसरे का मुँह ताकते रहे। शास्त्रकारो ने कहा है कि हृदय की पूर्णावस्था कण्ठ से वाणी के रूप में प्रगट होती है। किन्तु अनुभव यह बताता है कि हृदय भर आने पर वाणी का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। हृदय की उस पूर्णावस्था में शब्दो के द्वारा अन्तर का भाव कोई व्यक्त नही कर सकता।

हृदय के उच्छ्वसित आवेग को बड़े कष्ट से रोक कर योगिराज कहने लगे—सीते, तुम्हारे पिता की खोज में अनेक प्रदेशों मे निरन्तर तीन वर्ष तक घूमने के बाद अन्त में बिठूर में उनसे भेंट हुई है। उन्होंने मुझे वचन दिया है कि विद्रोह के शान्त होने पर झाँसी आकर वह तुम्हें दर्शन देंगे। किन्तु यहाँ की जैसी अवस्था देख रहा हूँ, उससे मुझे यह आशा नहीं होती कि विद्रोह के अन्त तक तुम झाँसी में

रह सकोगी। बहुत सम्भव है कि अङ्गरेज लोग कानपुर की भाँति झाँसी को भी जन-शून्य कर दें। मेरे इन तीन वर्षों का परिश्रम व्यर्थ गया।

गङ्गाबाई ने पूछा—पिता बिठूर में क्या कर रहे है ?

"ताँतिया टोपी के अनुरोध से कुछ दिनों से बिठूर में ही निवास कर रहे हैं।"

"वर्त्तमान विद्रोह क्या उन्हीं की चेष्टा का फल है ?"

"नहीं, उन्होंने तो तीन साल पहले ही इस सङ्कल्प का परित्याग कर शान्तिपूर्वक पूना में निवास करना आरम्भ कर दिया था।"

"क्या वह मेरे शोक में अत्यन्त कातर होगए हैं ?"

इस प्रश्न के उत्तर मे योगिराज ने गङ्गाबाई को नारायण त्र्यम्बक शास्त्री की वर्त्तमान समय की सारी कहानी कह सुनाई और सब बातें कह चुकने पर अन्त में बोले—तुम्हारे पिता ने युवावस्था में अपनी माता का अनुरोध मानकर देश-सेवा व्रत को छोड़ दिया था। इसी से आजकल वृद्धावस्था में वह इतना मानसिक क्लेश भोग रहे हैं। यह मनोवेदना ही धीरे-धीरे उनके शरीर को जर्जरित कर अन्त मे उनकी मृत्यु का कारण होगी। उनकी संसार-यात्रा में अब इस मर्म-वेदना के अतिरिक्त और कुछ बाक़ी नहीं रह गया है।

"उनके शोक करने का मैं तो कोई कारण नहीं देखती। उन्होने स्वयं कभी कोई पाप नहीं किया। उन्हें यदि कोई

दुःख है तो वह है उनकी सन्तान के कारण। उनके पुत्र और कन्या ने ही उनका जीवन कष्टमय बना रक्खा है।"

"उनका विचार है कि उन्ही के पापों के कारण उनके पुत्र और कन्या की दुर्दशा हुई है। वह स्पष्ट शब्दों मे कहते हैं कि मैं स्वयं पापी न होता तो मेरे पुत्र-कन्या की ऐसी दुर्दशा कदापि न होती।"

"मैं तो इसमें उनका कोई दोष नहीं देखती। सारा दोष उनकी माता, पुत्र और पुत्री का है।"

"उनका व्यक्तिगत दोष भी बहुत है।"

"उनका व्यक्तिगत दोष क्या है?"

"उनका व्यक्तिगत दोष नहीं है? समाज के अगणित कुसंस्कारों और भयङ्कर कुरीतियो पर उनकी दृष्टि पड़ी थी, उन्होंने समाज-सुधार का पावन व्रत भी ग्रहण किया था, किन्तु पीछे माता के अनुरोध और समाजच्युत होने के भय से उन्होने अपने उस महान् व्रत को त्याग दिया। यदि उन्होंने समाज-सेवा के पुरस्कार-स्वरूप समाजच्युत होना स्वीकार किया होता तो देश का अनन्त उपकार होता और तुम दोनों भाई-बहिनों की भी यह दुर्दशा न होने पाती। यदि वह समाज-च्युत हो गए होते तो राजा गङ्गाधर राव कभी भी तुमसे ब्याह करने की इच्छा न करते और न झाँसी का वह लोलुप ब्राह्मण ही अर्थ के लोभ में पड़ कर तुम्हारे बड़े भाई को अपनी कन्या सौंपता। स्वयं उन्नत हुए बिना मनुष्य दूसरे

को उन्नति के मार्ग में परिचालित नहीं कर सकता। समाज को सुधारने की इच्छा रखने वाले को सबसे पहले स्वयं सामाजिक कुरीतियों से मुक्त होना चाहिए। जो मनुष्य इन कुरीतियों से शुद्ध हो जाता है, उसी को लोग समाजच्युत करते हैं। अतः अवस्थानुसार समाजच्युति भी गौरव का विषय हो सकती है।"

गङ्गाबाई ने योगिराज की बातों का कुछ उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप निर्वाक् बैठी रहीं। योगिराज ने उन्हें एक-एक करके वे सब बातें सुनाईं, जो त्र्यम्बक शास्त्री ने शोकावेग के कारण उनसे कही थीं। उन सब बातों को यहाँ पुनः दुहराने की आवश्यकता नहीं। वे पहले यथास्थान लिखी जा चुकी हैं।

इस सम्बन्ध में बहुत सी बातें हो चुकने के बाद योगिराज ने आँखो में आँसू भर कर कहा—सीते! निरपराधिनी और पुण्यशीला अबलाओं का दुःख, कष्ट और सामाजिक उत्पीड़न देखकर मेरा हृदय दग्ध हो जाता है। मेरी दोनों छोटी बहिनों ने सामाजिक अत्याचार से त्रस्त होकर ही अपनी इहलीला समाप्त की थी। शायद इसी से मेरा मन इतना भावुक हो गया है। पाँच वर्ष पहले जब तुम अपने पिता के यहाँ थीं, तब तुम्हारा भोला मुखड़ा देख कर, धीरे-धीरे मैं अपनी बहिनों का शोक भूलता जा रहा था। अपने पिता के घर में तुम संसार की सब चिन्ताओं से रहित, चित्त की प्रसन्नता से एक स्वर्गीय देवी की भाँति सुशोभित होती थीं।

तुम्हारी प्रत्येक बात में माधुर्य और हास्य का ऐसा सुन्दर समावेश होता था कि तुम्हारा मुँह देखते ही मैं आनन्द से भर जाता था। इस समय तुम्हें थोड़ी भी उदास देखकर मेरे हृदय में व्यथा होने लगती है। तुम्हारे मानसिक कष्ट की बात सुन कर मेरी छाती फटने लगती है। केवल तुम्हे सुखी करने के उद्देश्य से मैंने तीन वर्ष निरन्तर नङ्गे पाँव देश-विदेश भ्रमण किया है। इसमें मुझे थोड़ा भी कष्ट नहीं हुआ। किन्तु अब देखता हूँ कि मेरा वह सब परिश्रम व्यर्थ गया। तुम्हारे पिता से तुम्हारा सांक्षात् होने की कोई सम्भावना नहीं। अङ्गरेज़ो के आक्रमण करते ही तुम लोगों को झाँसी छोड़ कर कहीं अन्यत्र चला जाना पड़ेगा।"

योगिराज की बातें सुनते समय गङ्गाबाई के नेत्रों से निरन्तर आँसू झर रहे थे। उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। हृदय के उच्छ्‌वसित आवेग से उनका गला भर आया। वह चुप बैठी रहीं।

योगिराज पुनः बोले—सीते, मुझे पराया न समझो। मुझसे अपने हृदय का भाव प्रगट करने में सङ्कोच न करो। किस प्रकार मैं तुम्हें सुखी कर सकता हूँ, क्या होने से तुम्हारे मन का कष्ट दूर होगा, इसे साफ़-साफ़ छल-कपट छोड़ कर कहो। तुम्हारा विषण्ण वदन देख कर मेरे मन को गहरी चोट पहुँचती है।

गङ्गाबाई मुँह से कुछ कहने में अब भी असमर्थ थीं।

किन्तु उनका मन कह रहा था—यदि तुम ही पराए हो, तो इस संसार में मेरा अपना कौन है ? क्षण भर के लिए भी तो तुम्हे इस हृदय से दूर नहीं रख सकती।

गङ्गाबाई को अब भी आँसू बहाते देखकर योगिराज ने बड़े आग्रह से पूछा—सीते, कहो, क्या करने से तुम सुखी होओगी ? मुझसे कहो, मै किस प्रकार तुम्हें सुखी कर सकता हूँ ?

योगिराज के इस प्रेम-भरे आग्रह को देखकर गङ्गाबाई और मौन न रह सकी, उन्होंने अर्द्ध-स्फुटित शब्दों में कहा—तुम्हें सुखी देखने से ही मुझे सुख प्राप्त होता है। तुम्हे सुख पहुँचाने में ही मेरे मन को सुख का अनुभव होता है। मेरे सुख का संसार में इससे श्रेष्ठ अन्य कोई साधन नही हो सकता।

गङ्गाबाई का प्रत्युत्तर सुन कर योगिराज कुछ देर के लिए निस्तब्ध हो गए। वह सोचने लगे—इसको सुखी देख कर मेरे मन में सुख का सञ्चार होता है। आत्म-सुख की चिन्ता मेरे मन में कभी पैदा ही नहीं होती और यह भी आत्म-सुख की चिन्ता छोड़ कर केवल-मात्र मेरे ही सुख की कामना में लीन रहती है। मेरे सुखी रहने पर ही यह सुखी होगी—अब भला मैं इसको किस तरह सुखी करूँ ? यह तो कठिन समस्या जान पड़ती है।

इस प्रकार सोच-विचार कर योगिराज बोले—सीते,

इस संसार में सुख और दुःख दोनों मेरे लिए समान है। सुख की चिन्ता बहुत दिनों से मेरे मन से दूर हो गई है। मेरे सुख के लिए तुम चिन्ता न करो। क्या होने से तुम सुखी होओगी, किस वस्तु को पाकर तुम्हारे मन का कष्ट दूर होगा, यही साफ-साफ़ दिल खोलकर मुझसे कहो।

गङ्गाबाई ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया। वह पूर्ववत् मौन वैठी रही। केवल उनकी आँखों ने आँसू वहा कर योगिराज के प्रति उनकी असीम कृतज्ञता प्रगट की।

योगिराज गङ्गाबाई को उस अवस्था मे देखकर बोले—मैं तो इस समय बड़े ही सुख के साथ जीवन बिता रहा हूँ। संसार की सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर स्वतन्त्र पक्षी की भाँति सर्वत्र विचरण किया करता हूँ। मुझे कोई कष्ट या चिन्ता नहीं। केवल तुम्हे उदास देख कर मेरे मन में कष्ट होता है। तुम्हे सुखी करने के लिए कठिन से कठिन कार्य में हाथ डालकर भी मै सुखी हो सकता हूँ।

गङ्गाबाई चुपचाप योगिराज की बात सुनती रहीं। आँसुओं की धार से उनके दोनों गाल भीग गए।

कुछ देर के बाद योगिराज फिर बोले—क्या अपने मन के भाव मुझ पर प्रकट न करोगी? तुम मुझे पराया समझती हो, इससे मेरे मन को बड़ा कष्ट होता है।

गङ्गाबाई बड़े कष्ट से उच्छ्वसित शोकावेग को रोक कर बोलीं—मुझे क्षमा करो, मेरे मन का कष्ट जान कर क्या करोगे?

किन्तु उनका मन कह रहा था—यदि तुम ही पराए हो, तो इस संसार में मेरा अपना कौन है ? क्षण भर के लिए भी तो तुम्हें इस हृदय से दूर नही रख सकती।

गङ्गाबाई को अब भी आँसू बहाते देखकर योगिराज ने बड़े आग्रह से पूछा—सीते, कहो, क्या करने से तुम सुखी होओगी ? मुझसे कहो, मै किस प्रकार तुम्हें सुखी कर सकता हूँ ?

योगिराज के इस प्रेम-भरे आग्रह को देखकर गङ्गाबाई और मौन न रह सकी, उन्होंने अर्द्ध-स्फुटित शब्दों में कहा—तुम्हें सुखी देखने से ही मुझे सुख प्राप्त होता है। तुम्हे सुख पहुँचाने में ही मेरे मन को सुख का अनुभव होता है। मेरे सुख का संसार में इससे श्रेष्ठ अन्य कोई साधन नही हो सकता।

गङ्गाबाई का प्रत्युत्तर सुन कर योगिराज कुछ देर के लिए निस्तब्ध हो गए। वह सोचने लगे—इसको सुखी देख कर मेरे मन में सुख का सञ्चार होता है। आत्म-सुख की चिन्ता मेरे मन मे कभी पैदा ही नहीं होती और यह भी आत्म-सुख की चिन्ता छोड़ कर केवल-मात्र मेरे ही सुख की कामना में लीन रहती है। मेरे सुखी रहने पर ही यह सुखी होगी—अब भला मैं इसको किस तरह सुखी करूँ ? यह तो कठिन समस्या जान पड़ती है।

इस प्रकार सोच-विचार कर योगिराज बोले—सीते,

इस संसार में सुख और दुःख दोनों मेरे लिए समान हैं। सुख की चिन्ता बहुत दिनों से मेरे मन से दूर हो गई है। मेरे सुख के लिए तुम चिन्ता न करो। क्या होने से तुम सुखी होओगी, किस वस्तु को पाकर तुम्हारे मन का कष्ट दूर होगा, यही साफ-साफ दिल खोलकर मुझसे कहो।

गङ्गाबाई ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। वह पूर्ववत् मौन बैठी रहीं। केवल उनकी आँखों ने आँसू बहा कर योगिराज के प्रति उनकी असीम कृतज्ञता प्रगट की।

योगिराज गङ्गाबाई को उस अवस्था में देखकर बोले—मैं तो इस समय बड़े ही सुख के साथ जीवन बिता रहा हूँ। संसार की सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर स्वतन्त्र पक्षी की भाँति सर्वत्र विचरण किया करता हूँ। मुझे कोई कष्ट या चिन्ता नहीं। केवल तुम्हें उदास देख कर मेरे मन में कष्ट होता है। तुम्हें सुखी करने के लिए कठिन से कठिन कार्य में हाथ डालकर भी मैं सुखी हो सकता हूँ।

गङ्गाबाई चुपचाप योगिराज की बात सुनती रहीं। आँसुओं की धार से उनके दोनों गाल भीग गए।

कुछ देर के बाद योगिराज फिर बोले—क्या अपने मन के भाव मुझ पर प्रकट न करोगी? तुम मुझे पराया समझती हो, इससे मेरे मन को बड़ा कष्ट होता है।

गङ्गाबाई बड़े कष्ट से उच्छ्वसित शोकावेग को रोक कर बोलीं—मुझे क्षमा करो, मेरे मन का कष्ट जान कर क्या करोगे?

"मैं यथाशक्ति तुम्हारे कष्ट दूर करने की चेष्टा करूँगा।"

"इससे मेरे मन का कष्ट और भी बढ़ेगा।"

"बढ़ेगा क्यों?"

"तुम्हारा कष्ट देख कर।"

"मैं तो इस कष्ट को कष्ट समझता ही नहीं। तुम्हारे सुख के लिए मैं किसी भी कष्टसाध्य कार्य में हाथ डाल कर अपने को अत्यन्त सुखी समझता हूँ।"

गङ्गाबाई फिर अवाक् हो बैठी रहीं। उनके नेत्रों से आँसुओं की अविरल धार बहने लगी।

योगिराज बोले—सीते, मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, तुम मुझे पराया समझती हो, नहीं तो तुम्हारे सुख-साधनार्थ मेरे किसी कठिन कार्य में हाथ डालने पर तुम्हे इतना कष्ट क्यों होता?

इस बार गङ्गाबाई कुछ धैर्य धारण करके बोलीं—तुम ज्ञानी, पण्डित, जितेन्द्रिय और धर्मात्मा हो। लेकिन तुम स्त्री-स्वभाव को बिलकुल नहीं पहचानते और न कभी पहचान सकते हो। क्या ऋणी होकर स्त्री कभी सुखी हो सकती है? मुझे सुखी करने के लिए तुम्हारा इतना कष्ट ग्रहण करना ही मेरे लिए कष्ट का सबसे बड़ा कारण हो रहा है। यदि मेरा वश चलता—यदि मैं अपने को उपयुक्त समझती × × ×

यहाँ तक कह कर गङ्गाबाई अपने मन का भाव अधिक प्रगट नहीं कर सकीं। वह मुँह नीचे करके रोने लगीं। योगि-

राज उन्हें रोते देख कर बोले—तुम्हारे सुख के लिए जब मैं कोई काम करता हूँ, तो तुम अपने को मेरा ऋणी क्यों समझती हो ?

गङ्गाबाई पूर्ववत् अधोवदन निःशब्द बैठी रहीं। योगिराज पुनः कहने लगे—मैं तुम्हे अपनी छोटी बहिन की भाँति प्यार करता हूँ। उसी स्नेह के अनुरोध से मै तुम्हे सुखी करने की चेष्टा करता हूँ। यदि मेरा स्नेह तुम्हे मेरा ऋणी बनाता है, तो क्या तुम्हारी अकृत्रिम भक्ति और विशुद्ध प्रेम के द्वारा उस ऋण का परिशोध नही हो जाता है। सीते, तुम व्यर्थ अपने ऊपर काल्पनिक ऋण का भार लाद कर अपने को कष्ट क्यों दे रही हो? छल-कपट छोड़ कर मुझसे कहो—किस तरह से तुम्हारा मानसिक कष्ट दूर होगा ? क्या होने से तुम सुखी हो सकोगी ?

"इस संसार में मेरे सुखी होने की अब और कोई आशा नही, मेरे मन में आत्म-सुख-चिन्ता कभी पैदा न होगी। हाँ, तुम्हे सुखी देख कर मन में सुख का अनुभव अवश्य होता है। किन्तु जब मैं यह देखती हूँ कि मुझे सुखी करने के लिए तुम स्वयं कष्ट भोग रहे हो तो मेरे दुःख का पारावार नहीं रहता।"

गङ्गाबाई का उत्तर सुन कर योगिराज मन में विचारने लगे—इसके सुख-साधन के लिए मेरे चेष्टा करने मात्र से जब इसे अपार कष्ट होता है, तब केवल मैं ही पग-पग पर इसके दुःख का कारण हो रहा हूँ। मुझ पर इसका जो

असीम स्नेह है, वही इसे घोर सन्ताप पहुँचा रहा है। इसका यह कष्ट कैसे दूर होगा? सम्भव है यदि मैं इससे विवाह कर लूँ तो इसका मानसिक कष्ट दूर हो जाय। मुझे तो इसके साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं। संसार त्यागने के बाद से इसी का मुखावलोकन कर निरन्तर सुख और शान्ति का अनुभव करता आ रहा हूँ। इसी के संसर्ग में सदा आनन्द का उपभोग करता हूँ। किन्तु क्या यह मुझसे विवाह करने को तैयार होगी? इससे यह बात किस तरह से पूछूँ। ऐसा सोच कर योगिराज ने बनावटी हँसी हँस कर कहा—सीते, तुम किस तरह से सुखी होओगी, क्या करने से तुम्हारा कष्ट दूर होगा, यह मैं अब और तुमसे सुनना नहीं चाहता। अब मैंने समझ लिया कि तुम मुझे बिलकुल पराया समझती हो; तुम ठीक कहती हो, मैं स्त्री-स्वभाव को बिलकुल नहीं समझता; और न उसे कभी समझ ही सकता हूँ। किन्तु तुम यह कह कर इसके आगे और क्या कह रही थीं?

"याद नहीं क्या कह रही थी।"

"तुमने कहा नहीं था कि यदि मेरा वश चलता × × × यदि मैं अपने को उपयुक्त समझती × × ×"

गङ्गाबाई कुछ लज्जित-सी होगई। वह बोलीं—फिर वही बात दुहरवाना चाहते हो। मैं इतना ही कहे देती हूँ कि इस विषय में मैं और कुछ नहीं कहूँगी।

"नहीं, मैं उन बातों को फिर कभी नहीं दुहरवाना चाहता। किन्तु एक बात और पूछता हूँ। क्या लक्ष्मीबाई यह जानती हैं कि मेरा तुमसे पहले का परिचय है?"

गङ्गाबाई बोलीं—इसे क्यों पूछना चाहते हो?

"वह जानती हैं या नहीं, इसी बात को जानने के लिए।"

"उन्होंने मेरे मुँह से सभी बातों को सुन लिया है।"

"तुमने उनसे कहा क्यों?"

"बात के सिलसिले में सभी बातें कहनी पड़ीं।"

"बात का कैसा सिलसिला?"

योगिराज के मुँह से यह प्रश्न सुन कर गङ्गाबाई फिर सोचने लगीं—मन के जिस भाव को इनसे छिपाना चाहती हूँ, इनके प्रश्न उसी तरफ बहक रहे हैं। इस प्रकार सोच कर वह बोलीं—उन बातों को सुन कर क्या करोगे?

"सुन ही लूँगा तो क्या हानि होगी? तुम तो सभी बातें मुझसे छिपाना चाहती हो।"

गङ्गाबाई फिर कुछ लज्जित होकर बोलीं—वह कोई गम्भीर बात नहीं, वह तो एक मामूली सी बात है। यदि तुम सुनना ही चाहते हो तो मैं कह सकती हूँ। यह कह कर गङ्गाबाई कहने लगीं—एक महीने से अधिक हुआ, एक दिन बिलकुल अनमनी सी होकर तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ सोच रही थी। इतने में अकस्मात् मेरे मुँह से 'योगिराज' शब्द निकल गया। शब्द निकलते ही मैंने देखा कि लक्ष्मी-

बाई मेरे पीछे खड़ी खिलखिला कर हँस रही हैं। मैं उस समय लज्जित सी होगई। किन्तु जब उन्होंने इस बात को लेकर हँसी-मज़ाक करना शुरू कर दिया तो सब बातें उनसे साफ-साफ कह देनी पड़ी।

"उन्होंने क्या हँसी की थी ?"

"उन सब बातों को क्यों कहलवाना चाहते हो ? मैं नहीं कह सकती।"

अब योगिराज सोचने लगे कि गङ्गाबाई का हृदय अवश्य ही मेरे प्रति अविचलित रूप से अनुरक्त रहा है। इसलिए इस बार विवाह का प्रस्ताव करने का उन्हें साहस हुआ। उन्होंने कौशलपूर्वक पूछा—तुम्हें मालूम है, तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में तुम्हारे पिता का क्या अभिप्राय था ?

इस प्रश्न को सुन कर गङ्गाबाई सिर नीचा किए बैठी रहीं। योगिराज फिर कहने लगे—यह तो मैं नहीं जानता कि तुम उस समय अपने पिता का अभिप्राय समझ सकी थीं या नहीं; किन्तु उनकी एकान्त इच्छा थी कि तुमको मेरे हाथ में सौंप दें।

गङ्गाबाई सिर पूर्ववत् नीचे किए हुए पृथ्वी-तल पर दृष्टि स्थापित करके बोलीं—उन बातो की चर्चा करने से इस समय कोई लाभ नहीं।

"लाभ क्यों नहीं है ? तुम इस समय विधवा हो गई हो। तुम्हारे पिता विधवा-विवाह को शास्त्र-सम्मत समझते

हैं। यदि मुझे सुखी देखकर ही तुम्हारे मन में सुख का सञ्चार होता है तो अब मेरे जीवन की चिरसङ्गिनी होकर मुझे सुखी करो। तुम्हारा सम्मिलन मुझे चिरकाल के लिए सुखी बना सकेगा।

योगिराज की बात सुनकर गङ्गाबाई पहले सिर नीचे किए बैठी रही, फिर कुछ समय के बाद रोने लगीं।

उन्हे रोते देखकर योगिराज ने अनुमान किया कि मेरे प्रस्ताव से गङ्गाबाई के हृदय में चोट पहुँची है। अतः वह बड़ी नम्रतापूर्वक कहने लगे—सीते, मुझे क्षमा करो। मैंने हिता-हित-ज्ञान-शून्य होकर तुम्हारे सामने यह अनुचित प्रस्ताव रख दिया है। तुम्हारा हृदय कितना पवित्र है, कितना उच्च है—यह मैंने अभी तक नहीं समझा था। किन्तु यह ख्याल न करना कि केवल इन्द्रिय-लोलुपता के कारण मैंने तुम्हारे सामने यह प्रस्ताव रक्खा है। मै परमेश्वर का नाम लेकर कहता हूँ कि तुम्हारे हित की प्रबल कामना ने ही मुझे हिताहित-ज्ञान-शून्य बनाकर मेरे द्वारा तुम्हारे सामने यह अनुचित प्रस्ताव रखवा दिया है।

योगिराज की बात समाप्त होते ही गङ्गाबाई व्याकुल तथा अत्यन्त अधीर होकर कहने लगीं—तुम इन्द्रियों के अधीन होगे? तब इस संसार में जितेन्द्रिय कौन है? योगी कौन है? मैं ऐसा ख्याल कभी नहीं करती। मैं पापिनी, कलङ्किनी अस्पृश्या हो सकती हूँ, किन्तु अकृतज्ञा नहीं × × ×!

बाई मेरे पीछे खड़ी खिलखिला कर हँस रही हैं। मैं उस समय लज्जित सी होगई। किन्तु जब उन्होंने इस बात को लेकर हँसी-मज़ाक़ करना शुरू कर दिया तो सब बातें उनसे साफ़-साफ़ कह देनी पड़ीं।

"उन्होंने क्या हँसी की थी?"

"इन सब बातों को क्यों कहलवाना चाहते हो? मैं नहीं कह सकती।"

अब योगिराज सोचने लगे कि गङ्गाबाई का हृदय अवश्य ही मेरे प्रति अविचलित रूप से अनुरक्त रहा है। इसलिए इस बार विवाह का प्रस्ताव करने का उन्हें साहस हुआ। उन्होंने कौशलपूर्वक पूछा—तुम्हें मालूम है, तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में तुम्हारे पिता का क्या अभिप्राय था?

इस प्रश्न को सुन कर गङ्गाबाई सिर नीचा किए बैठी रहीं। योगिराज फिर कहने लगे—यह तो मैं नहीं जानता कि तुम उस समय अपने पिता का अभिप्राय समझ सकी थीं या नहीं; किन्तु उनकी एकान्त इच्छा थी कि तुमको मेरे हाथ में सौप दें।

गङ्गाबाई सिर पूर्ववत् नीचे किए हुए पृथ्वी-तल पर दृष्टि स्थापित करके बोलीं—उन बातों की चर्चा करने से इस समय कोई लाभ नहीं।

"लाभ क्यों नहीं है? तुम इस समय विधवा हो गई हो। तुम्हारे पिता विधवा-विवाह को शास्त्र-सम्मत समझते

गङ्गाबाई की ये बाते योगिराज की छाती मे तीर की भाँति चुभने लगीं। किन्तु गङ्गाबाई को मानसिक वेदना मे अत्यन्त अस्थिर देख कर उन्होंने बड़े कष्टपूर्वक अपने को सँभाला और धैर्य धारण कर, जब गङ्गाबाई कुछ स्थिर हुई तो बोले—फिर वही बात कहना आरम्भ करके उसे पूरा क्यो नही किया ? 'यदि मेरे वश की बात होती' इतना कह कर रुक क्यो गई ? जो कहना चाहती हो उसे कहो !

गङ्गाबाई कुछ धैर्य धारण कर बोली—मै पापिनी, कलङ्किनी हूँ। यदि ऐसी न होती तो जिस समय मैने सुना कि मुझे सुखी करने के लिए तुमने तीन वर्षों तक नङ्गे पाँव देश-विदेश भ्रमण किया है, उसी समय इन धूल-धूसरित चरणों को अपने बालो से पोंछ कर वक्षस्थल मे धारण करके चिर-सन्तप्त हृदय को शीतल कर लेती। किन्तु मै पापिनी हूँ, मैं कलङ्किनी हूँ, नर-पिशाच गङ्गाधरराव की उपपत्नी हूँ. तुम्हारे पैरो के स्पर्श करने के योग्य भी मैं नहीं हूँ। तुम जितेन्द्रिय योगी हो, तुम पुण्यात्मा हो : मै अस्पृश्या ! अस्पृश्या !! अस्पृश्या !!! यह कह कर गङ्गाबाई मूर्च्छित होगई।

योगिराज गङ्गाबाई की यह अवस्था देखकर एक बारगी शोक से अस्थिर हो गए। उनके हृदय मे मानो सैकड़ो तीर एक साथ चुभ गए। इस जीवन मे उन्होंने नाना प्रकार के शोक और दुःख सहे थे। अतः इस समय वह सहज ही धैर्य धारण कर सके। उन्होंने फुर्ती से ज़मीन पर से गङ्गाबाई को

इतना कह कर गङ्गाबाई पुनः रोदन करने लगीं। योगि-राज उन्हे इस प्रकार शोकाकुल देख कर बोले—सीते, तुम्हारे कहने का आशय मैंने ठीक-ठीक नहीं समझा। एक बार धैर्य धारण कर मन की सब बातें मेरे सामने खोल कर कहो।

जब योगिराज ने अत्यन्त कातर होकर अपनी मनोवेदना इस प्रकार प्रकट की तो गङ्गाबाई रुलाई रोक कर बोलीं—तुम मेरे हृदय की भस्माच्छादित अग्नि को प्रज्वलित करके मुझे क्यो जला रहे हो? संसार में सुख-भोग की मैं और आशा नही करती। तुम्हारे समान जितेन्द्रिय, ज्ञानी और सदाशय पुरुष-रत्न के घर में आने पर भी जब मैं उस रत्न को नहीं पा सकती, तो निश्चय ही इस संसार में मेरे सुखी होने की और सम्भावना नहीं है।

"तुम क्यों नही सुखी हो सकोगी? तुम क्यो नहीं मुझे पा सकोगी? मै तो सदा से तुम्हारा हूँ। मैं तुम्हारा; तुम्हारा योगेश, तुम्हारा योगिराज हूँ।"

"कभी नही! कभी नही! क्या कामासक्त नर-पिशाच राजा गङ्गाधरराव की उपपत्नी तुम्हारी जीवन-सङ्गिनी हो सकती है? क्या तुम्हारे चिर-पवित्र शरीर को मैं कलङ्कित करूँ? तुम जितेन्द्रिय हो, तुम योगी हो। यदि मेरे वश की बात होती—यदि मैं अपने को उपयुक्त समझती × × ×" इतना कह कर गङ्गाबाई उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगीं।

पहले-पहल अपना परिचय सीता (गङ्गाबाई) के पिता नारायण त्र्यम्बक शास्त्री को दिया था। किन्तु सीता उस समय भी मेरे विषय में कुछ नहीं जानती थी। झाँसी के महाराज की मृत्यु के बाद जिस समय मै आपके घर मे निवास कर रहा था, उस समय मैंने सीता को अपना हाल बताया था। मैं महाराष्ट्र नहीं, बङ्गाली ब्राह्मण हूँ। किन्तु ब्राह्मण-धर्म को छोड़ कर मैंने बहुत दिनो से ब्राह्म धर्म ग्रहण कर लिया है।

रानी लक्ष्मीबाई ने योगिराज का सारा हाल सुनना चाहा। तब योगिराज लक्ष्मीबाई को आनुपूर्विक अपनी समस्त कथा कह सुनाई। योगिराज के आत्म-विवरण को पुनः यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। पाठकगण इसके पहले ही सब जान चुके हैं। योगिराज की दोनो छोटी बहिनो की मृत्यु का शोकजनक हाल सुन कर लक्ष्मीबाई ने हृदयावेग से उत्तेजित होकर कहा—इस हिन्दू-शास्त्र और हिन्दू-धर्म को मैं भी ठोकर मारती हूँ। रसातल जाय इस प्रकार का हिन्दू-धर्म और इस प्रकार का हिन्दू-शास्त्र !

वस्तुतः इस संसार मे वीर-हृदय ही दया, माया, स्नेह तथा ममता का एकमात्र आधार और एकमात्र निवास-स्थान है। कायरों का हृदय दया-माया से रहित होता है। वीर के अशिक्षित और निपढ़ होने पर भी, वीर के कुसंस्कारग्रस्त समाज में जन्म ग्रहण करने पर भी, देश के प्रचलित धर्म, देश के प्रचलित शास्त्र और देश के प्रचलित आईन-कानून

सिर उठा कर अपनी गोद में ले लिया और अपने वस्त्र से उन्हे हवा करने लगे। गङ्गाबाई अब भी अचेत पड़ी थीं। इसी समय लक्ष्मीबाई क़िला देख-भाल कर लौटीं। उन्होंने कमरे मे आते ही देखा कि गङ्गाबाई का मस्तक गोद मे लिए हुए योगिराज उन्हे हवा कर रहे हैं। लक्ष्मीबाई को देख कर योगिराज कुछ लज्जित से हो गए। किन्तु लक्ष्मीबाई ने मुस्कराते हुए कहा—आप कुण्ठित न होइए। मैं सब जानती हूँ।

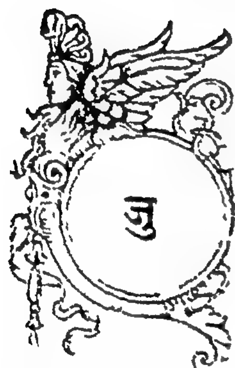
लक्ष्मीबाई गङ्गाबाई को होश मे लाने की चेष्टा करने लगीं। कुछ देर के बाद गङ्गाबाई को होश आया। किन्तु उनका शरीर बिलकुल सुन्न पड़ गया था। लक्ष्मीबाई स्वयं उन्हे गोद में लेकर शय्या पर बैठीं और दो-तीन दासियाँ हवा करने लगीं।

लक्ष्मीबाई योगिराज को दूसरे कमरे में ले जाकर उनसे कहने लगीं—आप लज्जित न होइए, आपका कोई अपराध नहीं। आपकी अनुपस्थिति में गङ्गाबाई आपकी चिन्ता मे समय-समय पर शोकाकुल हो जाया करती थीं। मैंने सुना है कि गङ्गाबाई के पिता ने आपके हाथो में गङ्गाबाई को समर्पित करना चाहा था। क्या आप महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं? उनके पिता के स्वजातीय हैं?

इस प्रश्न के उत्तर में योगिराज बोले—बहिन, मै पहले किसी को भी अपना परिचय नहीं दिया करता था। मैंने

नौवाँ परिच्छेद

भारत पराधीन क्यों रहेगा ?



जुलाई मास के अन्तिम सप्ताह में योगिराज झाँसी पहुँचे थे। देखते-देखते जुलाई, अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर के महीने भी बीत गए। अङ्गरेज लोग अब तक झाँसी पर आक्रमण करने के लिए सेना नहीं भेज सके। योगिराज इस समय दो कामों के लिए प्राणपण से चेष्टा कर रहे थे। किन्तु गत चार महीने तक कठिन परिश्रम करने पर भी दोनों कामों में से उन्होंने एक भी पूरा नहीं कर पाया। उनका पहला काम लक्ष्मीबाई से अङ्गरेजों की पराधीनता स्वीकार कराना था और दूसरा काम गङ्गाबाई से विवाह करके उन्हें सुखी करने की चेष्टा करना था। पहले कार्य के साधन के लिए उन्होंने लक्ष्मीबाई से भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल लॉर्ड कैनिङ्ग के पास पत्र लिखने को कहा। लक्ष्मी-

उसके वीर-हृदय को कभी अपने वश मे नहीं कर सकते। वीर-प्रकृति के लोग स्वरचित धर्म, स्वरचित शास्त्र एवं स्वरचित आईन-क़ानून को छोड़ कर दूसरो के बनाए हुए धर्मशास्त्र एवं दूसरों के बनाए हुए आईन-क़ानून द्वारा कभी शासित नहीं होते। वीराङ्गना लक्ष्मीबाई का हृदय असीम वीरता से परिपूर्ण था। बाल्यावस्था से हिन्दू-धर्म की शिक्षा पाने पर भी तथा बाल्य-शिक्षा के कारण हिन्दू-शास्त्रों पर अटल विश्वास होने पर भी, जीवन की विशेष घटनाओं के कारण उन्होंने देश-प्रचलित शास्त्र, देश-प्रचलित धर्म एवं आचार-व्यवहार को पूर्णतः अग्राह्य माना। इस समय योगि-राज की दोनों बहिनो की मृत्यु का शोचनीय वर्णन सुनते ही उनका सरल हृदय एक बारगी द्रवीभूत होगया। इसी से हिन्दू-शास्त्रो के सम्बन्ध में उन्होंने ऐसा विरक्ति का भाव दर्शाया।

पूर्वजो के बनाए हुए शास्त्र तथा देश-प्रचलित धर्म और आचार-व्यवहार वीरों के लिए नहीं—घृणित कायरों के लिए हैं।



का ज्ञान कहाँ है ? किस विचार से उन्होंने मेरे तथा सौतो के शरीर पर के गहने तक अपहरण कर लिए थे ? इस समय इन्हीं चोर व डाकुओं के निकट विचार की प्रार्थना करूँ ?

योगिराज इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि जब तक रानी इस प्रकार अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार कर, विचार की प्रार्थिनी नहीं बनेंगी, तब तक अङ्गरेज कभी लड़ाई करने से बाज़ न आएँगे। इसी से पाण्डुलिपि में उन्होंने विचार की बात लिखी थी। किन्तु रानी किसी तरह से भी अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न हुईं।

योगिराज ने झाँसी पहुँच कर रानी के प्रथम दिन की बातचीत के बाद यह आशा की थी कि धीरे-धीरे रानी को ठीक रास्ते पर ला सकूँगा। पहले दिन ही अधिक दिक करने से कार्य-सिद्धि में बाधा पहुँच सकती है। इसलिए वह गत चार महीने से इस विषय में धीरे-धीरे चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने कई युक्तियों और तर्कों से रानी को यह बात समझाने की चेष्टा की, किन्तु रानी के मन में नीचता, कायरता और भय किसी भी प्रकार प्रवेश नहीं कर सके। वह मामूली स्त्री नहीं, वीराङ्गना लक्ष्मीबाई थीं !

योगिराज का दूसरा अभीष्ट भी सिद्ध नहीं हुआ। वह गङ्गाबाई के सामने ज्योंही विवाह का प्रस्ताव रखते, त्योंही वह आँसू बहाने लगतीं और कभी-कभी तो अन्यत्र विचार

बाई के पिता के साथ परामर्श करके उन्होंने अङ्गरेज़ी मे पत्र की एक पाण्डुलिपि (मसविदा) भी तैयार की। पाण्डुलिपि मे यह लिखा गया—"झाँसी के हत्याकाण्ड से लक्ष्मीबाई का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। हत्याकाण्ड के पहले वह इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानती थीं। स्वयं अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट के सिपाहियों ने विद्रोही होकर जब झाँसी के अङ्गरेज़ों की हत्या की तो केवल शान्ति-रक्षा के लिए रानी ने राज्य-शासन का भार अपने ऊपर लिया। अङ्गरेज़ों के झाँसी मे आते ही रानी उनके हाथों में राज्य-शासन का सूत्र सौंप देंगी। इसके अतिरिक्त वह अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट के पास आत्म-समर्पण करके झाँसी हत्या काण्ड के सम्बन्ध में अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत हैं। इसलिए वह अङ्गरेजी न्याय की प्रार्थना करती हैं।

इस पाण्डुलिपि में लिखी हुई अन्तिम दो बातो पर हस्ताक्षर करने के लिए वह किसी प्रकार भी सहमत न हुई। वह कहने लगीं कि राज्य को वापस करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। किन्तु अङ्गरेज़ो के हाथो मे आत्म-समर्पण करने के लिए अथवा अङ्गरेज़ी सरकार के पास विचार-प्रार्थी होने के लिए मैं किसी भी प्रकार तैयार नहीं। जब योगिराज ने इस पाण्डुलिपि को पढ़ कर सुनाया तो वह क्रोधोन्मत्त होकर कहने लगीं—नीच अङ्गरेज़ों के पास विचार की प्रार्थना करूँ? उनमें विचार है ही कहाँ? उन्हें न्यायान्याय और धर्माधर्म

का ज्ञान कहाँ है ? किस विचार से उन्होंने मेरे तथा सौतो के शरीर पर के गहने तक अपहरण कर लिए थे ? इस समय इन्ही चोर व डाकुओं के निकट विचार की प्रार्थना करूँ ?

योगिराज इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि जब तक रानी इस प्रकार अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार कर, विचार की प्रार्थिनी नही बनेंगी, तब तक अङ्गरेज कभी लड़ाई करने से बाज़ न आएँगे। इसी से पाण्डुलिपि मे उन्होंने विचार की बात लिखी थी। किन्तु रानी किसी तरह से भी अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न हुई।

योगिराज ने झाँसी पहुँच कर रानी के प्रथम दिन की बातचीत के बाद यह आशा की थी कि धीरे-धीरे रानी को ठीक रास्ते पर ला सकूँगा। पहले दिन ही अधिक ढिक करने से कार्य-सिद्धि मे बाधा पहुँच सकती है। इसलिए वह गत चार महीने से इस विषय मे धीरे-धीरे चेष्टा कर रहे थे। उन्होने कई युक्तियों और तर्कों से रानी को यह बात समझाने की चेष्टा की, किन्तु रानी के मन मे नीचता, कायरता और भय किसी भी प्रकार प्रवेश नहीं कर सके। वह मामूली स्त्री नहीं, वीराङ्गना लक्ष्मीबाई थीं !

योगिराज का दूसरा अभीष्ट भी सिद्ध नहीं हुआ। वह गङ्गाबाई के सामने ज्योंही विवाह का प्रस्ताव रखते, त्योंही वह आँसू बहाने लगती और कभी-कभी तो अत्यन्त विलाप

करती हुई कहने लगती कि मेरे अन्दर जो आग सुलग रही है, वह बहुत जल्द चिता की आग से मिल कर बुझ जायगी। मुझे अब अधिक दिनों तक कष्ट भोगना न पड़ेगा। सांसारिक भोग-विलास और ऐशो-आराम के लिए मै अपने प्राण से भी प्यारे योगेश को कभी कलङ्कित नहीं कर सकती। इस पापी शरीर के नष्ट हो जाने पर परलोक मे हम लोगो का सम्मिलन होगा।

योगिराज शास्त्रो की अनेक बाते कह कर गङ्गाबाई का प्रबोधन करते। नाना प्रकार से उन्हें सान्त्वना देते; किन्तु स्वार्थपरता और आत्मसुख-चिन्तन का भाव गङ्गाबाई के हृदय मे किसी प्रकार प्रवेश नहीं कर सका। वह किसी भी प्रकार योगिराज के प्रस्ताव से सहमत न हुईं।

उधर अङ्गरेज लोग युद्ध के लिए विविध तैयारियाँ कर रहे थे। इङ्गलैण्ड से अङ्गरेजी सेना भेजी जा रही थी। सर कॉलिन कैम्बेल (Sir Colin Campbell) भारतवर्ष के सबसे बड़े सेनाध्यक्ष बनकर १३ वीं अगस्त को कलकत्ता पहुँचे। इसके थोड़े समय बाद वर्षा के व्यतीत हो जाने पर शरद्-ऋतु के प्रारम्भ में सर जनरल ह्यूरोज़ ने इङ्गलैण्ड से बम्बई पहुँच कर मध्य-भारत के विद्रोह को दमन करने का भार लिया। सर जेम्स ओट्रम (Sir James Outram) सर हेनरी लॉरेन्स के पद पर नियुक्त होकर लखनऊ पहुँचे।

सर कॉलिन कैम्बेल के भारत पहुँचने के पहले ही उनके

पूर्वाधिकारी भारत के प्रधान सेनाध्यक्ष सर पेट्रिक ग्राण्ट ने जनरल हैवलॉक (General Havelock) को अङ्गरेज़ क़ैदियो के उद्धारार्थ कानपुर भेज दिया था। हैवलॉक ने कानपुर पहुँचते ही नाना साहब के सिपाहियो को पराजित किया। नाना, अज़ीमुल्ला और ताँतिया टोपी बिठूर से भाग खड़े हुए। किन्तु अज़ीमुल्ला ने बिठूर से भागने के पूर्व सवेदा कोठी के सारे अङ्गरेज़ क़ैदियों को जान से मरवा डाला था। स्त्री-पुरुष, बालक, कोई भी न बचने पाया। विद्रोही सिपाही जब रोग-शय्या पर सोई हुई अङ्गरेज़-महिलाओ का शिरच्छेदन करने के लिए तैयार न हुए तो नाना साहब की उपपत्नी आदिला की बाँदी बेगमी ने हाथ मे तलवार ले एक-एक करके प्रायः पचास रोगी मेमो की गर्दनें उड़ा दी। मुसलमान-घरों की बाँदियाँ ठीक चमार के कुत्ते की तरह दया-शून्य होती हैं। लज्जा और शील छोड़-छोड़ कर अपने मालिको के अत्याचार और उत्पीड़न सहन करने के कारण उनकी प्रकृति एकदम निष्ठुर हो जाती है। कानपुर के इस भीषण हत्याकाण्ड के कारण भारतीय इतिहास के पन्ने सदा के लिए कलङ्कित हो गए हैं। इसी भीषण हत्याकाण्ड ने भारतवासियो के नाम को यूरोपीय सभ्य-समाज में कलङ्कित कर रक्खा है।

ताँतिया टोपी बिठूर से भाग कर नवम्बर के पहले ही सेना इकट्ठी करके कानपुर को पुनः अपने अधिकार में

करती हुई कहने लगतीं कि मेरे अन्दर जो आग सुलग रही है, वह बहुत जल्द चिता की आग से मिल कर बुझ जायगी। मुझे अब अधिक दिनो तक कष्ट भोगना न पड़ेगा। सांसारिक भोग-विलास और ऐशो-आराम के लिए मैं अपने प्राण से भी प्यारे योगेश को कभी कलङ्कित नहीं कर सकती। इस पापी शरीर के नष्ट हो जाने पर परलोक मे हम लोगो का सम्मिलन होगा।

योगिराज शास्त्रों की अनेक बाते कह कर गङ्गाबाई का प्रबोधन करते। नाना प्रकार से उन्हें सान्त्वना देते; किन्तु स्वार्थपरता और आत्मसुख-चिन्तन का भाव गङ्गाबाई के हृदय मे किसी प्रकार प्रवेश नहीं कर सका। वह किसी भी प्रकार योगिराज के प्रस्ताव से सहमत न हुईं।

उधर अङ्गरेज लोग युद्ध के लिए विविध तैयारियाँ कर रहे थे। इङ्गलैण्ड से अङ्गरेजी सेना भेजी जा रही थी। सर कॉलिन कैम्बेल (Sir Colin Campbell) भारतवर्ष के सबसे बड़े सेनाध्यक्ष बनकर १३ वीं अगस्त को कलकत्ता पहुँचे। इसके थोड़े समय बाद वर्षा के व्यतीत हो जाने पर शरद्-ऋतु के प्रारम्भ मे सर जनरल ह्यूरोज ने इङ्गलैण्ड से बम्बई पहुँच कर मध्य-भारत के विद्रोह को दमन करने का भार लिया। सर जेम्स औट्रम (Sir James Outram) सर हेनरी लॉरेन्स के पद पर नियुक्त होकर लखनऊ पहुँचे।

सर कॉलिन कैम्बेल के भारत पहुँचने के पहले ही उनके

नवम्बर को वह इस असार-संसार से चल बसे। जनरल नील गत सितम्बर महीने में ही लखनऊ के विद्रोहियों के गोले से जख़्मी होकर परलोक सिधार चुके थे। कानपुर में उस समय जनरल विण्डहम अपनी सेना के साथ ठहरे हुए थे। २६ वीं नवम्बर को ताँतिया टोपी ने जनरल विण्डहम पर आक्रमण किया। २७ वीं और २८ वीं तारीख़ों को दोनों दलों में ख़ूब घमासान लड़ाई हुई। वीर-श्रेष्ठ ताँतिया ने अङ्गरेज़ी सेना को हराकर कानपुर पर फिर से अपना क़ब्ज़ा जमा लिया। नाना साहब को पुनः एक बार बिठूर के राजभवन में निवास करने का मौक़ा मिला। किन्तु इस जय के चिरस्थायी होने की सम्भावना न थी। परमेश्वर को नाना के जैसे अकर्मण्य लोगों के हाथ में भारत का शासन-सूत्र रहने देना स्वीकार नहीं था।

कानपुर में अङ्गरेजी सेना के पराजय का समाचार सुन कर प्रधान सेनापति सर कोलिन कैम्बेल स्वयं सेना-सहित फ़ौरन कानपुर पहुँच गए। दिसम्बर महीने के प्रारम्भ में दोनों दलों में ख़ूब छुटकर युद्ध हुआ। अन्त में अङ्गरेजों की जीत हुई। नाना और अजीमुल्ला दोनों ने भाग कर नैपाल में प्रवेश किया। ताँतिया अपने सैनिकों के साथ भाग कर कालपी लौट आया और फिर युद्ध के लिए सैनिक इकट्ठे करने लगा। वह थोड़े ही समय में पुनः अङ्गरेजों के साथ लोहा लेने के लिए प्रस्तुत हो गया। विद्रोही सिपाही यदि

लाने की चेष्टा करने लगा। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री पहले ही जो कहा करते थे, ठीक वही हुआ। नाना और अज़ीमुल्ला इस समय ताँतिया की कृपा के भिखारी बने। उन लोगों ने सभी बातों में ताँतिया की अधीनता स्वीकार की। ताँतिया का असाधारण तेज, वीरत्व, सहिष्णुता, धैर्य और त्याग देख कर चारों ओर से दल के दल सिपाही आ-आकर उसके सैन्य की संख्या बढ़ाने लगे। ताँतिया ने पहले समझा था कि मैं दीन-हीन हूँ। इस दीन दशा में नाना साहब के समान किसी राजपुरुष को अगुआ बनाए बिना सेना इकट्ठी करने में सुविधा न होगी। किन्तु अब उसने देखा कि मूर्ख, इन्द्रिय-लोलुप और कायर राजपुरुष के नाम पर सेना एकत्र नहीं होती। वीरता और सहृदयता ही लोगों को आकर्षित करती है। ग्वालियर के महाराज की सारी सेना आकर ताँतिया की सेना में मिल गई। वृद्ध नारायण त्र्यम्बक शास्त्री ने अब भी ताँतिया का साथ न छोड़ा। वह उसके साथ रह कर समय-समय पर उसे सलाह और उपदेश दिया करते थे।

नवम्बर महीने के अन्तिम सप्ताह में ताँतिया अपनी सेना लेकर कालपी पहुँचा। किन्तु उसके कालपी पहुँचने के पहले ही रानी लक्ष्मीबाई के सैनिक कालपी छोड़ कर झाँसी वापस आगए थे। ताँतिया ने कालपी में अधिक समय न गँवा कर सीधे कानपुर की यात्रा की। जनरल हैवलॉक इसके पहले ही कानपुर को छोड़ कर लखनऊ चले गए थे। वहाँ २४ वीं

नवम्बर को वह इस असार-संसार से चल बसे। जनरल नील गत सितम्बर महीने में ही लखनऊ के विद्रोहियों के गोले से जख्मी होकर परलोक सिधार चुके थे। कानपुर में उस समय जनरल विण्डहम अपनी सेना के साथ ठहरे हुए थे। २६ वीं नवम्बर को ताँतिया टोपी ने जनरल विण्डहम पर आक्रमण किया। २७ वीं और २८ वीं तारीखों को दोनों दलों में ख़ूब घमासान लड़ाइ हुई। वीर-श्रेष्ठ ताँतिया ने अङ्गरेज़ी सेना को हराकर कानपुर पर फिर से अपना क़ब्ज़ा जमा लिया। नाना साहब को पुनः एक बार बिठूर के राजभवन में निवास करने का मौका मिला। किन्तु इस जय के चिरस्थायी होने की सम्भावना न थी। परमेश्वर को नाना के जैसे अकर्मण्य लोगों के हाथ में भारत का शासन-सूत्र रहने देना स्वीकार नहीं था।

कानपुर में अङ्गरेज़ी सेना के पराजय का समाचार सुन कर प्रधान सेनापति सर कोलिन कैम्बेल स्वयं सेना-सहित फौरन कानपुर पहुँच गए। दिसम्बर महीने के प्रारम्भ में दोनों दलों में ख़ूब छुटकर युद्ध हुआ। अन्त में अङ्गरेज़ों की जीत हुई। नाना और अजीमुल्ला दोनों ने भाग कर नैपाल में प्रवेश किया। ताँतिया अपने सैनिकों के साथ भाग कर कालपी लौट आया और फिर युद्ध के लिए सैनिक इकट्ठे करने लगा। वह थोड़े ही समय में पुनः अङ्गरेज़ों के साथ लोहा लेने के लिए प्रस्तुत हो गया। विद्रोही सिपाही यदि

प्राणो के भय से कायरतापूर्वक भाग न खड़े होते तो ताँतिया के समान वीर पुरुष कभी पराजित न हो सकता।

झाँसी की प्रजा ने जब सुना कि लक्ष्मीबाई के पिता और योगिराज रानी लक्ष्मीबाई से झाँसी को अङ्गरेजों के हाथ में सौंप देने का अनुरोध कर रहे है तो वह बड़ी दुःखी हुई। सब लोग रानी को युद्ध के लिए तैयार होने को उत्साहित करने लगे। झुण्ड के झुण्ड नगरनिवासी स्थान-स्थान पर इकट्ठे होकर बड़े उत्साह के साथ रानी की जयध्वनि करने लगे—"महारानी लक्ष्मीबाई की जय! रानी लक्ष्मीबाई के लिए प्राण विसर्जन करेंगे! बिना युद्ध किए फिरङ्गियों को झाँसी मे पैर नहीं रखने देंगे!" जहाँ देखिए यही शब्द आकाश में गूँजते दिखाई पड़ते थे।

रानी प्रात.काल तथा तीसरे पहर जब किला देखने के लिए जातीं तो चारों ओर से इसी प्रकार की जयध्वनि उठने लगती। योगिराज के आग्रह और अश्रुपात से रानी के मन में युद्ध से विरत होने की जो भावना पैदा होती, वह प्रजा की जय-ध्वनि और उत्साह-भरी बातें सुनकर शीघ्र अन्तर्धान हो जाती।

देखते देखते दिसम्बर, जनवरी तथा फरवरी के महीने बीत गए। मार्च के प्रारम्भ में चारों ओर से यह अफवाह सुनाई पड़ने लगी कि जनरल ह्यूरोज़ झाँसी पर आक्रमण करने वाले हैं। योगिराज ने देखा कि अधिक विलम्ब नहीं

किया जा सकता। वह मार्च मास के प्रारम्भ में एक दिन भोजन करने के बाद रानी के कमरे मे जाकर कहने लगे— वहिन, इस युद्ध मे आप कभी जय प्राप्त न कर सकेंगी। भारतवर्ष के भाग्य मे पराधीनता दीर्घकाल के लिए अङ्कित होगई है। युद्ध करने से आप अब भी विरत हो।

"भारतवर्ष पराधीन क्यो रहेगा? जय-लाभ क्यो न होगा?"

"भारतवासियो के पाप के कारण।"

"क्या भारतवासी अङ्गरेजों से भी अधिक पापी हैं?"

"अङ्गरेजों से हजार गुना बढ़ कर पापी हैं।"

"और अङ्गरेज़ बड़े पुण्यात्मा है? जो लोग चोर और डाकुओं की भाँति देश का धन दिन-दहाड़े लूट रहे हैं, उनमें धर्म का भाव कहाँ है? क्या उन्हें पाप नहीं लगता?"

"अङ्गरेजो के चोर और डाकू होने पर भी उनके आचरण में धर्म का भाव बहुत अधिक है।"

"आचरण मे धर्म का भाव! गोमांसभक्षियों के आचरण मे भी धर्म का भाव शेष रह गया है? उनके आचरण में कौन सा धर्म का भाव पाया जाता है? 'यतो-धर्मस्ततो जयः'—यदि गान्धारी का यह वाक्य सत्य है तो हम लोगों की विजय अवश्य होगी। अङ्गरेजों में कौन सा धर्म है? न्यायान्याय का विवेक तक तो उनमें है नहीं। यदि उनमें धर्म का ही ज्ञान होता तो क्या वे हमारे देशवासियों

की सम्पत्ति को इस प्रकार लूटते ? यदि उनमें न्याय का ही भाव होता तो क्या वे हज़ारों निरपराध भारतवासियों की इस प्रकार निःसङ्कोच होकर हत्या करते ?"

"बहिन, अङ्गरेज़ लोग विद्रोह के कारण बैर-शोधन के भाव से प्रेरित होकर हज़ारों मनुष्यों की जान ले रहे हैं। इस समय उनके हृदय में प्रतिहिंसा की आग सुलग रही है। इसी से वे लोग इस प्रकार के नृशंस अत्याचार कर रहे हैं। किन्तु इस देश के लोग तो अज्ञानता और कुसंस्कारों के कारण सदा नर-हत्या किया करते हैं ! पिता पुत्र और पुत्री की हत्या करता है। पुत्र पिता-माता की हत्या करके प्रसन्न होता है, भाई बहिन की जान ले रहा है और समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने दूषित आचार-व्यवहार के कारण अपने पड़ोसियों का सर्वनाश कर रहा है। इस देश के ही लोगों में कौन सा धर्म-भाव, दया-भाव या न्यायान्याय का ज्ञान बाक़ी है ? सामाजिक कुरीतियों और कुसंस्कारों के कारण परमेश्वर का दिया हुआ निस्स्वार्थ मातृस्नेह तक इस देश में कलुषित हो गया है। अङ्गरेज़ लोग घोर पापी, निष्ठुर और धोखेबाज़ होने पर भी इस देश के लोगों की तरह एक बारगी आत्माहीन पशु नहीं हैं, इसीलिए उनके राजच्युत होने की सम्भावना नहीं। जब तक इस देश के जन-साधारण की मानसिक तथा नैतिक उन्नति न होगी, तब तक यह देश कभी आत्म-शासन के योग्य न होगा।"

"तो क्या अङ्गरेज़ लोग चिरकाल तक इस देश मे राज्य करते रहेंगे ?"

"चिरकाल तक वे इस देश मे राज्य करते रहेगे या नहीं, यह तो कोई नहीं कह सकता। किन्तु अपने देश की वर्तमान अवस्था में कोई उन्हे राज्यच्युत नहीं कर सकता।"

"क्या देश के सभी लोग मिलकर भी अङ्गरेजों को राज्य-च्युत नहीं कर सकेंगे ?"

"देश के सभी लोगो के मिलने की इस समय सम्भावना नहीं है।"

"सम्भावना क्यों नही है ?"

"किस प्रकार देश के सभी लोग एक साथ मिल सकते हैं ? जिस देश में एक श्रेणी का व्यक्ति दूसरी श्रेणी के लोगो को स्पर्श तक करने से घृणा करता है, क्या उस देश के लोगों में कभी एकता हो सकती है। मद्रास मे मैं लगभग तीन वर्ष तक रह चुका हूँ। जब मद्रास की दशा मुझे याद आती है, तो मेरे दुःख का ठिकाना नहीं रहता। मद्रास के लोगों को तो हिंस्र जन्तुओ से भी अधिक निष्ठुर पशु कहने की इच्छा होती है।"

"मद्रास के लोगो ने क्या किया है ?"

"मद्रास के उच्च कुल के लोग निम्न-श्रेणी के लोगों को स्पर्श करने में भी घृणा करते हैं। नीची श्रेणी के सैकड़ो अनाथ बच्चे सारी रात वृक्ष-तले बिता देते हैं, किन्तु उच्च

श्रेणी के लोगों के घर के बाहरी भाग तक में प्रवेश नही करने पाते। एक बार माघ महीने की कड़ी सर्दी में बिना घर और बिना माँ-बाप के सात-आठ वर्ष के दो बच्चे सन्ध्या-काल एक भद्र पुरुष के घर पर पहुँचे। उस भले आदमी ने उन अछूत बच्चों को अपने घर के बरामदे तक में घुसने न दिया। दोनो बच्चे माघ मास की कड़ी सर्दी मे नङ्गे शरीर वृक्ष के नीचे सारी रात गँवा कर दूसरे दिन मौत के शिकार हुए। तुम्हीं देखो, क्या अङ्गरेज इतने निष्ठुर हैं? उनमें तो अपनी जाति और अपने देश के प्रति इतना स्नेह-भाव है कि जब वे सुन पाते हैं कि अमुक स्थान के सिपाहियों ने दो-चार अङ्गरेजों की हत्या की है, तो वे उस स्थान के सभी सिपाहियो के प्राण लेने पर उतारू हो जाते हैं। तुम मद्रास वालो की सारी निठुराइयों की कहानी सुन लो तो उन्हे कभी मनुष्य न कहोगी। बड़े घर की दास-दासियाँ जब घर का जूठा अथवा बचा-खुचा भोजन फेंकने लगती हैं, तो उन्हीं के साथ-साथ पीड़ित और प्रताड़ित अछूत जाति के लड़के और लड़कियाँ भी उस भोजन को खाने के लिए दौड़ पड़ती हैं। इन बातों को कहते समय मेरी छाती फटने लगती है। जिस देश के अधिवासी सामाजिक कुरीतियों के कारण अपने पड़ोसियों के साथ इतना नीच आचरण करते हों, वह देश क्या कभी स्वाधीन हो सकता है? इस देश के लोग चिरकाल से इन कुरीतियों को अपनाए हुए हैं और

इनके कारण दूसरों की तो बात ही क्या, वे स्वयं अपने लड़के-लड़कियों तक की हत्या कर रहे है। इसी से वे चिरकाल तक पराधीन रहेंगे !"

"पुत्र-पुत्रियों की हत्या करते कहाँ देखा ?"

"भारतवर्ष के सभी प्रान्तो मे माता-पिता सामाजिक कुरीतियो और दूषित देशाचारो के कारण अपने लड़के-लड़कियो की हत्या कर रहे है। क्या मेरे माता-पिता ने मेरी दोनो बहिनों की हत्या नहीं की है ? यदि देश के सभी लोग कायर न होते तो क्या वे कभी इन घृणित कुप्रथाओ के समक्ष मस्तक नवा कर जीवन व्यतीत कर सकते ? जिस देश के लोग सामाजिक कुप्रथाओ की बेड़ी तोड़ कर अपने को आज़ाद नहीं कर सकते, अपनी मानसिक और आत्मिक शक्तियो को स्वतन्त्र नहीं कर सकते, वह देश क्या कभी राजनीतिक स्वराज्य प्राप्त कर सकता है ? कभी नहीं कर सकता।"

"क्या आपके ही माता-पिता की तरह इस देश के सभी लोग सन्तानघातक हैं ?"

"बङ्गाल प्रान्त में एक नहीं, हज़ारो आदमी मेरे माता-पिता की अपेक्षा अपनी सन्तान पर कहीं अधिक घोर अत्याचार और नृशंस व्यवहार करते हैं। मैंने अपनी दोनों बहिनो के मरने के बाद केवल-मात्र लोगों की पारिवारिक निष्ठुरताओ को देखने के लिए समस्त बङ्गाल में भ्रमण

किया। घोर निर्दयता के जितने असंख्य उदाहरण मैंने देखे हैं, उन सबका वर्णन करने लगूँ तो एक महीने में भी वे समाप्त न होंगे। बङ्गाल का प्रत्येक हिन्दू-परिवार स्त्रियों और बालिकाओं के लिए एक प्रकार का क़साईख़ाना है। देश एकबारगी पाप में डूबा हुआ है। इस मनुष्यघाती जाति के लिए स्वाधीन होना कभी सम्भव नहीं। तुम युद्ध से बाज़ आओ। तुम्हारे जीवित रहने से देश के असंख्य लोगों का अनन्त उपकार होगा।"

"बङ्गाल मे आपने कौन-कौन से नृशंस आचरण देखे हैं, इसे आपके मुँह से सुनने की मेरी बड़ी प्रबल इच्छा हो रही है?"

"जितने प्रकार के निष्ठुर व्यवहार देखे हैं, उन सबका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है।"

"अधिक नहीं तो दो-एक ही कहिए!"

योगिराज रानी लक्ष्मीबाई की बातों से इस प्रकार चारों ओर से घिर जाने पर कहने लगे—"बहिन, सन्तान-हत्या के सम्बन्ध मे मैं आपको एक आश्चर्यजनक घटना सुनाता हूँ, इसे सुनिए। मेरा जहाँ तक अनुमान है, आपने ऐसी आश्चर्यजनक घटना अपनी ज़िन्दगी में कभी न सुनी होगी। बङ्गाल में भ्रमण करते समय मैं एक बार नदिया ज़िले के प्रसिद्ध स्थान में एक सज्जन के घर पर ठहरा हुआ था। वह महाशय पहले हिन्दू-कॉलेज में शिक्षक थे। पीछे

डिप्टी मैजिस्ट्रेट हो गए थे। उनसे पहले से ही मेरा परिचय था। उनकी एक सात वर्ष की कन्या विधवा हो गई। वह बालिका बहुत सुन्दर थी। जब मैं उनके घर पर रहता था तो वह कभी-कभी मेरे पास आकर बैठती थी। उस समय उसमें इतना भी समझने की बुद्धि नहीं थी कि मैं विधवा हो गई हूँ। किन्तु ९ बजने के बाद मैं कभी उस बालिका को बाहर नहीं पाता था। उस बालिका के लिए मेरा हृदय रोता था। एक दिन दोपहर को मैंने उस घर की एक दासी से उस बालिका को बुला लाने को कहा। दासी बोली—"वह भोजन-पात्र के निकट सोई हुई है, इस समय उस स्थान से नहीं उठ सकती।" भोजन-पात्र के निकट सोई है—इसका मैं कुछ मतलब न समझ सका। बाद में उसी दासी से पूछ-ताछ करने पर पता चला कि जब से वह लड़की विधवा हुई, तब से उसके माँ-बाप तथा अन्य आत्मीय लोग दूसरी विधवाओं की तरह उसे भी एकाहारी रखने की चेष्टा करने लगे। किन्तु वह सात वर्ष की बालिका भला एक बार भोजन करके किस प्रकार जीवन धारण कर सकती थी? विशेषत: हमारे देश की विधवाएँ तीसरे पहर तीन बजे भोजन करती हैं। नौ बजते-बजते वह लड़की भूख-प्यास से व्याकुल हो जाती और भोजन न मिलने पर चिल्लाने लगती। बालिका के घर वालों ने देखा कि नौ बजे उसे खाना देना ही होगा। इसके बगैर काम नहीं चल सकता।

किन्तु केवल नौ बजे एक बार खाकर वह तमाम दिन-रात अनाहार नहीं रह सकती थी। इसलिए उन लोगों ने बालिका से ब्रह्मचर्य का पालन कराने के लिए एक नए नियम का आविष्कार किया। वे लोग नौ बजे उस बालिका को भोजन करने के लिए देते और भोजन कर चुकने के बाद उस बालिका को भोजन-पात्र के निकट एक वस्त्र बिछा कर सुला देते। भोजन का पात्र उसके अतिरिक्त और कोई नहीं छूने पाता। वह बालिका जूठे हाथ और जूठे मुँह भोजन-पात्र के पास नौ बजे से लेकर तीसरे पहर के चार बजे तक सोती रहती या बैठ कर समय बिताती। इससे उसे असहनीय कष्ट भोगना पड़ता। तीसरे पहर चार बजे उस बालिका को उसी भोजन-पात्र में फिर खाना देते। चार बजे खाना खाकर वह भोजन-पात्र छोड़ देती। भोजन में इस प्रकार अनियम होने से वह बालिका थोड़े ही समय में रोग-ग्रस्त होकर मर गई।"*

योगिराज की बात अभी समाप्त भी न होने पाई थी कि लक्ष्मीबाई ने अधीर होकर पूछा—इस प्रकार की प्रणाली के अवलम्बन करने का उद्देश्य क्या है?

योगिराज बोले—मैं आपसे यही कहने जा रहा हूँ।

---

* स्वर्गीय लेखक ने मूल पुस्तक में इस आशय की एक टिप्पणी दी है—इस घटना की सत्यता को सिद्ध करने के लिए लेखक प्रमाण देने को तैयार है।

हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार जब तक भोजन-पात्र को त्याग नहीं दिया जाता, तब तक भोजन समाप्त हुआ नहीं समझा जाता, इसलिए वह बालिका नौ बजे भोजन करने बैठती और चार बजे तक भोजन-पात्र को लिए बैठी रहती। बालिका के घर वालों ने उसे दो बार भोजन करने के दोष से बचाने के लिए ब्रह्मचर्य-पालन के इस नवीन नियम का आविष्कार किया था। यह निरा ढोंग नहीं तो और क्या है ? जो लोग सात वर्ष की बालिका के ऊपर इस प्रकार का कठोर अत्याचार करते हैं, क्या उनमें मनुष्य की आत्मा है, जिससे वे स्वतन्त्र होंगे ?

"हमारे महाराष्ट्रों मे तो बाल-विधवा के आहार के सम्बन्ध मे ऐसा कठोर नियम नहीं है।"

"आपके महाराष्ट्रों मे दूसरे सैकड़ों दोष भरे पड़े हैं।"

"बङ्गाल के पण्डितो ने क्या इस बालिका के आहार के सम्बन्ध में ऐसी ही व्यवस्था दे रक्खी थी ? क्या सात वर्ष की बालिका के लिए भी बङ्गाल के पण्डित ब्रह्मचर्य की व्यवस्था देते हैं ?"

"हिन्दू-शास्त्रों की व्याख्या करने के लिए पण्डितों की आवश्यकता नहीं होती—इस समय देश के सभी लोग पण्डित हैं; सभी तर्कचूड़ामणि हैं। रामा, श्यामा, श्रीधर, शशधर, कृष्णधर—सभी अपनी-अपनी उदर-पूर्ति के लिए हिन्दू-शास्त्रो की नई-नई व्याख्या कर रहे हैं। मैंने सुना था

कि बालिका की फुआ ने ब्रह्मचर्य के इस नए नियम का आविष्कार किया था। हिन्दू-समाज इस समय फुआ और मौसी, नानी और दादी के आविष्कार किए हुए शास्त्रों के अनुसार शासित हो रहा है। नाना साहब का आममुख़्तार धूर्त्त अज़ीमुल्ला तक हिन्दू-शास्त्रों की व्याख्या करता है। यदि इस समय अज़ीमुल्ला वेदान्तवागीश कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। उसने महादेव के चरित की अपूर्व व्याख्या करके देश के सभी वेदान्तवागीशों को परास्त कर दिया है।"

"अज़ीमुल्ला ने हिन्दू-धर्म की क्या व्याख्या की है?"

"अज़ीमुल्ला ने ही तो हिन्दू-धर्म की एक अपूर्व व्याख्या करके नाना साहब को विद्रोही होने का परामर्श दिया है। उसने नाना साहब से कहा है कि मैंने फ़्रान्स, इटली आदि देशों में भ्रमण किया है, इसलिए मुझसे बढ़कर हिन्दू-शास्त्रों का ज्ञाता कोई नहीं हो सकता। उसने नाना को सुझाया है कि अङ्गरेज लोग इस देश मे जो गोहत्या कर रहे हैं, इससे महादेव जी अत्यन्त क्रुद्ध हैं। साँड़ महादेव जी का वाहन है। यदि देश मे बहुत अधिक गोहत्या होगी तो देश साँड़ों से रहित हो जायगा। ऐसी दशा में महादेव को इधर-उधर चलने-फिरने में बड़ा कष्ट होगा। इस समय महादेव जी बिलकुल बुड्ढे हो चले हैं; बिना साँड़ के वे दो क़दम भी पैदल नहीं चल सकते। दूसरी बात यह है कि महादेव जी

को अफीम खाने की आदत है। गाय के दूध बिना उनका काम एक दिन भी नही चल सकता। इन कारणों से वह अङ्गरेज़ों से अत्यन्त असन्तुष्ट हैं और इस युद्ध में वह नाना साहब की ही मदद करेंगे। अजीमुल्ला की ऐसी ही धर्म-व्याख्याओ को सुन-सुन कर नाना साहब विद्रोही हुए है।"

लक्ष्मीबाई योगिराज की बात सुनकर हँसते हुए बोली—क्या नाना साहब इतने मूर्ख है ?

"नाना साहब इतने मूर्ख न होते तो उनकी ऐसी दुर्दशा क्यों होती ? मै समझता हूँ, नाना साहब इसलिए विद्रोही नही हुए हैं कि अङ्गरेजों ने उनकी पैतृक वृत्ति बन्द कर दी है, बल्कि विद्रोही इसलिए हुए है कि गँवार सिपाहियों की बातें सुन कर उन्हें विश्वास हो गया है कि अङ्गरेज भारत-वासियो का धर्म नष्ट करना चाहते हैं। जो हिन्दू-धर्म हम लोगो को अवनति के गढ़े मे गिरा रहा है, उसी हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए जब वर्तमान विद्रोह सङ्गठित हुआ है, तो निश्चय जानिए कि विद्रोह के फलस्वरूप विद्रोहियों के साथ-साथ हजारो-लाखों भारतवासियो की जानें व्यर्थ जायँगी। अङ्गरेजो का कुछ न बिगड़ेगा। नर-हत्या करने वाले भारतवासी ईश्वर के कोपानल में पड़ कर अवश्य भस्म होंगे।"

"तो क्या आप यह समझते हैं कि हिन्दू-धर्म ही हम लोगो के सर्वनाश का मूल कारण है ?"

"इसमें कोई शङ्का नहीं की वर्तमान हिन्दू-धर्म ही हम लोगों के सर्वनाश का मूल कारण है। हिन्दुओं का प्राचीन पवित्र धर्म लोप हो गया है और उसके अभाव में नाना प्रकार की कुरीतियाँ हम लोगों को मनुष्यत्व से हीन बना रही हैं। जिसमें थोड़ा भी मनुष्यत्व शेष होगा, वह क्या सात वर्ष की बालिका से ब्रह्मचर्य का पालन कराने के लिए उस पर कभी इतना अत्याचार कर सकता है? जूठे मुँह, जूठे हाथ नौ बजे से लेकर चार बजे तक उसे कभी भोजन-पात्र के पास बैठाए रख सकता है? क्या इसी को आर्य-धर्म कहते है? आपही देखिए, उस बालिका का पिता कितना निष्ठुर था? बालिका की माता के मर जाने पर उसके पिता ने साठ वर्ष की अवस्था में ग्यारह वर्ष की एक बालिका से विवाह किया। साठ वर्ष की अवस्था होने पर भी वह स्वयं तो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन न कर सका, किन्तु सात वर्ष की एक बालिका से ब्रह्मचर्य पालन कराए बिना उसका धर्म नष्ट हुआ जा रहा था। क्या इन लोगों के हृदय है? क्या इन लोगों में न्याय-अन्याय का ज्ञान शेष रह गया है? क्या इन लोगों में अपत्य-स्नेह है? क्या ऐसी जाति कभी आत्म-शासन करने में समर्थ हो सकती है? आप किसके लिए युद्ध में प्रवृत्त हो, प्राण विसर्जन करने को उद्यत हुई हैं? जो जाति कुसंस्कारों और कुरीतियों के कारण सन्तान-हत्या एवं मातृ-हत्या करने में भी नहीं हिचकती, वह क्या मनुष्य

होने का दावा कर सकती है ? मेरे एक मित्र के श्वसुर ने अपनी रोगिणी विधवा माता को एकादशी के दिन जल पीने के लिए नहीं दिया। माता प्यास को न सह सकने के कारण मर गई। कहिए, उस व्यक्ति ने मातृ-हत्या की या नहीं ? उसकी मूर्खता देख कर मैं उसे छागलदास बन्चोपाध्याय कहा करता था। क्या ऐसे अज्ञानी लोग आपकी वीरता को हृदयङ्गम करने में कभी समर्थ हो सकते है ? जब तक इस देश से मत-मतान्तर का अज्ञान दूर न होगा, तब तक यह देश पराधीनता की वेड़ी से जकड़ा ही रहेगा। आप इस युद्ध से विमुख होइए। भारत को वीराङ्गना-शून्य न कीजिए। यदि आप जीती-जागती रहेंगी तो आपकी वीरता महाराष्ट्र-स्त्रियों के हृदय को वीरत्वपूर्ण बना देगी ?"

"क्या मुझे रणक्षेत्र में प्राण विसर्जन करते देख कर इस देश के लोगों का हृदय उत्तेजित न होगा ?"

"वर्तमान अवस्था मे इस देश के लोग आपकी असीम वीरता और विशाल सहृदयता को कभी हृदयङ्गम नहीं कर सकेंगे। मत-मतान्तर के अज्ञान ने उनकी आँखों को अन्धी, कानों को बहरा और हृदय को पाषाण बना दिया है। भारत-सन्तान विवेक से शून्य होकर पशुओं की भाँति स्वेच्छाचार कर रही है। जिस देश के मनुष्य अपनी कायरता के कारण अपने को सामाजिक कुप्रथाओं की वेड़ी से मुक्त नहीं कर सकते, जिस देश की जनता स्वार्थपरता के वशीभूत होकर

भूल से भी राष्ट्र के कल्याण की कामना नहीं करती, जिस देश के अधिवासी नीच वृत्तियों से आक्रान्त होकर आत्म-सम्मान से सर्वथा रहित हो गए हैं, जिस देश के नागरिक एकमात्र उदर-पोषण की चिन्ता और झूठे अभिमान के भावों से परिचालित होते हैं, वह देश क्या कभी अपने सच्चे स्वरूप को पहचान सकता है ? वह देश क्या कभी आत्मगौरव का अनुभव कर सकता है ? वह पतित देश क्या कभी अपने पूर्वजों का अनुगामी हो सकता है ? इस दूषित अवस्था का यह अवश्यम्भावी फल होगा कि अङ्गरेज झाँसी की नरहत्या के लिए आपके नाम को कलङ्कित करेंगे और भारत की भावी सन्तान आपकी पुण्यस्मृति को श्रद्धा और भक्ति के बदले घृणा और द्वेष के साथ याद करेगी ।"

रानी लक्ष्मीबाई योगिराज की आग्रह-भरी बातें सुनकर अन्त में सन्धि के प्रस्ताव से सहमत होगईं । झाँसी के उद्धार के लिए एक सेना जनरल ह्यूरोज़ की अध्यक्षता में पहले ही भेजी जा चुकी थी । अब लॉर्ड कैनिङ्ग के पास दूत भेजने के लिए समय नहीं रह गया था । तब यह निश्चय हुआ कि योगिराज के हाथ का लिखा हुआ पत्र लेकर जनरल ह्यूरोज़ के पास एक दूत भेजा जाय । किन्तु रानी इस प्रस्ताव को भी मानने में आगा-पीछा करने लगीं । वह बोलीं—अङ्गरेज़ बड़े ही पापी और निष्ठुर हैं । किसी भी प्रकार का दुष्कर्म करना उनके लिए असम्भव नहीं । इन

अङ्गरेज़ राक्षसों को धर्माधर्म-ज्ञान एक बारगी नहीं होता। वे सन्धि के प्रस्ताव को ठुकरा कर दूत को भी मार डालने में कुण्ठित न होंगे।

योगिराज रानी की बातें सुन कर एकदम बिगड़ खड़े हुए। वह कहने लगे—आप व्यर्थ ही अङ्गरेज़ों को इतना घृणित समझ रही हैं। जिस जाति के बीच विल्बर फोर्स जैसे सैकड़ों महात्मा जन्म ग्रहण कर रहे हैं, जिस जाति के बीच सर चार्ल्स मेटकाफ और सर हेनरी लॉरेन्स जैसे नर रत्नों ने जन्म ग्रहण किया है, वह जाति क्या यहाँ तक नीचता करेगी? अङ्गरेज़ अपने पास आए हुए शत्रु के दूत की हत्या कभी नहीं करेंगे।

रानी योगिराज पर अपनी सन्तान की भाँति स्नेह रखती थी। वह योगिराज के मुँह से तिरस्कारपूर्ण वचन सुन कर ईषत् हास्यपूर्वक बोलीं—फलेन परिचीयते!

यह कह कर वह दुर्ग देखने के लिए चली गईं। उनके भेजे हुए दोनों दूतों ने बुन्देलखण्ड का रास्ता लिया। किन्तु दुर्भाग्यवश जनरल ह्यूरोज़ के बेतवा नदी तक पहुँचने के पहले वे दूत उनसे साक्षात् नहीं कर सके। दूतों के सम्बन्ध में रानी की आशङ्का सोलह आने चरितार्थ हुई। दोनों दूतों ने अङ्गरेज़ी सेना के प्रधान सेनाध्यक्ष के शिविर के पास पहुँच कर अपना परिचय दिया। अङ्गरेज़ों ने जब जाना कि ये दूत रानी लक्ष्मीबाई के भेजे हुए हैं, तो उन लोगों ने बिना

विलम्ब किए दूतों को मार डाला। इस घटना से अङ्गरेज़ों का नाम भारत के इतिहास में सदा के लिए कलङ्कित हो गया। अङ्गरेज़ों के पास भारतवासियों की श्रद्धा प्राप्त करने का अब और कोई साधन नहीं रह गया।*



* Vide Times, August 25th 1858, also R M. Martin's Our Indian Empire Vol. II, Page 455.

इकत्तीसवाँ परिच्छेद

क्या स्त्रियाँ आत्मरक्षा करने में असमर्थ होती हैं ?



ज योगिराज का एक अभीष्ट कार्य सिद्ध हुआ। उनका मन आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा। आनन्द अथवा विषाद किसी के भी आधिक्य मे निद्रा विदा हो जाती है। योगिराज के मन मे आनन्द की अधिकता के कारण आज रात भर उन्हे नींद नही आई। वह झाँसी पहुँचने के कुछ ही दिन बाद सुन चुके थे कि रणक्षेत्र में गङ्गाबाई अपनी सौत लक्ष्मीबाई की सङ्गिनी होगी, किन्तु जब वे दूत के द्वारा सन्धि का प्रस्ताव अङ्गरेजी सेनापति के पास भेज चुके, तो सोचने लगे कि सन्धि हो जाने पर लक्ष्मी-बाई अथवा गङ्गाबाई को रणक्षेत्र मे जाने की नौबत ही न आएगी और न वे रणक्षेत्र मे अपने प्राण विसर्जित करेंगी। अस्तु, दोनों के प्राण-विनाश की आशङ्का दूर हो गई। अब वह सोचने लगे कि गङ्गाबाई के मेरा प्रस्ताव स्वीकार करते ही मेरा जीवन सुखों का आगार हो जायगा, क्योंकि गङ्गाबाई

के साथ क्षणभर का सहवास भी मुझे समस्त विश्व के राज्य की अपेक्षा अधिक सुखकर प्रतीत होता है। गङ्गाबाई के हृदय का प्रेम-प्रवाह पुण्यतोया जाह्नवी के शीतल स्रोत की भाँति प्रवाहित होकर मेरे चिर-शुष्क, चिर-दग्ध हृदय को परिप्लावित कर देगा। उसका विशुद्ध स्नेह मुझे कर्त्तव्य-मार्ग पर सौगुना अधिक उत्साह के साथ सञ्चालित करेगा। मरु-भूमि की भाँति यह वसुन्धरा मेरे लिए नन्दन कानन में परिणत हो जायगी। जिस समय दोनों बहिनों के शोक में अश्रु विसर्जन करूँगा, उस समय मेरे अश्रु-जल के साथ एक और व्यक्ति के अश्रु मिल कर शोकाश्रु को प्रेमाश्रु में परिणत कर देंगे। जिस समय इस क्षुद्र हृदय में संसार के अपार दुःख को धारण नहीं कर सकूँगा, जिस समय दुःख का स्रोत मेरे हृदय के भीतर से उमड़ कर बहने लगेगा, उस समय उस करुणा के उमड़े हुए स्रोत को धारण करने के लिए एक और हृदय सदा प्रस्तुत रहेगा। उस हृदय के स्पर्श-मात्र से मेरी यन्त्रणा विलीन और मेरा ताप शीतल हो जायगा। योगिराज के हृदय-सागर में मधुर कल्पना की चञ्चल लहरियाँ इस प्रकार आनन्द-क्रीड़ा कर रही थीं। चैतन्य जागरण की इसी मधुर सुषुप्ति में सारी रात व्यतीत हो गई। प्रातःकाल योगिराज रानी लक्ष्मीबाई के साथ क़िला देखने गए। क़िला देख कर शीघ्र लौट आए और भोजन के बाद पुनः रानी लक्ष्मीबाई से बातें करने के लिए उनके कमरे में गए। कमरे में लक्ष्मीबाई

और गङ्गाबाई दोनों बैठी हुई थी। योगिराज के घर में प्रवेश करते ही लक्ष्मीबाई ने गङ्गाबाई से परिहास करना आरम्भ कर दिया। वह बोलीं—अब सम्भव है कि अङ्गरेजों के साथ युद्ध न हो। अङ्गरेजों को राज्य लौटाने के बाद तुमसे प्रेम-शास्त्र की कहानी सुनूँगी।

गङ्गाबाई बोली—इस शास्त्र की कथा मुझसे क्यों सुनोगी? इस समय तुम्हारे परामर्शदाता तो स्वयं यहीं उपस्थित हैं। यह शास्त्रों में पारङ्गत हैं। प्रेम-शास्त्र के रहस्य भी इन्हीं से सीखो।

लक्ष्मीबाई हँसते हुए बोलीं—न, इस नूतन शास्त्र में जहाँ तक मैं समझ सकी हूँ, तुम्हारा ज्ञान अधिक बढ़ा-चढ़ा है। इस शास्त्र की मनोहर कथा को तुम्हारे ही श्री-मुख से सुनने की मेरी इच्छा है।

योगिराज इन लोगो के पारस्परिक परिहास में कुछ भी दखल न देकर चुपचाप बैठे रहे। कुछ समय के बाद लक्ष्मी-बाई राजकार्य देखने के लिए दीवानखाने मे चली गईं। इससे गङ्गाबाई और योगिराज को एकान्त मे बातचीत करने का मौका मिला। यद्यपि लक्ष्मीबाई इन लोगों का भीतरी रहस्य भलीभाँति जानती थी, तथापि योगिराज उनके सामने गङ्गाबाई से विवाह करने के प्रस्ताव करने में अत्यन्त सङ्कुचित होते थे।

जब लक्ष्मीबाई उन लोगों की दृष्टि से बाहर चली गईं

तो योगिराज बोले—सीते, लक्ष्मीबाई के साथ अङ्गरेजों की लड़ाई होने की अब कोई सम्भावना नहीं। विद्रोह के बाद तुम्हारे पिता यहाँ अवश्य आवेंगे। वह यदि तुम्हें मेरे हाथों में प्रदान करने की इच्छा प्रगट करें, तो क्या तुम उनकी बात भी अमान्य कर दोगी ?

"अस्पृश्य तथा अपवित्र कन्या को दान करने से वह अवश्य नरकगामी होंगे। क्या मैं अपने स्वार्थ के लिए पिता को नरकगामी होने दूँगी ?"

"दाता अथवा ग्रहीता तो तुम्हें अपवित्र नहीं समझता।"

"वह मुझे स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, इसी से उन्हें ऐसा भ्रम हो गया है।"

"तुम अपने को अपवित्र क्यों समझती हो। मन के अपवित्र हुए बिना मनुष्य कभी अपवित्र नहीं हो सकता। दुर्वृत्त, कामी रावण ने सीता जी को स्पर्श किया था, क्या इससे सीता जी अपवित्र हो गई थीं ?"

गङ्गाबाई ने और प्रत्युत्तर नहीं दिया। उनके दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी। योगिराज उनकी वह अवस्था देख कर आँखों में आँसू भर कर कहने लगे—सीते, यदि तुम मुझे दीन और दरिद्र समझ कर मेरे साथ विवाह करने को प्रस्तुत न होतीं, तो मैं बड़े सन्तोषपूर्वक तुम्हारी आशा छोड़ देता अथवा यदि तुम अपने को गङ्गाधरराव की धर्मपत्नी समझकर हिन्दू-विधवाओं की भाँति

ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन में चित्त लगाती तो मैं अपने हृदय में तुम्हारे सम्बन्ध में ऐसे विचारो को स्थान तक नही देता। जैसे बसन्तकुमारी और हेमन्तकुमारी की मूर्ति आँखों में धारण किए फिरता हूँ, उसी तरह तुम्हें भी अपनी सहोदरा बहिन समझ कर तुम्हारी पवित्र प्रतिमा को हृदय में धारण करता, किन्तु जब तुम अपने को अस्पृश्य और अपवित्र समझ कर मेरी सङ्गिनी बनने से इनकार कर रही हो, तब तुम्हें जीवन की चिरसङ्गिनी बनाने के अतिरिक्त तुम्हारे मन का दुःख दूर करने का मैं और कोई उपाय नहीं देखता। तुम अपनी कल्पित आत्म-ग्लानि को दूर करो। तुम्हारी यह आत्म-ग्लानि मेरे हृदय को दग्ध कर रही है। सीते, तुम एक बार कहो, मेरे जीवन की चिर-सङ्गिनी होओगी? मुझे सुखी करोगी? यदि तुम्हीं अपवित्र हो, तो इस संसार में पवित्र कौन है? सती कौन है?

योगिराज की बातें सुन कर गङ्गाबाई के गालो पर आँसुओ की धार पहले से भी अधिक वेग से बह चली। उनकी जिह्वा पर कोई शब्द ही नहीं था। वह निर्वाक् बैठी रही।

योगिराज फिर बोले—सीते, प्राणेश्वरी! तुम क्या मेरी हत्या करोगी? बोलो, तुम मेरी होओगी? मेरे जीवन की चिरसङ्गिनी होओगी? मेरी प्राणेश्वरी होकर मेरे प्राणों को पुलकित करोगी? मैं तुम्हें क्षण-मात्र के लिए भी अपनी आँखों से ओझल न होने दूँगा।

गङ्गाबाई बड़े ही कष्ट के साथ क्षीण स्वर में बोलीं—परलोक में !

"नहीं, इसी लोक में मेरे जीवन की सङ्गिनी होओगी ? बोलो, अपने पिता के यहाँ आने पर लक्ष्मीबाई से विदा ले इस घर को त्याग, मेरी सहगामिनी होओगी ?"

"यह घर तो बहुत शीघ्र छोड़ना ही पड़ेगा। यह घर ही क्यों, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इस संसार को भी शीघ्र ही परित्याग करना पड़ेगा। फिर इस छोटे जीवन में लक्ष्मीबाई से किस लिए विदा ग्रहण करूँ ? मैंने प्रतिज्ञा की है कि जीवन-पर्यन्त उनकी सङ्गिनी रहूँगी।"

"यह घर क्यों शीघ्र ही छोड़ना पड़ेगा ?"

"केवल यह घर ही क्यों ? अङ्गरेजी सेना के झाँसी पर आक्रमण करते ही युद्ध में प्राण विसर्जन करके समस्त संसार से विदा हो जाऊगी।"

"अङ्गरेजों के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा गया है। रानी ने जिन शर्तों पर अधीनता स्वीकार की है, उन शर्तों पर वे लोग अवश्य ही सन्धि कर लेंगे।"

"अङ्गरेज कभी सन्धि नहीं करेंगे।"

"तुमने कैसे जान लिया कि अङ्गरेज कभी सन्धि नहीं करेंगे ?"

"मेरे मन में दृढ़ विश्वास है कि यह युद्ध किसी भी प्रकार नहीं रुक सकता।"

"क्यों नहीं रुक सकता ?"

"क्या ईश्वर मेरे प्रति इतने निर्दय हो जायँगे कि मेरे दु:खों का कभी अवसान न होगा ? क्या दयालु जगत्पिता मुझे अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए कोई अवसर न देंगे ?"

"तुम पागलों की तरह झूठ-मूठ बेसिर-पैर की बातें कह रही हो। तुम हृदय की कल्पित आत्म-ग्लानि को दूर करो। बोलो, इस विद्रोह का अन्त होने पर मेरे जीवन की सङ्गिनी होओगी न ?"

गङ्गाबाई कुछ देर मौन रह कर अकस्मात् हर्ष से गद्-गद् होकर बोलीं—मै प्रतिज्ञा करती हूँ कि यदि मैं विद्रोह के बाद तक जीवित रही तो तुम्हारे जीवन की सङ्गिनी अवश्य होऊँगी। मैं अवश्य तुम्हारी सहधर्मिणी बनूँगी।

गङ्गाबाई को हठात् प्रफुल्ल-वदन देख कर योगिराज के मन मे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह यह सोचने लगे कि इसका कोई गूढ़ अर्थ हो सकता है। इसलिए उन्होंने फिर पूछा—तुम अब तक इतना विलाप कर रही थीं। अकस्मात् तुम्हारे मन का भाव इस तरह क्यों बदल गया ?

"तुम्हारी आशा की व्यर्थता सोच कर।"

"क्या मैंने व्यर्थ आशा की है ?"

"विद्रोह के बाद मुझसे मिलने की आशा व्यर्थ नहीं तो और क्या है ?"

"यह आशा व्यर्थ क्यों है ?"

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस विद्रोह के बाद मेरा अस्तित्व इस संसार मे कदापि न रहेगा।"

"तुम्हे यह विश्वास कैसे हुआ ?"

"इन सब बातों को सुन कर क्या करोगे ?"

"नहीं, ये सब बातें मुझे सुनानी पड़ेंगी। बोलो, किस तरह तुम्हे ऐसा विश्वास हुआ ?"

जब योगिराज ने अत्यन्त आग्रह किया तो गङ्गाबाई कहने लगी—"मेरे राजप्रासाद में आने के एक महीने बाद जिस दिन तुमने राजोद्यान से एक दासी के द्वारा मेरे पास पत्र भेजा था, उसी दिन तुम्हारा पत्र पाते ही मेरे ज्ञाननेत्र खुल गए। अपनी दुरवस्था पर मेरी दृष्टि पड़ी। उद्यान में तुम्हे देखते ही महाराज के प्रति घृणा और विक्षेप से मेरा मन भर गया। हाथ में मल-मूत्र लगाए हुए मेहतरों और डोमों का संस्पर्श जिस प्रकार विजातियों के मन मे घृणा का भाव पैदा करता है, उसी प्रकार महाराज का संस्पर्श मेरे मन मे घृणा का भाव पैदा करने लगा। उस दिन अकस्मात् मेरे हृदय पर सदा के लिए तुम्हारा अधिकार हो गया। उस दिन के बाद एक क्षण के लिए भी तुम्हे हृदय से अलग न कर सकी। महाराज की मृत्यु के बाद तुम फिर लौटी आए। उस समय तुम्हारे लिए हृदय की व्याकुलता अनुदिन बढ़ने लगी। तुम रात-दिन लक्ष्मीबाई और उनके

पिता के साथ परामर्श और मन्त्रणा करने में फँसे रहते थे, किन्तु मैं समय-समय पर तुम्हे केवल देखने भर के लिए व्याकुल हो जाया करती थी। कभी-कभी तो मन की आग से हृदय यहाँ तक दग्ध हो जाता था कि तुमसे मन की सारी बातें खोलकर कहने की ठान लेती थी, किन्तु कुछ सोच-विचार कर फिर रुक जाती थी। मेरे मन में यह विचार आता कि तुम योगी हो, जितेन्द्रिय हो। तुमसे यदि मन की व्याकुलता खोल कर कह दूँगी तो तुम मुझे पापिनी समझ झाँसी को एक बारगी छोड़कर चले जाओगे; इस जीवन में तुम्हें फिर कभी देख नहीं पाऊँगी। फिर कभी यह सोचती कि मै कलङ्किनी हूँ, अस्पृश्या हूँ; यदि स्नेहवश तुम मुझे ग्रहण भी कर लो, तो मेरे स्पर्श से तुम अवश्य कलङ्कित हो जाओगे। यह अन्तिम चिन्ता ही अन्त मे मेरे हृदय की सतत चिन्ता बन गई। तुम्हे कलङ्कित करके अपने हृदय की यन्त्रणा दूर करूँगी, अपने सुख-भोग के लिए तुम्हारे धर्मा-नुष्ठान मे बाधा उपस्थित करूँगी, इस चिन्ता ने मुझे तुम पर अपने हृदय का भाव प्रगट करने से रोक दिया। किन्तु मन की आग किसी तरह भी न बुझी। जब तुम इस स्थान को छोड़ कर मेरे पिता को ढूँढ़ने के लिए चले गए तो मैं पहले से भी अधिक अधीर हो उठी। एक ओर तुम्हे देखने के लिए—तुम्हारे साथ रह कर तुम्हारे चरणों की सेवा करने के लिए—मेरा मन व्याकुल हो उठता था, दूसरी ओर जब

यह सोचती थी कि मेरा संसर्ग तुम्हें कलङ्कित कर देगा तो अपने को धिक्कारने लग जाती थी। इस प्रकार की द्विविध यन्त्रणा मेरे हृदय को गत तीन वर्षों से निरन्तर जलाती आ रही है। भयानक मानसिक कष्ट ने मुझे एकबारगी क्षिप्त बना दिया है।"

गङ्गाबाई के यहाँ तक कहते ही योगिराज आखों में आँसू भर कर कहने लगे—इस अभागे के लिए तुमने इतना कष्ट सहन किया! हाय, हाय! मैंने तुम्हें इतना कष्ट दिया?

योगिराज को क्रन्दन करते देख कर गङ्गाबाई भी आँखों से अश्रु बहाने लगीं। किन्तु इस समय योगिराज ही अधिक अधीर थे। गङ्गाबाई कुछ धैर्य धारण करके बोली—तुम्हे इस प्रकार अस्थिर देख कर मेरा हृदय अत्यन्त व्यथित हो रहा है। इन वातों को और कहने से कोई प्रयोजन नहीं। मैं अब अधिक कुछ न कहूँगी।

स्मात् 'योगिराज' शब्द के निकलते ही मेरे पीछे खड़ी हुई लक्ष्मीबाई ठठा कर हँस पड़ी थीं। विद्रोह के सम्बन्ध मे उसी दिन लक्ष्मीबाई से मेरी पहली बातचीत हुई थी। उस दिन तक लक्ष्मीबाई ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया था। किन्तु मैंने उनसे विद्रोहियों का पक्ष समर्थन करने के लिए अनुरोध किया।"

इस स्थान पर योगिराज गङ्गाबाई की बात को काट कर बोले—तुमने लक्ष्मीबाई से विद्रोहियो के साथ मिल जाने का अनुरोध क्यो किया?

"मैंने अनुरोध क्यों किया? अच्छा, इसका कारण भी सुनो। महाराज की मृत्यु के बाद जब अङ्गरेज लोग झाँसी को अपने अधिकार में लाने के लिए उद्यत हुए, तब स्वयं लक्ष्मीबाई ने मन ही मन स्थिर किया कि रणक्षेत्र में जाकर अङ्गरेजों के साथ युद्ध करूँगी। उस समय मेरे मन में यह विचार आया कि केवल मैं ही इनकी राज्यच्युति का एक-मात्र कारण हूँ। अन्तःपुर में मेरे आने से महाराज की मृत्यु हुई और महाराज की मृत्यु के कारण लक्ष्मीबाई को राज्य खोना पड़ रहा है। इसके प्रतिशोध के लिए लक्ष्मी-बाई के साथ मै रणक्षेत्र में अवश्य जाऊँगी। महाराज के प्रति मेरे हृदय मे थोड़ा भी प्रेम नहीं था। यदि वह जीते जी राज्यच्युत होते तो मुझे किञ्चित मात्र भी कष्ट न होता। किन्तु लक्ष्मीबाई को मैं बहुत प्यार करती हूँ और

उन पर श्रद्धा भी रखती हूँ। उनकी राज्यच्युति से मुझे घोर कष्ट हुआ। इसीलिए मैंने मन ही मन स्थिर कर लिया कि मैं रणक्षेत्र में उनके साथ अवश्य जाऊँगी। किन्तु उस समय तुम्हारे उपदेशानुसार लक्ष्मीबाई युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर नहीं हुईं और इसलिए मुझे रणक्षेत्र में उनकी सङ्गिनी होने का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ।

"वर्तमान विद्रोह आरम्भ होने के तीन-चार महीने पहले एक दिन तुम्हारे लिए मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा। जी में ऐसा आया कि इसी दम इस नरक-सदृश राजमहल को लात मार कर, पुरुष का परिच्छद धारण कर तुम्हारी खोज में निकल पड़ूँ। इस विचार के अनुसार रात मे पुरुष का परिच्छद भी धारण किया। किन्तु जब घर को परित्याग करने का समय आया तो मेरे मन में पुनः यह विचार उठा कि अपने सुख के लिए मैं अपने प्राणेश्वर योगेश को कलङ्कित करने जा रही हूँ। क्या गङ्गाधर राव की पापिनी और कलङ्किनी उपपत्नी योगिराज योगेश की धर्मपत्नी बनने योग्य है? मन में इस प्रकार की चिन्ता उठते ही मैंने तत्क्षण पुरुष-वेश परित्याग कर दिया। अपनी दुर्बलता पर हृदय मे बड़ी ग्लानि पैदा हुई। मैंने मन में सोचा कि जीवित रहने पर एक न एक दिन सुख के प्रलोभन मे पड़ कर तुम्हारे अनिष्ट का कारण अवश्य बन बैठूँगी। ऐसी दशा में तुम्हारे कल्याण को चिर-रक्षित करने के लिए आत्म-हत्या का मार्ग

अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर है। तुम्हारे कल्याण के लिए आत्महत्या करूँगी, यह सोच कर मेरे मन में आनन्द की तरङ्गें उठने लगीं। किन्तु आत्महत्या किस तरह करूँ, इसका कोई उपाय न सूझा। मेरी माता की मृत्यु के बाद मेरी बड़ी भावज ने मेरा लालन-पालन किया था, उन्हीं को मै अपनी माता समझती थी। मुझे एकाएक याद आ गया कि उन्होंने गले में फाँसी लगा कर प्राण त्याग किए थे। मैंने स्थिर किया कि मैं भी उन्हीं की तरह गले में रस्सी डाल कर आत्महत्या करूँगी। मैं इसके लिए तैयारी करने लगी।"

यहाँ तक गङ्गाबाई की बात सुन कर योगिराज "मेरी प्राणेश्वरी सीते, मेरे लिए तुम आत्महत्या तक करने के लिए तैयार हो गई थीं?" कह कर मूर्च्छित हो गए। थोड़ी देर बाद जब उन्हे होश आया तो फूट-फूट कर रोने लगे।

गङ्गाबाई उनकी यह शोकाकुल अवस्था देखकर आँखों में आँसू भर कर कहने लगीं—जब तुम इतने अधीर हो रहे हो, तो मै अब कुछ न कहूँगी।

योगिराज अब भी अपनी रुलाई न रोक सके। वह रोते-रोते बोले—बोलो, तुम आज से मेरी चिरसङ्गिनी होओगी? बोलो, तुम मेरी होओगी? लक्ष्मीबाई इसमे किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं करेंगी। वह सभी बातें जानती हैं। तुम मेरे लिए आत्महत्या तक करने के लिए उद्यत हुई थीं?

गङ्गाबाई योगिराज को सान्त्वना देने की चेष्टा करने

लगी। कुछ समय के बाद जब योगिराज का शोकावेग कम हुआ तो गङ्गाबाई से अपनी कहानी का शेषांश सुनाने के लिए अनुरोध करने लगे। गङ्गाबाई बोली—"मैं और कुछ न कहूँगी।" किन्तु जब योगिराज ने बारम्बार अनुरोध किया तो वह कहने लगीं—"गले मे फाँसी लगाने की जब सब तैयारी कर चुकी, तब जी में यह आया कि आत्महत्या करने के पहले ईश्वर का नाम तो स्मरण कर लूँ। यह सोच कर मैं आँख मूँद कर ईश्वर का ध्यान करने बैठी, किन्तु ध्यान करते-करते ही मुझे नींद सी लग गई। मैंने अर्द्धनिद्रित अवस्था में देखा कि मेरी भावज ने मेरे कमरे मे प्रवेश किया है और मेरा मुँह चूम कर मुझसे कह रही हैं कि—'प्यारी सीते, तुम्हारा मुख देख कर ही मैं आज तक जीवित हूँ। तुम्हारे मुख-कमल के दर्शन से ही मेरा चिर-सन्तप्त हृदय ठण्ढा होता है। आज तुम्हे यह कुकर्म करते देख कर तुम्हारे पास आई हूँ। तुम यह क्या कर रही हो? कायरता पर कायरता, भीरुता पर भीरुता, और पाप पर पाप करने जा रही हो। किन्तु पाप का वास्तविक प्रायश्चित्त क्या पाप है? भीरुता का सच्चा प्रायश्चित्त क्या भीरुता है? धैर्य धारण करो। अपने अपराधो का सच्चा प्रायश्चित्त करके स्वर्ग की यात्रा करो। स्त्री क्या आत्म-रक्षा में असमर्थ है? क्या परमेश्वर ने स्त्री-जाति को आत्म-रक्षा करने की क्षमता नहीं प्रदान की है?'

"ये बातें कह कर वह अन्तर्हित हो गईं। मैंने जगने पर देखा कि रात्रि का अवसान हो रहा है। मैं शय्या के बग़ल में ज़मीन पर पड़ी हुई हूँ। वहाँ से उठ कर सारे दिन इसी स्वप्न की बात सोचती रही। मेरी भावज अपने स्वामी की चरित्रहीनता देख कर सदा दुःखी रहती थीं। वह प्रायः मुझे अपने हृदय की आनन्ददायिनी कह कर और मेरा मुख चूम कर प्रसन्न होती थीं। उन्हें संसार की किसी भी बात मे इतनी प्रसन्नता नहीं होती थी, जितना मेरा प्रसन्न वदन देखने मे। स्नेहपूर्वक मेरा लालन-पालन करने में ही वह अपने जीवन में कुछ आनन्द का अनुभव कर सकी थीं। उनकी अन्तिम बात, 'अपने अपराधों का सच्चा प्रायश्चित्त करके स्वर्ग की यात्रा करो। स्त्री क्या आत्मरक्षा करने में असमर्थ है ?' का ठीक अर्थ मेरी समझ मे कुछ न आया। ये शब्द तीन-चार महीने तक बराबर मेरे दोनों कानों में गूँजते रहे। जिस समय विद्रोही सिपाहियों के दिल्ली पर आक्रमण करने का समाचार मिला, उस समय सहसा मुझे तुम्हारी बात याद आगई। तुमने कहा था कि पिता देश में सर्वत्र घूम-घूम कर विद्रोहानल प्रज्ज्वलित करने की चेष्टा कर रहे हैं। मैंने समझा कि हो न हो, यह विद्रोह पिता के ही प्रयत्नों का फल है। यह सोच कर तुम्हारे विषय में मेरे मन में नाना प्रकार की शङ्काएँ उठने लगीं। सारी रात नींद न आई। रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब ज़रा सी आँख

लगी, तो मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे पिता, माता और भावज मेरे पास आ रही हैं। उन लोगों ने मेरे कमरे में आकर मुझसे कहा कि 'सावधान ! तुम्हारी भीरुता के प्रायश्चित्त का उपयुक्त समय अब आ गया है।'

"यह कह कर वे लोग शीघ्र ही अन्तर्धान हो गए। मैं पहले स्वप्न के साथ इस स्वप्न का समन्वय करने लगी। दोनों स्वप्न की बात मिला कर सोचने के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँची कि ठीक है, भीरुता ही इस संसार में सब पापों का मूल कारण है। भीरुता से ही मिथ्या प्रवञ्चना और मिथ्या प्रतारणा की उत्पत्ति होती है। भीरुता के कारण ही मेरा धर्म नष्ट हुआ है। यदि मैं भीरुता और भय छोड़ कर राजा गङ्गाधर राव के आक्रमण से अपनी रक्षा करने की चेष्टा करती, तो मुझे इस संसार मे कलङ्किनी कदापि न होना पड़ता। उस दिन मेरे मन में यह बात दृढ़ रूप से बैठ गई कि ईश्वर ने नारी-जाति को आत्मरक्षा करने में कभी असमर्थ नही बनाया है। नाना प्रकार की भीरुता और भीति ने ही नारी-जीवन को एकबारगी अकर्मण्य बना दिया है।

"इस प्रकार सोचते-विचारते अन्त में मैंने यह निश्चय किया कि पिता के प्रयत्न से यह युद्धाग्नि भड़की है। अतः इस युद्ध की सफलता के लिए मुझे पिता की सहायता करनी चाहिए। मैं युद्ध में प्राण विसर्जन करके अपने पूर्वकृत पाप का

प्रायश्चित्त करूँगी। चिरकलङ्किनी और पापिनी होने पर भी भीरुता दिखाने के अतिरिक्त इस जीवन में जान-बूझकर मैंने और कोई अपराध नहीं किया है। इसलिए युद्ध में वीरत्व दिखाकर भीरुता का प्रायश्चित्त करूँगी।"

इस स्थान पर योगिराज पुनः गङ्गाबाई की बात काटकर बोले—सीते, मेरे सामने तुम अपने को कलङ्किनी और पापिनी कह कर कभी अभिहित न करो, तुम्हारे मुँह से इन बातों को सुनने मात्र से हमारी छाती फटने लगती है। यदि तुम कलङ्किनी हो तो इस संसार में पवित्र कौन है?

गङ्गाबाई फिर कहने लगी—"मेरे मन में इस प्रकार भीरुता के प्रायश्चित्त की भावना उठने के और भी अनेक कारण हैं। पिता मुझसे सदा कहा करते थे कि मानव-जीवन में भीरुता ही सब प्रकार के पापों और दुःखों की जड़ है! अब इस बात पर जितना ही अधिक विचार करती हूँ, पिता के कथन की सत्यता उतनी ही अधिक स्पष्ट होती जा रही है। भीरुता के भयङ्कर पाप ने ही मुझे राजा गङ्गाधर राव के सामने पदानत् किया था। तुम अत्यन्त पुण्यात्मा हो, तुम्हारे दर्शन मात्र से मेरे हृदय से भीरुता का पाप दूर हो जाता है। जिस प्रकार ईश्वर के दर्शन पाने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार धर्मात्मा पुरुषों के दर्शन करने से मन की सारी मलिनता मिट जाती है। उस दिन उद्यान में तुम्हारे दर्शन करके ही मेरे मन में साहस का सञ्चार हुआ और मैं गङ्गाधर

राव को धिक्कारने और भर्त्सना करने लगी। केवल भर्त्सना ही नहीं, राजा ने 'बुड्ढा बन्दर' कह कर जब मेरे पिता का अपमान किया तब मैं तलवार खींच कर उनकी गर्दन उड़ा देने के लिए प्रस्तुत हो गई। डर के मारे महाराज मेरे पैरों पर गिर पड़े। ऐसी वीरता यदि मैंने पहले प्रगट की होती तो राजा मुझे व्याहने का साहस कदापि न करते। उस समय मैं पिता की बात का महत्व नहीं समझ सकी थी, किन्तु इस समय विचार करके भली-भाँति समझ गई हूँ कि स्त्री आत्म-रक्षा करने में कभी असमर्थ नहीं है? सब पापों के बीज-स्वरूप एकमात्र भीरुता ही नारी-जीवन को सब प्रकार से निस्सार एवं अकर्मण्य बनाए हुए है। मैं इस विद्रोह के उपलक्ष में रणक्षेत्र में प्राण विसर्जन करके अपनी भीरुता का प्रायश्चित्त करूँगी। मुझे दृढ़ विश्वास है कि रणक्षेत्र में प्रवेश करने से संसार की कोई बाधा मुझे रोक नहीं सकती। विद्रोह के सुअवसर से लाभ उठा कर मैं अपने पाप का प्रायश्चित करने में अवश्य समर्थ होऊँगी। अङ्गरेज सन्धि को कभी स्वीकार न करेंगे।"

गङ्गाबाई की बात समाप्त होने पर योगिराज बोले—मेरी समझ में नहीं आता कि राजा गङ्गाधर राव के अत्याचार सहने से तुम्हे पाप कैसे लगा। उस समय तुम एक तरह से बालिका थीं। तुम्हें इन बातों की समझ-बूझ नहीं थी। इसलिए पाप ने तुम्हें कभी स्पर्श तक नहीं किया है।

विशेष कर मन के अपवित्र हुए बिना मनुष्य को पाप कभी लग ही नहीं सकता।

"मेरी अन्तरात्मा कहती है कि गङ्गाधर की वश्यता और अधीनता स्वीकार करके मैंने भारी पाप किया है। इस पाप के प्रायश्चित्त-मार्ग से मैं किसी प्रकार टल नहीं सकती। स्वप्न में मैंने जो कुछ भी देखा, मैं उसे वास्तविक घटना समझती हूँ।" इतना कह कर गङ्गाबाई फिर कहने लगी—"स्नेह के कारण तुम मुझे इस मार्ग से विरत करने की चेष्टा न करो। स्त्री-जीवन की भीरुता मेरे लिए अत्यन्त असह्य हो उठी है। सृष्टिकर्ता ने कीट-पतङ्गों तक को आत्मरक्षा करने शक्ति प्रदान की है। क्या उसने केवल स्त्री-जाति को ही इस शक्ति से वञ्चित करके संसार में भेजा है?"

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि परमेश्वर ने स्त्री-जाति को भी आत्मरक्षा करने की शक्ति प्रदान की है, किन्तु काल्पनिक पाप के लिए तुम्हारे आत्म-विसर्जन की कोई आवश्यकता मुझे प्रतीत नहीं होती।"

गङ्गाबाई बोली—प्राणेश्वर योगेश, मुझे इस मार्ग से विरत करने की चेष्टा भूल कर भी न करो। परलोक में मैं अवश्य तुम्हारी होकर रहूँगी। इस संसार के सभी सुख मिथ्या और क्षणभङ्गुर हैं। क्या तुम्हारे समान बुद्धिमान पुरुष को इन अनित्य और क्षणस्थायी सुखों के लिए परलोक के नित्य एवं चिरस्थायी सुखों का कभी परित्याग करना चाहिए?

योगिराज बोले—मैं अपने सुख के लिए तुम्हें ब्याहने को कभी उद्यत नहीं हुआ था। तुमने मेरे लिए बहुत कष्ट सहे हैं, इसीलिए तुमसे विवाह कर तुम्हें सुखी करने की इच्छा मेरे मन में उत्पन्न हुई थी।

"मेरे वे सब कष्ट दूर हो गए हैं। इस समय मुझे और कोई कष्ट नहीं। धर्माचरण करने की शुभेच्छा के मन में उत्पन्न होते ही पाप की राशि नष्ट हो जाती है। जब से इस प्रायश्चित्त के करने का मन में निश्चय किया है, तभी से मेरे मन का कष्ट बहुत अंशों में दूर हो गया है। केवल मन में एक चिन्ता बनी हुई थी। मैं सदा सोचा करती थी कि इस जीवन में शायद तुमसे मुलाक़ात न होगी, किन्तु परमेश्वर की इच्छा से मेरी वह आशा भी पूरी हो गई। इस समय तुम मुझे इस शुभ अनुष्ठान में प्रवृत्त होने की अनुमति दो। संसार के पापों और घटनाओं के चक्र में पड़ कर मैं इस जीवन में तुम्हे स्वामी कह कर न पुकार सकी, किन्तु वास्तव में तुम्ही मेरे अनन्त जीवन के स्वामी हो, तुम्हीं मेरे अनन्त जीवन के गुरु, मार्ग-प्रदर्शक एवं प्राणेश्वर हो।"

गङ्गाबाई की बात समाप्त होने पर योगिराज कुछ देर तक चिन्तामग्न हो चुपचाप बैठे रहे। फिर कुछ देर के बाद बोले—मैं तुम्हारे अभीष्ट व्रत से तुम्हे विरत करने की चेष्टा कभी नही करूँगा। वस्तुतः भीरुता ही सब पापों का मूल कारण है, इसमें अणु-मात्र भी सन्देह नहीं। सामाजिक

कुरीतियाँ प्राय: सभी देशों मे स्त्रियों को भीरुता की ओर परिचालित कर रही हैं। स्त्रियाँ जब तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी का अधिकार प्राप्त न करेंगी, तब तक पाप और विविध यन्त्रणाओं से संसार का छुटकारा कभी नहीं हो सकता। तुम्हारी आज की बातों ने मेरी दृष्टि को एक दूसरी ही दिशा मे फेर दिया है। स्त्री-जाति की वर्तमान हीनावस्था कितनी बुराइयों की जड़ है, इस विषय पर मैंने पहले कभी विचार भी नहीं किया था। आज तुमने मेरे ज्ञान-नेत्र खोल दिए। ईश्वर करे कि मैं शीघ्र ही तुम्हारा अनुगमन कर परलोक में तुम्हारा एवं दोनों बहिनों का मुख देख कर इस सन्तप्त हृदय को शीतल कर सकूँ।

"परलोक में तुम मुझे अवश्य ही पाओगे। वहाँ तुम अपनी बहिनो को भी देख सकोगे। इतना प्रगाढ़ प्रेम, इतना प्रबल स्नेह देह के साथ कभी नष्ट नहीं हो सकता।" यह कह कर गङ्गाबाई योगिराज से विदा ले दूसरे काम के लिए चली गईं। योगिराज भी अपने स्थान की ओर चल पड़े।



पहले कभी साक्षात् नहीं हुआ था। रानी लक्ष्मीबाई ने इसके पहले ताँतिया का कभी नाम तक नहीं सुना था। किन्तु आश्चर्य की बात है कि उसका नाम सुनते ही रानी के मन में उसके प्रति श्रद्धा का सञ्चार हो गया।

अङ्गरेज़ों ने देखा कि ताँतिया का मार्ग रोके बिना झाँसी का उद्धार करना असम्भव है, इसलिए जीवन की आशा छोड़ कर और प्राणों की बाज़ी लगा कर उन लोगों ने बेतवा नदी के किनारे ताँतिया की सेना से युद्ध आरम्भ कर दिया। ताँतिया के रणकौशल और रानी की रणनीति में भेद था। रानी लक्ष्मीबाई प्रत्येक युद्ध में सिपाहियों के भागने का रास्ता पहले ही बन्द कर देती थी। महामना ड्यूक ऑफ वेलिङ्गटन भी प्रायः इसी प्रकार के रणकौशल का अवलम्बन करते थे। किन्तु रानी ने यह रणनीति ड्यूक ऑफ़ वेलिङ्गटन से नहीं सीखी थी। इस रणकौशल का आविष्कार उनकी प्रखर बुद्धि ने स्वयं और स्वतन्त्र रूप से किया था। दूसरी ओर ताँतिया प्राचीन महाराष्ट्रीय रणकौशल का अनुसरण करता था। वह युद्ध में प्रवृत्त होने के पहले ही सिपाहियों के लिए भागने का रास्ता ढूँढ़ कर निर्धारित कर लेता। यह प्राचीन रणकौशली ताँतिया के पराभव का कारण हुआ। विद्रोही सिपाही प्राण विसर्जन करने के लिए कभी प्रस्तुत नहीं रहते थे। जान का थोड़ा भी ख़तरा देख कर वे फौरन भाग खड़े होते थे। ऐसे कायर सिपाहियों को साथ लेकर युद्ध

में प्रवृत्त होने पर ड्यूक ऑफ वेलिङ्गटन की रणनीति का अवलम्बन किए बिना काम नहीं चल सकता था। उधर जनरल ह्यूरोज़ प्रत्येक कार्य में नेपोलियन की रणनीति का अनुसरण करने लगे।

बेतवा के युद्ध में तॉतिया के सैनिक हार कर भाग गए। अब रानी को और कहीं से सहायता मिलने की आशा न रही। रानी के भेजे हुए दोनों दूत तॉतिया की सेना के पराजित हो जाने के बाद अङ्गरेज़ी सैन्य के शिविर में पहुँचे। अङ्गरेज़ी सेना ने दूतों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार किया वह पहले ही लिखा जा चुका है। इस स्थान पर उसे फिर लिख कर वारम्वार अङ्गरेज़ों के कलङ्क की घोषणा करना अभीष्ट नहीं।

दूतों की हत्या का समाचार पाकर दोनों रानियों ने योगिराज से पूछा—बाबा, हम लोगों ने पहले ही जो अनुमान किया था वही ठीक हुआ न? कहिए, इस समय आपके सैकड़ों विल्बफ़ोर्स (Willbeforce) कहाँ गए?

इस दुर्घटना का समाचार सुन कर योगिराज एकदम स्तब्ध रह गए, वह मन ही मन सोचने लगे—भारतवर्ष की मिट्टी में ही कुछ दोष है। सुसभ्य अङ्गरेज़ जाति ने भी ऐसा कुकर्म किया! जहाँ तक मेरा अनुमान है, अफ्रिका के असभ्य हब्शी तक दूत के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं करेंगे।

झाँसी का युद्ध लगातार सोलह दिन तक चलता रहा।

जनरल ह्यूरोज़ सोलह दिन तक नगर में प्रवेश करने का मार्ग न पा सके। रानी लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई भोजन और निद्रा त्याग कर युद्ध का सञ्चालन कर रही थीं। वे सैनिकों को सदा उत्साहित करती रहतीं। घायल सिपाहियों की सेवा-शुश्रूषा भी करतीं। नगर की स्त्रियों में अपूर्व उत्साह था। वे क़िले में आकर कभी सिपाहियों की सहायता करतीं, कभी मङ्गल ध्वनि करती। उनके हृदय में भय का नाम तक नहीं था। उनके मन में भय का सञ्चार ही क्यों होता? वे तो हिन्दू-परिव्राजक रामप्रसन्न सेन की तरह धर्मवीर नहीं थीं। श्रीरामप्रसन्न सेन के समान वीर लोग ही यह सोचा करते हैं कि उनकी मृत्यु से देश एकदम रसातल को चला जायगा। उनकी यह हद से ज़्यादा देश-हितैषिता ही उन्हें मृत्यु से डरने के लिए मजबूर करती है, किन्तु जिनके हृदय में उनके समान देशहितैषिता का एकदम बाढ़ नहीं आगया है, वे मृत्यु से भला क्यों डरें?

पहले ही लिखा जा चुका है कि १७ वीं मार्च को जनरल ह्यूरोज़ ने झाँसी पर आक्रमण किया। किन्तु ३ री अप्रैल तक उन्हें नगर में प्रवेश करने का मार्ग न मिल सका। उन्होंने नगर के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर सैनिकों का एक-एक दल नियुक्त किया। उत्तर के सैनिकों का सञ्चालन जनरल ह्यूरोज स्वयं करने लगे। सोलह दिन तक दोनों पक्ष के बहुसंख्यक सिपाही धराशायी हुए। यदि रानी चार-पाँच दिन और

जनरल ह्यूरोज़ को नगर के बाहर रख सकने में समर्थ होतीं तो युद्ध में उनकी जय अवश्य होती। अभी तक उन्हीं की जय होती आरही थी। इन सोलह दिनों के युद्ध का विस्तृत वर्णन लिख कर पुस्तक के आकार की वृद्धि करना अभीष्ट नहीं। संक्षेप में इतना ही कह देना काफी होगा कि रानी की वीरता से आश्चर्य-चकित होकर जनरल ह्यूरोज़ ने स्वयं कहा था कि "ऐसी वीर रमणी मैंने कभी किसी देश में नहीं देखी।"

सोलहवें दिन भी जब सफलता न मिली, तो जनरल ह्यूरोज़ ने नगर में प्रवेश करने के लिए कौशल मार्ग का अवलम्बन किया। जब अङ्गरेज़ों का बाहुबल पराजित हो जाता है, तो वे अनेक प्रकार के कौशलों की शरण में जाते हैं। जनरल साहब ने सौ से भी अधिक सैनिकों को मिलाकर एक निराश दल (Forlorn Hope) सृष्टि की। इस निराश दल के सिपाही दुर्ग के पश्चिम पार्श्व पर आक्रमण करने का चकमा देने के लिए पश्चिम की ओर गोला-बारी करने लगे। स्वयं लक्ष्मीबाई अथवा गङ्गाबाई उस समय किले में मौजूद न थीं। रानी के सिपाही अङ्गरेज़ों की चाल न समझ सके। वे सब के सब किले के पश्चिमी पार्श्व के रक्षार्थ उसी ओर दौड़ पड़े और देखते ही देखते पश्चिम के मुट्ठी भर सिपाहियों को ज़मीन पर सुला दिया। किन्तु इस सुअवसर को पाकर उत्तरीय दल के बहुत से सिपाही दीवार पर सीढ़ी लगा कर नगर में प्रवेश कर गए।

३ री अप्रैल को बहुसंख्यक अङ्गरेज़-सिपाहियों के नगर में प्रवेश कर जाने पर तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ। क़िले में लगातार तीन दिनों तक रहने के बाद दोनों रानियाँ आज भोजन करने के लिए घर पर गई हुई थीं। उन लोगों ने ज्योंही सुना कि अङ्गरेज़ी सेना नगर में घुस आई है, त्योंही वे घोड़े पर सवार होकर पुनः रणक्षेत्र में आ पहुँचीं। दिन भर घमासान लड़ाई होती रही। सायङ्काल होने के पहले विपक्षी दल प्रासाद के निकट आ पहुँचा। अब प्रासाद की रक्षा के लिए जम कर लड़ाई होने लगी। स्वयं दोनों रानी तथा सिपाही रात भर युद्ध करते रहे। बहुत से अङ्गरेज़ सैनिक धराशायी हुए। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि स्वयं परमेश्वर ही अङ्गरेज़ों के अनुकूल थे, अन्यथा क्या रानी लक्ष्मीबाई जैसी वीराङ्गना का अङ्गरेज़ों से हार जाना कभी सम्भव था? अङ्गरेज़ सैनिक रानी के सिपाहियों को हराते हुए प्रासाद के बाहरी भाग में क्रमशः रानी के अस्तबल तक आ पहुँचे।

४ थी अप्रैल को दिन भर अस्तबल के पास लड़ाई हुई। आज रानी की सेना में उनके पचास अङ्गरक्षकों को छोड़ कर एक भी अन्य प्राणी न था। इन पचास सिपाहियों ने दिन भर हज़ार से भी अधिक अङ्गरेज़ सैनिकों का जैसी वीरता के साथ मुक़ाबला किया, वह सहसा वीर-श्रेष्ठ अर्जुन के सुपुत्र अभिमन्यु की वीरगाथा का स्मरण करा

देती थी। दिन भर में भी अङ्गरेज़ लोग इन पचास शरीर-रक्षकों को हरा कर प्रासाद मे प्रवेश करने में समर्थ न हो सके। रात हो जाने पर अङ्गरेज़ लोग युद्ध से श्रान्त हुए। उन्होंने यह सोचा कि अगले दिन प्रातःकाल दुर्ग मे प्रवेश करके रानी को पकड़ लेंगे।

इधर पहर रात समाप्त होने पर रानी लक्ष्मीबाई के पिता दोनों रानियों तथा अन्यान्य स्त्रियों से प्रासाद छोड़ कर चले जाने का अनुरोध करने लगे। किन्तु लक्ष्मीबाई भागने के लिए किसी भी प्रकार राज़ी न हुईं। उन्होंने निश्चय किया कि अन्त तक युद्ध करके रणभूमि मे वीरगति प्राप्त करूँगी। तब रानी के पिता आँखो मे आँसू भर कर बोले—बेटी, तुम्हारे जीते जी पकड़ जाने से महाराष्ट्र-कुल कलङ्कित हो जायगा। मुझे कितना मानसिक कष्ट होगा, यह कहने की बात नहीं। अतएव मेरी बात मान जाओ। तुम अभी प्रासाद को छोड़ दो।

लक्ष्मीबाई ने दृढ़ भाव से उत्तर दिया—शरीर में प्राण रहते मैं कभी भाग नहीं सकती।

गङ्गाबाई ने कहा—जीवन रहते क्षण-मात्र के लिए भी मैं लक्ष्मीबाई से अलग नहीं हो सकती।

दोनों रानियों से इस प्रकार का अटल प्रत्युत्तर सुन कर वृद्ध रावसाहब हताश हो गए। इस समय क्या करना चाहिए, कुछ स्थिर न कर सके।

योगिराज एक कमरे में बैठ कर आँसू बहा रहे थे। लक्ष्मीबाई के पिता ने समझा कि कदाचित् योगिराज के अनुरोध करने से लक्ष्मीबाई प्रासाद परित्याग करने पर सम्मत हो जायँ। इस प्रकार सोच-विचार कर वह योगिराज को दोनों रानियों के पास ले आए। बहुत से तर्क और वाद-विवाद के बाद योगिराज बोले—बहिन, मैं आपको भागने का अनुरोध कभी नहीं करता। जब आपने प्राण-विसर्जन करने की ही प्रतिज्ञा की है, तो भागने का कलङ्क लेना अपने ऊपर उचित नहीं। किन्तु इस समय यदि आप प्राण बचा कर कालपी पहुँच जायँ तो वहाँ ताँतिया की सेना को सङ्गठित कर पुनः झाँसी पर आक्रमण करने का एक सुअवसर प्राप्त हो सकता है, अन्यथा झाँसी की आशा आज ही छोड़ देनी पड़ेगी।

योगिराज की बात सुन कर मानो रानी की निद्रा भङ्ग हो गई। वह आज लगातार अठारह दिनों से आहार-निद्रा छोड़कर योद्धा के वेश में अविश्रान्त परिश्रम करती आ रही हैं। परामर्शदाता के पास न रहने पर सभी बातें सब समय स्मरण नहीं रहतीं। कालपी में रानी के बहुत से अस्त्र-शस्त्र थे, रानी इस बात को एकदम भूल गई थीं। योगिराज के मुँह से कालपी का नाम सुनते ही विद्युद्वेग से सभी बातें उनके दिमाग़ में दौड़ गईं। मुहूर्त्त मात्र का भी विलम्ब न कर आधी रात के समय दोनों रानियाँ घोड़े पर

चढ़ और योगिराज तथा बीस-पचीस अङ्गरक्षकों को साथ लेकर कालपी की ओर चल पड़ीं। उनके पचास अङ्गरक्षकों में से इस समय केवल बीस-पचीस वीर जीवित थे, शेष अस्तबल के निकट वाले युद्ध में प्राण-विसर्जन कर चुके थे। युद्ध के आरम्भ-काल से लेकर इस समय तक रानी लक्ष्मीबाई की आँखों से एक बूँद भी आँसू नहीं गिरा था। किन्तु इस समय अपने अङ्गरक्षको की वह अल्प संख्या देख कर उनकी आँखो से आँसुओं की अविरल धार बहने लगी × × ×।

रानी ६ वीं अप्रैल को कालपी पहुँचीं। इसके पहले उन्होंने ताँतिया टोपी को देखा तक नहीं था। कालपी पहुँच कर ताँतिया को देखते ही रानी का मन उसके प्रति श्रद्धा के भावों से भर गया। ताँतिया भी रानी को देख कर मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री भी ताँतिया के साथ कालपी में ही थे। गङ्गाबाई ने आज पाँच वर्षों के बाद पितृ-चरणों में माथा रख कर असीम आनन्द का अनुभव किया। वृद्ध त्र्यम्बक शास्त्री कन्या को गोद मे लेकर उसका मुँह चूमने लगे। आज कन्या को योद्धा के वेश में देख कर उनका दुःख, शोक सब दूर हो गया।

रानी के कालपी पहुँचने पर ताँतिया और बाणपुर के राजा एकत्र हो, अङ्गरेजी सेना पर पुनः आक्रमण करने की आयोजना करने लगे।

इधर अङ्गरेज़ लोग झाँसी पर क़ब्ज़ा करके समस्त नगरवासी स्त्री-पुरुषों की हत्या करने लगे। रानी लक्ष्मीबाई के पिता तक को मार डाला। उन्होंने वृद्धा, युवती, रोगी, दुर्बल, किसी को भी जीता न छोड़ा। किसी नगर व ग्राम में पहुँचते ही स्त्री-पुरुष सभी की हत्या करने लग जाते थे। उन लोगों ने नानासाहब और अज़ीमुल्ला के निष्ठुर व्यवहारों को भी लज्जित कर दिया। बर्बरता में अङ्गरेज़ अज़ीमुल्ला से बाज़ी मार लेगए। अङ्गरेज़ों के इस निष्ठुर व्यवहार से भयभीत होकर झाँसी के बहुत से आदमियों ने अपने हाथों से अपनी स्त्री और बच्चों के प्राण लेकर बाद में स्वयं आत्महत्या कर ली।* अङ्गरेज़ों ने विद्रोहियों के प्रति जैसे नृशंस व्यवहार किए, उसे देख कर उन्हें मनुष्य कहने की इच्छा नहीं होती। उनकी निर्दयता का आतङ्क अज़ीमुल्ला और नाना के अत्याचारों से कम भयङ्कर न था।

नारायण त्र्यम्बक शास्त्री का पैतृक वासस्थान झाँसी के राजमहल से दो-तीन कोस की दूरी पर था। लेफ्टिनेण्ट कैनिबल (Cannibal) कुछ सिख और गोरे सिपाहियों

---

* No less than 5000 persons are stated to have perished at Jhansi, or to have been cut down by the flying Camp. Some flung themselves down wells or otherwise committed suicide having first slain their women sooner than trust them to the mercy of the conquerors —Martin.

को साथ लेकर त्र्यम्बक शास्त्री के घर के आस-पास के विद्रोहियों को पकड़ने के लिए चले। शास्त्री जी के घर के आस-पास और भी कई गृहस्थो के भी घर थे; किन्तु उनमे मनुष्य का नाम-निशान भी न था। गृहस्थो में से कुछ अङ्गरेजों के कोपानल मे पड़ कर अपनी जान से हाथ धो बैठे थे और कुछ उनके अत्याचारो से रक्षा पाने के लिए घर छोड़ कर भाग गए थे। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री की माता की आयु इस समय तक लगभग सौ वर्ष की हो चुकी थी। उनके शरीर मे उठने बैठने की भी शक्ति नहीं थी। वह देखने और सुनने की शक्तियों से पहले ही हीन होगई थीं, शास्त्री जी का अभागा पुत्र गत तीन साल से प्रमेह-रोग से ग्रसित होने के कारण चारपाई से उठने तक से अशक्त था। उसके शरीर मे हड्डियो के अतिरिक्त और कुछ बाकी नहीं रह गया था।

लेफ्टिनेण्ट कैनिब्रल के शास्त्री जी के घर मे प्रवेश करने के पहले ही घर के दास-दासी सभी भाग गए थे। कैनिब्रल ने घर मे घुस कर शास्त्री जी की वृद्धा माता के हाथ पकड़ कर उन्हे शय्या से उठा लिया।

वृद्धा में इस समय स्पष्ट स्वर में शब्द उच्चारण करने की भी शक्ति नहीं थी। वह अस्फुट शब्द में 'बे, बाबा बो' कह कर आर्त्तनाद करने लगीं। उनके उच्चरित शब्दों का कोई अर्थ नहीं समझ में आता था। केवल एक हल्ला सुनाई देता था।

कैनिबल ने आधी हिन्दी और आधी मराठी भाषा मिला कर टूटे-फूटे शब्दों में जो कुछ कहा, उसका अर्थ यही था कि "इस स्त्री ने क़िले में अवश्य ही काम किया है।"

सिख सिपाही लेफ्टिनेण्ट की बातें सुनकर एकदम दङ्ग रह गए।

दूसरे कमरे में शास्त्री जी का अभागा पुत्र सारा शरीर ढक कर सोया हुआ था। एक गोरे ने उसके शरीर पर का वस्त्र ज्योंही हटाया, त्योंही कैनिबल साहब बोल उठे—असली बाग़ी को पकड़ लिया। इस आदमी ने रानी की ओर से अवश्य ही युद्ध किया है।

शास्त्री जी का पुत्र शक्ति भर चिल्लाकर कहने लगा—हुज़ूर तीन वर्षों से मैं चारपाई से उठा तक नहीं। मुझमें बिस्तर से उठने तक की शक्ति नहीं। मैं लड़ाई करने के लिए कैसे जा सकता था ?

लेफ्टिनेण्ट कैनिबल बोले—टुम बड़ा शयटान है, टुममें उटने की शक्टी नहीं, लेकिन टुम लड़ाई करने शकटा है।

लेफ्टिनेण्ट ने सिख सिपाहियों को त्र्यम्बक शास्त्री की माता और पुत्र दोनों को घर से बाहर लाने का हुक्म दिया।

सिख सिपाहियों ने कहा कि इनमें से एक में भी उठने तक की शक्ति नहीं है। किन्तु लेफ्टिनेण्ट कैनिबल ने उनकी एक न सुनी। उलटे वह सिख-सिपाहियों पर बिगड़ खड़े हुए। अन्त में एक गोरे सिपाही ने एक-एक करके उनके पाँव

पकड़ कर गाय-बैलों की तरह घसीट कर उन्हे घर से बाहर किया। बाहर जाते ही उन दोनों के प्राण-पखेरू उड़ गए। सिख-सिपाही कहने लगे—इन्हें अधिक दूर तक ले जाने की अब कोई आवश्यकता नहीं। इन दोनों की मृत्यु हो गई। लेकिन लेफ्टिनेण्ट साहब को केवल इतने से सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने दोनों को वहीं फाँसी पर लटका देने का हुक्म दिया। फॉसी की डोरी हरदम उनके साथ ही रहती थी। सिपाहियों ने त्र्यम्बक शास्त्री के घर के पास एक बर-गद के पेड़ की डालियों से उन दोनों के मृत शरीर को लटका दिया। नारायण त्र्यम्बक शास्त्री ने जब सुना कि अङ्गरेजों ने झाँसी मे क़त्लेआम जारी कर दिया है तो उनके लिए कालपी में एक क्षण भी और ठहरना असम्भव हो गया। उनका मन वृद्धा माता के दर्शनो के लिए एकदम अधीर हो उठा। माता कितनी ही अपराधिनी क्यों न हो, सन्तान के हृदय से मातृ-प्रेम कभी दूर नहीं हो सकता। शास्त्री जी योगिराज को साथ लेकर फौरन झाँसी की ओर चल पड़े। दो दिनो की निरन्तर यात्रा के बाद अपने पैतृक निवास-स्थान पर पहुँचे। घर के भीतर घुस कर उन्होंने देखा कि घर जन-शून्य पड़ा हुआ है। घर की दूसरी ओर देखा तो वट-वृक्ष की डालियों से माता और पुत्र का मृत-शरीर लटका हुआ है। शास्त्री जी के घर पहुँचने के दो-चार घण्टे ही पहले लेफ्टिनेण्ट कैनियल यह राक्षसी कृत्य कर गए थे।

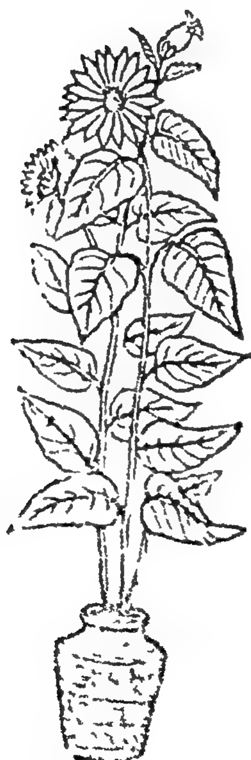
माता और पुत्र का मृतक शरीर देख कर वृद्ध शास्त्री जी की छाती फट गई। वह शोक से मूर्च्छित हो गए। योगिराज उनके मस्तक पर जल छिड़क कर उन्हे होश मे लाए और सान्त्वना देने की चेष्टा करने लगे।

चिन्ताशील त्र्यम्बक शास्त्री हृदय के उच्छ्वसित शोकावेग को शीघ्र ही सम्बरण कर योगिराज से कहने लगे—बच्चा, हम लोग अपने ही किए हुए कुकर्मों और पापों का फल भोग रहे हैं। कर्म-फल से कोई छूट नही सकता। मेरी माता के जीवन की समस्त घटनाओं पर विचार करने से तुम सहज ही देख सकोगे के मेरे देश-सेवा व्रत का विरोध करने के कारण ही उनकी ऐसी अपमृत्यु हुई है। यदि मेरे अभीष्ट शुभ-कर्मों और शुभ अनुष्ठानों में वह बाधा न पहुँचातीं तो आज इस प्रकार की घृणित मृत्यु से उनके जीवन का अन्त कभी न होता। कायरता और स्वार्थ-परता के वशीभूत होकर माता का अनुचित आदेश मान लेने के कारण ही आज मुझे यह घोर मानसिक ताप सहन करना पड़ रहा है। यदि मैंने माता के वाक्यों का उल्लङ्घन करके अपने कर्त्तव्य-पालन की चेष्टा की होती, तो आज मुझे इतना कष्ट न भोगना पड़ता।

शास्त्री जी ने योगिराज को दोनो मृत-शरीर वृक्ष की शाखाओं पर से उतार लाने को कहा। योगिराज वृक्ष की शाखाओं पर से दोनों मृत-शरीरों को उतार लाए। शास्त्री

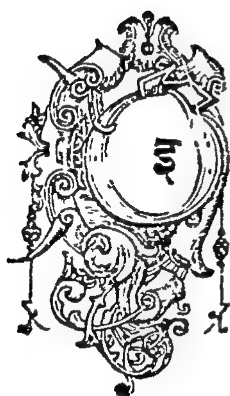
जी उन दोनों की अन्त्येष्टि क्रिया करके शीघ्र ही कालपी को चल पड़े।

शास्त्री जी को सान्त्वना देने के लिए योगिराज रास्ते में उनसे गङ्गाबाई का सारा हाल सुनाने लगे। गङ्गाबाई के चरित्र के महत्व का अनुभव करके शास्त्री जी वर्तमान दुःख को भूल गए।



तैंतीसवाँ परिच्छेद

प्राकृतिक आकर्षण



स संसार में प्रकृति के मिले बिना मनुष्यों का एक दूसरे से खुलकर मिलना सम्भव नहीं। प्रकृति की समता ही प्रणय का बीज बोती है। महात्माओं के साथ महात्माओं का, साधुओं के साथ साधुओं का, वीरों के साथ वीरो का, कायरों के साथ कायरों का और चोरों के साथ चोरों का प्रेम होता है। साधुओं के साथ चोरों का, धार्मिक पुरुषों के साथ पापियो का, वीरों के साथ कायरों का प्रेम-भाव होना कभी सम्भव नहीं।

६ वीं अप्रैल को लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई झाँसी से कालपी पहुँचीं। ताँतिया के साथ लक्ष्मीबाई की प्रथम भेंट में ही लक्ष्मीबाई के प्रति ताँतिया के और ताँतिया के प्रति लक्ष्मीबाई के हृदय मे श्रद्धा उत्पन्न हुई और वह श्रद्धा

क्रमशः वृद्धिङ्गत होने लगी। ६वीं अप्रैल से लेकर आज २० वीं अप्रैल तक दोनों आदमी एक ही साथ निवास कर रहे हैं। क्रमशः उनके हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का सञ्चार हो गया है। एक दूसरे की वीरता पर मुग्ध हैं। किन्तु लक्ष्मीबाई अथवा ताँतिया दोनों में से किसी एक ने भी अपने मन का भाव अभी तक दूसरे पर प्रगट नहीं किया है। और की चर्चा ही क्या, लक्ष्मीबाई ने अपनी प्राणों से अधिक प्यारी सहोदरा बहिन के समान गङ्गाबाई पर भी अपने मन का भाव अभी तक प्रगट नहीं किया है।

ताँतिया की अवस्था इस समय लगभग पचास वर्ष की हो चुकी है। वह मन ही मन विचार कर रहा है, यह कैसे आश्चर्य की बात है। गत पचास वर्षों में एक बार भी मेरा मन किसी स्त्री के प्रति आकर्षित नहीं हुआ। किन्तु आज इस घोर विपत्ति-काल में अकस्मात् मेरे मन की अवस्था ऐसी क्यों हो रही है? कुछ समझ में नहीं आता। लक्ष्मीबाई को सदा देखते रहने की क्यों इच्छा होती है? उनके आँखों से ओझल होने पर मेरे मन में कष्ट क्यों होने लगता है?

ताँतिया का विवाह बहुत पहले ही हो चुका था। उसकी स्त्री के लगभग पाँच-सात लड़के-लड़कियाँ भी पैदा हो चुकी थीं। किन्तु उसका मन अपनी स्त्री के प्रति इस प्रकार कभी आकर्षित नहीं हुआ था। उसके हृदय में वास्तविक प्रेम अभी तक पैदा ही नहीं हुआ था। इस समय लक्ष्मीबाई

धरराव की स्त्री हूँ। चिरकाल से मैं राजा की प्रतिमूर्ति को हृदय में धारण किए आ रही हूँ। सहसा ताँतिया की छवि मेरे मन में कैसे अङ्कित हो गई ?" इस प्रकार चिन्तन कर वह ताँतिया की प्रतिमूर्ति को हृदय से दूर फेंकने की चेष्टा करती थीं, किन्तु जितना वह चेष्टा करतीं, वह मूर्त्ति उतनी अधिक दृढ़ता से उनके हृदय में स्थापित हो जाती। इसलिए पहले की आत्मश्लाघा के स्थान में उनके मन में इस समय घोर आत्म-ग्लानि पैदा हो गई है।

लक्ष्मीबाई को इस प्रकार दुखित देख कर गङ्गाबाई को बड़ा कष्ट हुआ। वह अत्यन्त विनीत भाव से बोलीं—मेरी हँसी से तुम्हारे मन को कष्ट पहुँचा है, इसके लिए मुझे क्षमा करो।

लक्ष्मीबाई कुछ देर तक सोच-विचार कर बड़ी गम्भीरता के साथ बोलीं—अङ्गरेज़ों के साथ युद्ध करने मे अब तक जिस मार्ग का अवलम्बन किया गया है, इस नवीन युद्ध में भी उसी मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।

"अङ्गरेज़ो के साथ युद्ध करने में अब तक किस मार्ग का अवलम्बन किया गया है ?"

"किस मार्ग का अवलम्बन किया गया है, इसे क्या तुम जानती नहीं ? इन भीरु सैनिकों के भागने का रास्ता पहले से ही बन्द कर दिया जाता है।"

"इस नए संग्राम में उस मार्ग का अवलम्बन कैसे किया जा सकता है ?"

"तोंतिया का प्रेम जब हमें परास्त करने के लिए उद्यत हो, उस समय आत्माभिमान, अहङ्कार, आत्म-समादर और पूर्वसंस्कारों-रूपी सैनिकों को हृदय से भागने का रास्ता ही नहीं देना चाहिए। ये ही चन्द सैनिक इस संग्राम मे मृत्यु-पर्यन्त हमारी रक्षा करेंगे। ये ही हमारे विश्वस्त शरीर-रक्षक होंगे।"

"ये सैनिक बड़े निस्तेज हैं। लड़ाई का समय आने पर ये अवश्य भाग खड़े होंगे।"

"भागने का रास्ता पहले से ही बन्द कर देने से वे कैसे भाग सकेंगे? निस्सन्देह सिपाही अत्यन्त भीरु है, पर इनमे भागने की शक्ति नही।"

गङ्गाबाई ने देखा कि लक्ष्मीबाई अपनी वर्तमान अवस्था को अत्यन्त विपत्ति एवं प्रमादपूर्ण समझ रही है, इसलिए उन्होंने लक्ष्मीबाई से और कोई प्रश्न नहीं किया। किन्तु लक्ष्मीबाई स्वयं उनसे कहने लगीं—प्रेम और प्रणय के सम्बन्ध मे पहले तुम जो कहा करती थीं, वह सभी बातें अब मुझे सत्य जान पड़ती हैं। उस समय तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आती थी, इसलिए तुम्हारा मजाक उड़ाती थी। किन्तु तुम्हारी एक भी बात झूठी नहीं। मैं भ्रम में पड़ कर यह समझती थी कि महाराज मुझसे प्रेम करते हैं और मैं भी उन्हें चाहती हूँ। प्रेम क्या वस्तु है, इसे मैं पहले समझती ही नहीं थी। वास्तविक प्रेम मेरे हृदय में कभी

पैदा ही नहीं हुआ था। तुमने कहा था कि कर्त्तव्य ज्ञान को ही हम लोग प्रेम समझती हैं, सो झूठ नहीं। विवाह के बाद बाल्य-शिक्षा और लड़कपन के संस्कारों के कारण मेरे मन में यह भाव उत्पन्न हो गया था कि यह मेरे स्वामी है, इसलिए प्राण-विसर्जन करके भी इन्हें सुखी करना मेरा कर्त्तव्य है। बाल्य-शिक्षा और संस्कार मेरे मन में इस कर्त्तव्य-ज्ञान को बद्धमूल करते थे और मैं इस प्रकार के कर्त्तव्य-ज्ञान को ही प्रेम समझती थी। तुमने अनेक बातों में मेरे ज्ञान-नेत्र खोल दिए हैं। मैं पहले यह सोचती थी कि स्त्रियों को ज्ञान की शिक्षा देने से कोई लाभ नहीं। स्त्रियों को ज्ञान-शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं, किन्तु अब देखती हूँ कि ज्ञान-शिक्षा के बिना मानव-जीवन व्यर्थ है। यदि बाल्यावस्था में तुम्हारी तरह मुझे उच्च शिक्षा दी गई होती, तो झाँसी का राज्य कभी नष्ट न होता और न महाराज की अकाल-मृत्यु ही होती। अज्ञानता और भीरुता ही सब प्रकार की विपत्तियो और दुर्दशाओं का मूल कारण है। मेरी अज्ञानता और महाराज की भीरुता ही झाँसी के विनाश के वास्तविक कारण हैं। महाराज के साथ मेरा विवाह अज्ञानता और भीरुता का सम्मिलन-मात्र था।

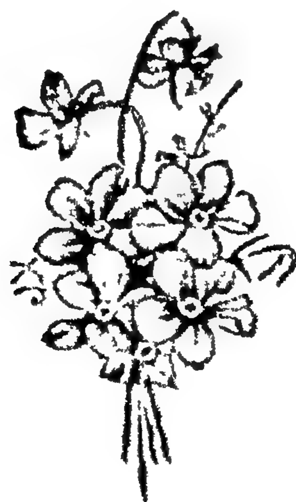
जब लक्ष्मीबाई यह कह कर चुप हो गईं, तो गङ्गाबाई बोलीं—योगिराज की बात थोड़ी भी मिथ्या नहीं। वह सदा कहा करते हैं कि हिन्दू-समाज की वर्तमान विवाह-पद्धति

सिंह के साथ सियार का, हाथी के साथ बिल्ली का, मोर के साथ कौए का सम्मिलन कराके एक तरह के अद्भुत जीवों की संख्या-वृद्धि कर रही है। भारतवर्ष की विवाह-पद्धति को बदले बिना इस देश में सच्चे मनुष्यों के पैदा करने का प्रश्न कभी हल न होगा।

"यह बात मुझे भी सच्ची जान पड़ती है, नहीं तो भारतवासी इतने भीरु और कायर क्यों होते?"

"भारतवासियों के कायर और भीरु होने के और भी अनेकानेक कारण हैं। पाँच सौ वर्ष × × ×"

गङ्गाबाई ने इतना ही कहा था कि दूर से अङ्गरेज़ों के सिपाहियों के जय-जयकार और लड़ाई के बाजे सुनाई पड़े। इसलिए ये लोग जल्दी से घोड़े पर चढ़ कर शिविर को वापस चल पड़ीं।



चौंतीसवाँ परिच्छेद

सींधिया का फूल बाग़



नी लक्ष्मीबाई ने कालपी में निवास करते समय अपनी तथा ताँतिया दोनों की सेनाओं को लेकर कुञ्ज में अङ्गरेज़ों पर आक्रमण किया। ८ वीं मई की रात में जनरल ह्यूरोज़ के साथ कुञ्ज में लक्ष्मीबाई की फिर लड़ाई हुई। गर्मी के मारे दोनों ओर के सिपाही थक गए। अङ्गरेज़ों के सेनापति ह्यूरोज़ साहब मूर्च्छित होकर घोड़े से तीन बार गिरे। युद्ध शीघ्र ही बन्द होगया।

कुञ्ज के युद्ध के बाद ताँतिया रानी लक्ष्मीबाई के हाथों में कालपी के रक्षण का भार देकर स्वयं सैनिकों की संख्या बढ़ाने के अभिप्राय से ग्वालियर गया। लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई कालपी लौट आईं।

कुञ्ज कालपी नगर से चार कोस की दूरी पर है। लड़ाई समाप्त होने पर जिस समय रानी लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई

घोड़े पर चढ़ कर कालपी को वापस आ रही थीं, उस समय शिविर से प्रायः आध कोस आगे बढ़ कर नारायण त्र्यम्बक शास्त्री उन लोगों के आने की राह देख रहे थे। अपनी पुत्री को योद्धा-वेश में घोड़े पर सवार आती हुई देख कर शास्त्री जी स्वयं आगे बढ़ कर उनके पास चले गए और उन्हें गोद में लेकर उतारा। शास्त्री जी उनका मुख-कमल बार-बार चूमते हुए बोले—बेटी, तूने मेरे हृदय के सभी दुःख दूर कर दिए। तुम्हें इस महान् व्रत के पालन में यत्नशील देख कर मैं अपने को परम भाग्यवान् समझता हूँ।

शास्त्री जी बहुत देर तक गङ्गाबाई का मुँह अपनी छाती से लगाए रहे। उनके दोनों नेत्रों से नीर बरस रहा था। लक्ष्मीबाई भी घोड़े से उतर कर, शास्त्री जी के पास जाकर खड़ी हो गईं। लक्ष्मीबाई को देख कर शास्त्री जी अपने हृदय का आवेग और न सँभाल सके। उन्होंने लक्ष्मीबाई को बेटी कह कर अपनी छाती से अच्छी तरह लगा लिया। लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई दोनों ही शास्त्री जी की गोद में बैठ कर आनन्द के आँसू बहाने लगीं। कुछ देर के बाद अपने हृदय को सँभाल कर शास्त्री जी कहने लगे—बेटी, तूने अपनी अलौकिक वीरता दिखा कर नारी-जीवन को धन्य कर दिया। इस अज्ञानान्धकारपूर्ण देश में जन्म ग्रहण करके क्या कोई स्त्री स्वयं भगवती पार्वती का तेज प्राप्त किए बिना ऐसी अलौकिक वीरता कभी दिखा सकती

है ? मै धन्य हूँ, मेरा भाग्य धन्य है ! बेटी, आज तुम लोगो को गोद मे लेकर मेरा जीवन सार्थक हुआ । सौ पुत्रों का पिता होकर भी मै ऐसे सुख का अधिकारी न हो पाता ।

शास्त्री जी जब यह कह कर चुप हो गए, तो गङ्गाबाई रोते हुए कहने लगीं—पिता, इस पापिनी की भीरुता ने ही आपकी आशा-लता पर वज्रपात करके गत पाँत वर्षों से आपको इतना कष्ट दिया है । मेरे लिए आपने कितना कष्ट भोगा है, इसे याद कर हृदय विदीर्ण × × ×

शास्त्री जी कन्या की बात को बीच मे ही काट कर बोल उठे—ऐसा न सोचो, ऐसा न सोचो । मेरे सभी कष्ट दूर हो गए । तुमने जो महायज्ञ आरम्भ किया है, उसे पूर्ण करके स्वर्ग सिधारो । हम सब लोग बहुत शीघ्र ही वहाँ एकत्र होगे । इस नरक-तुल्य भारतवर्ष से छुटकारा पाते ही हमारे जीवन के सभी कष्ट दूर हो जायँगे ।

शास्त्री जी दोनो कन्याओं को साथ ले शिविर मे चले गए । कालपी मे शास्त्री जी की सेवा करती हुई दोनो रानियाँ बड़े आनन्द से रहने लगी । उनके साथ रह कर कालयापन करने में शास्त्री जी भी बड़े आनन्द का अनुभव करते । रानी लक्ष्मीबाई ८ वीं मई से २३ वीं मई तक कालपी मे रहीं । २२ वीं मई को कालपी का अन्तिम युद्ध आरम्भ हुआ । वाणपुर के राजा के सैनिकों का, ताँतिया टोपी की तथा

रानी की सेनाओं से कुछ झगड़ा होगया। इस गृहकलह के कारण २३ वीं मई को कालपी के युद्ध में रानी की सेना पराजित हुई। भागे हुए सैनिकों को साथ लेकर रानी ग्वालियर की ओर चली गईं।

कालपी के युद्ध के बाद जनरल ह्यूरोज ने सोचा कि युद्ध में रानी हार गईं। अब वह प्राणरक्षा के लिए अवश्य कहीं भाग कर चली जायँगी। मन में यह विचार स्थिर हो जाने पर जनरल ह्यूरोज ने अस्वस्थता का कारण दिखाकर गवर्नर-जनरल के पास छुट्टी की प्रार्थना की और सिपाहियों को यथास्थान भेज देने का अभिप्राय प्रकट किया। गवर्नर-जनरल ने जनरल ह्यूरोज की प्रार्थना स्वीकार कर ली। सब लोगों को यह विश्वास होगया कि मध्यभारत का विद्रोह अब शान्त हो गया। किन्तु उनके ध्यान में यह बात न आई कि रानी लक्ष्मीबाई भाग कर प्राण बचाने वाली सेनाध्यक्षा नहीं है।

रानी भागे हुए सैनिकों को साथ लेकर कालपी से ग्वालियर की ओर चलीं। उनके ग्वालियर पहुँचने के पहले ही महाराज सींधिया ने सेना लेकर उन पर आक्रमण किया। जब लक्ष्मीबाई तथा गङ्गाबाई को सींधिया के आगमन का समाचार मालूम हुआ तो वे दोनों अपना अस्त्र-शस्त्र छोड़ कर घोड़े पर सवार हो महाराज सींधिया के पास जा उपस्थित हुईं। महाराज सींधिया रानी लक्ष्मीबाई और

गङ्गाबाई की भावभङ्गी और उनका साहस देखकर एक बारगी दङ्ग रह गए। रानियों को निरस्त्र देख कर दोनों ओर की सेनाओं ने कुछ देर के लिए अस्त्र छोड़ना बन्द कर दिया। सबकी आँखें टकटकी लगा कर रानी लक्ष्मीबाई को देखने लगीं। रानी को पास आते देख कर सींधिया पीछे हटने लगे। रानी उन्हें आश्वासन देती हुई बोलीं—महाराज, आपको डरने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं अस्त्र-शस्त्र छोड़ कर आपके पास आई हूँ।

रानी की बात सुनकर सींधिया चिल्ला उठे—इसे पकड़ लो, पकड़ लो।

रानी का साहस देख कर दोनों ओर के सैनिक एक बारगी अवाक् होगए। रानी को पकड़ने के लिए कोई भी अग्रसर न हुआ।

सींधिया को 'पकड़ो-पकड़ो' कहकर चिल्लाते देख रानी ईषत् हास्यपूर्वक बोलीं—आप व्यर्थ उछल-कूद न करें। जब तक मैं स्वयं अपने को न पकड़वा दूँगी, तब तक मुझे पकड़ लेने का सामर्थ्य किसी में नहीं।

सींधिया अवाक् होकर रानी के मुँह की ओर ताकने लगे। सींधिया जिस स्थान पर खड़े थे, उससे बीस-पचीस हाथ की दूरी पर खड़ी हो रानी गम्भीरतापूर्वक कहने लगीं—महाराज सींधिया, मैं आपका प्राण लेने अथवा आपके साथ युद्ध करने की इच्छा से यहाँ नहीं आई हूँ। मेरे हाथ

के अस्त्र केवल प्रकृत वीरो के ऊपर ही निक्षिप्त होते हैं। अङ्गरेजों के सैकड़ो कप्तान, मेजर और कर्नल मेरे अस्त्रों का आघात खाकर परलोक सिधार चुके है। आप जैसे कायर मनुष्य पर मेरे अस्त्र कदापि निक्षिप्त न होगे। आपको डरने की कोई आवश्यकता नहीं। अङ्गरेजो के साथ युद्ध मे पराजित होकर मैने झाँसी छोड़ दिया है। संसार मे अधिक दिनों तक मेरे जीवित रहने की अब कोई सम्भावना नहीं है। मरने के पहले एक बार मै आपको तथा आपही के जैसे होलकर आदि अन्य राजाओ को भी उनके योग्य पोशाक पहना कर अपनी आँखो से देखना चाहती हूँ। इसी अभिप्राय से मै आपके पास आई हूँ।

यह कह कर रानी लक्ष्मीबाई एक स्त्री का वस्त्र तथा स्वयं अपने शरीर पर का एक भूषण उतार कर सींधिया की ओर फेकती हुई बोली—आप स्त्री का यह वस्त्र और यह अलङ्कार पहन लीजिए और इनके बदले मे अपनी पगड़ी और पाजामा मुझे दीजिए।

रानी के मुँह से ये शब्द निकलते ही रानी तथा सींधिया दोनो की सेनाओ के सैनिक एक साथ गगनभेदी स्वर से चिल्ला उठे—"महाराज सींधिया, औरतों के कपड़े और गहने पहन लो, महाराज रानी के कपड़े पहन लो, महाराज स्त्रियों के भूषण पहन लो।"

महाराज सींधिया ने जब स्वयं अपनी सेना तक को—

"वस्त्र ले लो" "अलङ्कार ले लो" कह कर चिल्लाते हुए देखा तो वह फ़ौरन घोड़े को चाबुक लगा कर भागने के लिए तैयार हो गए। दोनों ओर की सेनाओं ने एक साथ मिल कर दो मील तक उनका पीछा किया और रास्ते में उन्हें पुकार-पुकार कर कहती जाती थी "तुम्हारी जान नहीं ली जायगी। महाराज सींधिया, फिरो, फिरो, तुम कपड़े लिए जाओ, गहना पहन लो, वस्त्र × × ×"

उधर रानी लक्ष्मीबाई के दोनों ओर जो सैनिक खड़े हुए थे, वे "रानी लक्ष्मीबाई की जय" "महारानी की जय" आदि शब्दों से आकाश को गुँजाने लगे।

सींधिया अपनी राजधानी में पहुँच कर वहाँ से फ़ौरन आगरे की ओर चल पड़े। रानी ने सेना सहित ग्वालियर में प्रवेश किया और निःशङ्क होकर फूलबाग़ में रहने लगीं। रक्त की एक बूँद भी बिना बहाए सींधिया की राजधानी रानी लक्ष्मीबाई के हाथों मे आ गई। सींधिया के ख़ज़ाने का सारा रुपया रानी ने सिपाहियों को पुरस्कार-स्वरूप बाँट दिया।

अङ्गरेज़ों को ज्योंही पता लगा कि रानी लक्ष्मीबाई ने महाराज सींधिया को भगाकर ग्वालियर को दख़ल कर लिया है, त्योंही जनरल ह्यूरोज़ सेना लेकर पुनः ग्वालियर को भेजे गए। उस समय ग्वालियर से थोड़ी दूरी पर ताँतिया सैन्य संग्रह करने की चेष्टा कर रहा था।

१७ वीं जून को रानी के साथ पुनः जनरल ह्यूरोज़ का युद्ध

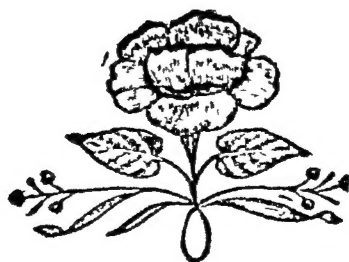
आरम्भ हुआ। जनरल ह्यूरोज़ झाँसी पर चढ़ाई करने के समय से ही नेपोलियन के रणकौशल का अवलम्बन कर रहे थे। इस बार भी उन्होंने वही किया। ताँतिया की सेना रानी के सिपाहियों से न मिल सके, इसके लिए उन्होंने एक दल सेना ग्वालियर के बाहर रख छोड़ी, जो ताँतिया के मार्ग को रोक रक्खे। रानी लक्ष्मीबाई ने फूलबाग़ के युद्ध में भी अत्यन्त आश्चर्यजनक वीरता का परिचय दिया। उनकी सेना बहुत थोड़ी रह गई थी, इसलिए वह ताँतिया से जा मिलने के अभिप्राय से फूलबाग़ छोड़ कर आगे बढ़ीं। गङ्गाबाई अब तक बराबर लक्ष्मीबाई के साथ रह कर युद्ध करती आ रही थीं। आज तक उन्होंने कभी लक्ष्मीबाई का साथ नहीं छोड़ा।

१७ वीं जून को तीसरे पहर जब दोनो रानियाँ घोड़े पर चढ़ कर फूलबाग़ से जा रही थीं, उस अवसर पर नदी-पार्श्व में छिपे हुए कई अङ्गरेज़-सिपाहियों (Hussars) ने उन पर गोले बरसाना आरम्भ कर दिया। वक्षस्थल में गोला लगने के कारण दोनो रानियाँ घोड़े की पीठ पर से पृथ्वी-तल पर आ गिरीं। इस प्रकार सन् १८५८ ई० को १७वीं जून को भारत वीराङ्गना-शून्य हो गया। लक्ष्मीबाई और गङ्गाबाई नरक-तुल्य भारतवर्ष का परित्याग कर स्वर्गधाम को पधार गईं।

रानी के अङ्ग-रक्षकों ने इस भय से कि विलम्ब होने से अङ्गरेज़ दोनो रानियों के मृत-शरीर को स्पर्श करेंगे, सेंधिया

के फूलबाग में दो स्वतन्त्र चिताएँ रच कर दोनों रानियों की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। उस समय योगिराज तथा नारायण त्र्यम्बक शास्त्री भी वहाँ उपस्थित थे। अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हो जाने पर योगिराज ने अपनी उँगलियों के द्वारा श्मशान-भूमि पर लिखा—

अतुल वीरत्व, शान्त पवित्र प्रणय,
अनादृत, ए श्मशाने आजि भस्ममय;
अन्ध देश ना चिनिल रतन उज्ज्वले;
भविष्यते यदि कभू नव पुण्य फले,
नूतन जीवन आर ज्ञान दृष्टि लभे,
फूल बाग पुण्यं तीर्थे परिणत हबे।



उपसंहार



रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु के बाद भी ताँतिया टोपी पुनः सेना इकट्ठी करने के प्रयत्न में लगा रहा। वह समय पाते ही जगह-जगह अङ्गरेजों पर आक्रमण कर बैठता। ताँतिया टोपी पर भारतवासियों की एकान्त श्रद्धा एवं अटल भक्ति देखकर अङ्गरेज बड़ी चिन्ता में पड़े। उन्होंने सोचा, जब तक ताँतिया जीवित है, तब तक हम लोगों को चैन से बैठ सकने की आशा छोड़ देनी चाहिए। अत: अङ्गरेज उसे पकड़ने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगे।

मानसिंह नामक सींधिया राज्य का एक विद्रोही जमींदार इसके पहले देश से बहिष्कृत कर दिया गया था। अङ्गरेजों ने उसे प्रलोभन दिया कि हम तुम्हारी जमींदारी लौटा देंगे। इस प्रलोभन में आकर मानसिंह ने घोर विश्वासघातकतापूर्वक ताँतिया को पकड़कर अङ्गरेजों के हवाले कर दिया। सन् १८५९ ई० में ताँतिया पकड़ा गया। अङ्गरेजों ने उसे प्राणदण्ड की सजा दी। ताँतिया निर्भयतापूर्वक मृत्यु का आलिङ्गन करके अमर हो गया।

ताँतिया के पकड़े जाने का समाचार पाकर नारायण त्र्यम्बक शास्त्री उससे साक्षात् करने के लिए योगिराज से

साथ ले सींधिया के राज्य में चले। किन्तु उनके वहाँ पहुँचने के पहले ही ताँतिया की वीर आत्मा इस संसार से बिदा हो चुकी थी।

इसके बाद नारायण त्र्यम्बक शास्त्री और योगिराज देश-सुधार का व्रत लेकर मद्रास और बम्बई प्रेसीडेन्सी के भिन्न-भिन्न स्थानों में घूमने लगे। किन्तु इन घटनाओं के घटित होने के चार ही वर्ष के बाद शास्त्री जी भी इस संसार से चल बसे।

विद्रोह के फलाफल के सम्बन्ध में शास्त्री जी का एक-एक शब्द सच निकला। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजत्व का अन्त हुआ और महारानी विक्टोरिया ने भारतवर्ष का शासन-भार अपने हाथों में ग्रहण किया। साथ ही साथ महारानी ने यह भी घोषणा की कि हमारे शासन की नीति होगी भारतवासियो तथा अङ्गरेजों को समान दृष्टि से देखना। इस न्यायपूर्ण घोषणा को सुन कर भारतवासियों का मन आह्लादित होगया।

योगिराज सामाजिक एवं राजनैतिक सुधार का व्रत अवलम्बन कर भारत के सभी स्थानो में भ्रमण करने लगे। कभी-कभी वह वङ्गाल में भी जाते थे।

इस पुस्तक में वर्णित योगिराज को, सम्भव है, बहुत से पाठक राजनैतिक संन्यासी आनन्दाश्रम स्वामी समझ लें। राजनैतिक संन्यासी आनन्दाश्रम स्वामी की ३१ दिसम्बर

सन् १८५९ ई० को कच्छ के अन्तर्गत माण्डवी नगर में मृत्यु हुई।* वह भी बङ्गाली थे, इसलिए इसके सम्बन्ध मे पाठकों को सहज ही भ्रम हो सकता है। किन्तु इस पुस्तक में वर्णित योगिराज पूर्वोल्लिखित राजनैतिक संन्यासी आनन्दाश्रम स्वामी नहीं थे। पाठकगण "योगिराज का दैनिक" अथवा India under the Crown नामी पुस्तक के द्वितीय खण्ड में योगिराज का विशेष परिचय पा सकेंगे। उस समय उनकी समझ में आ जायगा कि बॉम्बे नेटिव पब्लिक ओपिनियन में उल्लिखित आनन्दाश्रम स्वामी स्वतन्त्र व्यक्ति थे।

समाप्त

* Vide Bombay Native Public O[illegible] [illegible] dated January [illegible]